ISSN : 0975-8011

बुन्देली बसंत



2010

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

ISSN - 0975- 8011

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली बसन्त

अंक ११, १७ अप्रैल २०१०

❄

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९४२५१४१४५५

❄

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,

पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

मोबाइल : ०९४२५४७४६६२

❄

सह संपादक

डॉ. के.एल. पटेल

रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९४२५८७९७७३

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९४२५१४२०६६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी, जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २४१३१०

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  रामकुमार सोनी,
  गोवर्धन टॉकीज के पास,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : ०९८९३१५२९१०

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयोजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, छतरपुर
  ☎ : ०९७१३३४३३१३

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

अनुक्रमणिका

भाषा, साहित्य एवं आलोचना

बुन्देली परम्परा और संस्कृति

बुन्देली गद्य

इतिहास और पुरातत्व

बुन्देली काव्य

अन्य

संपादकीय -

शौर्य और पराक्रम के लिए विख्यात बुन्देलखण्ड भूमि प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है। यहाँ उत्कृष्ट किस्म का हीरा पाया जाता है, यहाँ ग्रेनाइट और डोलोमाइट जैसे महत्वपूर्ण खनिज पाये जाते हैं। यहाँ यूरेनियम मिलने की संभावनाएँ भी बताई जा रही हैं। इस अँचल में केन, बेतवा, धसान, यमुना जैसी नदियाँ प्रवाहित हैं। वनाच्छादित पहाड़ प्राँत वनौषधियों व वनोपज से सम्पन्न है, किन्तु इन सबके बावजूद देश में बुन्देलखण्ड आर्थिक रूप से सबसे पिछड़े इलाकों में आता है। यहाँ के लोग फटेहाल हैं, रोजगार की खोज में बाहर पलायन कर रहे हैं। शिक्षा के मामले में यह इलाका काफी पीछे है। गरीबी व अज्ञानता के कारण कुपोषण व महामारियों से पीड़ित है। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति के लिए कौन कुसूरवार है? हमारी नीतियों के नियंता या यहाँ की जनता। नीति निर्धारण करने वाले जनप्रतिनिधि लगातार विकास की बात कर रहे हैं। विकास की योजनाएँ लगातार बन भी रही हैं, किन्तु इन योजनाओं के क्रियान्वयन में जिस समर्पण की आवश्यकता है, वह अदृश्य है। जन सामान्य में अशिक्षा के कारण जागरूकता का अभाव है। जागरूकता न होने से हम अपने संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि समाज में ऐसा वातावरण तैयार किया जाए जो विकास के लिए उपयुक्त हो। विकास से आशय मात्र भवन, सड़कें या अन्य भौतिक संसाधनों की वृद्धि से नहीं लिया जाना चाहिए। हम मानसिक रूप से, आर्थिक रूप से और खासतौर से सामाजिक रूप से स्वस्थ समाज बनाने के लिए संकल्पबद्ध हों। बुन्देलखण्ड अँचल में अभी भी छुआछूत जैसी कलंकित कुरीतियाँ घर बनाए हुए हैं। स्त्रियों की दशा दयनीय हैं। बेटियों के साथ भेद-भाव व क्रूरता समाप्त करने की जरूरत है। दहेज का दानव अनेक घरों को लील रहा है। इनके खिलाफ संघर्ष करने हेतु हम सभी को मिलकर लड़ना होगा। गाँव-गाँव में ऐसे प्रेरणा-पुँज निर्मित करने की जरूरत है, जो मार्गदर्शक की भूमिका में रहकर गाँव के माहौल को बेहतर बनाएँ। इस संदर्भ में मुझे नानाजी देशमुख की अवधारणा महत्वपूर्ण लगती है। नानाजी ने चित्रकूट में दीनदयाल शोध संस्थान के माध्यम से आस-पास के गाँवों में ऐसे प्रकल्पों की स्थापना की जो प्रेरक बन कर गाँव का परिवेश परिवर्तित करने को सन्नद्ध हैं। नानाजी हमारे बीच से कायिक रूप से तो बिछुड़ गए हैं, किन्तु उनके विचार, उनकी दृष्टि हमारे लिए मार्गदर्शक बन सकती है।

सामाजिक परिवर्तन में मध्य वर्ग खासतौर से पढ़े-लिखे लोगों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। बुन्देलखण्ड अँचल में विकास की धारा प्रवाहित करने में भी इनकी भूमिका है। यहाँ के पढ़े-लिखे जागरूक लोगों से अपेक्षा है कि वे गाँवों को गुटबंदियों से ऊपर उठाकर जागरूक बनाने की पहल करें। इसमें हमारे लोक कवियों, कलाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की जिम्मेवारी अधिक है। आज स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा जागरूकता के नाम पर अच्छा खासा धन

राज्य का व्यय किया जा रहा है, किन्तु इसमें सार्थक बहुत कम हो रहा है। इस सब के पीछे यह भावना है कि इस मुफ्त की मिल रही राशि को हम सब मिलकर डकार जाएँ। यह भावना समाप्त करने की जरूरत है। सरकारी योजनाओं का सामाजिक अंकेक्षण कराया जाता है लेकिन वह प्रभु वर्ग के निवास में बैठकर होता है। ग्राम सभाएँ औपचारिक हो रही हैं। इसके सही स्वरूप को कायम करने की जरूरत है।

यह सब बातें मैं इसलिए कह रहा हूँ कि इस समय राष्ट्रीय परिदृश्य पर बुन्देलखण्ड विशेष चर्चा में है। केन्द्रीय सत्ता द्वारा बुन्देली धरती पर विकास गंगा बहाने हेतु विशेष राशि स्वीकृत की गई है। जिसके द्वारा अँचल का कायाकल्प किया जाना है। ऐसे में हम सभी बुन्देलखण्डवासी लोगों का कर्त्तव्य है कि इस अवसर का सही लाभ उठायें अन्यथा हमें फिर पछताना पड़ेगा। योजनाओं में भागीदार बनें, विकास यज्ञ में आहुति दें।

आगामी वर्ष २०११ जनगणना का वर्ष है। आप सभी से निवेदन है कि जनगणना पत्रक में भाषा के कॉलम में बुन्देली दर्ज करायें। इसके लिए सभी बुन्देलखण्डवासियों से पहल करें, क्योंकि आँकड़ों में हम सब हिन्दी लिख देते हैं, जिससे बुन्देली बोलने वालों के सही आँकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

इस अंक में हमने बुन्देली गद्य की विकास यात्रा के साथ उसके मानकीकरण से जुड़े आलेख दिए हैं। साथ ही बुन्देली गद्य-पद्य की रचनाधर्मिता को रेखांकित किया गया है। इतिहास और संस्कृति से जुड़े विषयों पर विद्वानों ने अपनी कलम चलाई है। अनेक साथियों की रचनाएँ विलम्ब से प्राप्त होने के कारण स्थान नहीं पा सकी हैं। उन्हें आगे के लिए सुरक्षित रखा गया है। सभी रचनाकार साथियों से अनुरोध है कि वे अपना रचनात्मक सहयोग बनाये रखें।

हम कृतज्ञ हैं संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला जी के जो लगातार विपरीत परिस्थितियों के चलते बुन्देली उत्सव के माध्यम से बुन्देली सांस्कृतिक संवर्धन में संलग्न हैं। हम आभारी हैं श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' के जिन्होंने संपादकीय सहयोग प्रदत्त किया। हम उन सभी विज्ञापनदाताओं और रचनाकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक मूर्तरूप ले सका है।

बहादुरसिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की

बुन्देली बसन्त २००९ प्राप्त होते ही आद्योपांत पढ़ी। बुन्देली संस्कृति, परम्पराओं का हम विस्मरण करते जा रहे हैं और पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता की चकाचौंध में भ्रमित हम उस अनामयी परम्पराओं की उपेक्षा कर रहे हैं, यह पत्रिका बुन्देली लोक परम्पराओं, रीति-रिवाजों, तीज-त्यौहारों को प्रकाश में लाकर अपने प्राचीन उत्सवों, संस्कारों की ओर ध्यान आकृष्ट कर रही है। बुन्देली की स्वाभाविक मिठास इसमें प्रकाशित सामग्री को पढ़कर मिलती है, मन अपनत्व से भर उठता है। विलुप्त होते हुए दर्शनीय, ऐतिहासिक स्थलों, गाथाओं, महान पुरुषों और जीर्ण-शीर्ण होती हुई पाण्डुलिपियों को खोज-खोजकर आपकी बुन्देली बसन्त पत्रिका के माध्यम से प्रकाश में लाई जायेगी, इसी आशा विश्वास के साथ, आपके श्रम, साधना और कुशल सम्पादन को नमन, साधुवाद।

– डॉ. ओमप्रकाश बरसैंयाँ 'ऊँकार' छंदाचार्य

१९, जवाहर चौक, झाँसी (उ.प्र.)

अंक के क्या कहने? संतोष सिंह बुन्देला पर आलेख छापकर आपने आत्मा प्रसन्न कर दी। लेखक ने भी बुन्देला जी को जीवित कर दिया। मुझे दिल्ली के अभिनव कला समाज के कवि सम्मेलन में वे ही ले गये थे। वर्षों पूर्व मैंने नीरज को मसनद उठाकर दी थी तो वे रोके थे। तुम क्या कम हो? लोग क्या सोचेंगे।... बुन्देली डिक्सनरी प्रकाशन के लिये भी आभारी रहेगा, हर बुन्देल व्यक्ति। हाँ, सम्मान भी बिल्कुल सही व्यक्ति को दिया है।

– दिनेश चन्द्र दुबे,

६८, विनय नगर-१, ग्वालियर

आपको बुन्देली बसन्त के गरिमापूर्ण सम्पादन पर हार्दिक बधाई। आप बुन्देली लोक साहित्य, संस्कृति और परम्परा की निष्काम शब्दयात्रा को सन्नद्ध हैं। आप यशस्वी हो।।

–डॉ. जवाहर द्विवेदी,

राघौगढ़ (गुना)

आपके सुचिन्तित सम्पादकत्व में प्रकाशित 'बुन्देली बसंत २००९' पढ़कर अनेक नई सूचनायें मिलीं। आलोचनात्मक निबन्ध, शोध-आलेख, बुन्देली काव्य, नाटक, बुन्देली गद्य आदि पढ़कर जो मानसिक स्थिति बनती है उसे साहित्य समाधि कहा जा सकता है। श्रेष्ठ साहित्य चयन और प्रकाशन के लिए मेरी बधाई लें। हार्दिक बधाई।

– डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही'

देवीपुरम, भारतीय विद्यालय मार्ग, शिवपुरी म.प्र. ४७३५५१

आपके द्वारा प्रदत्त, बुन्देली बसन्त २००९ के लिए हार्दिक धन्यवाद। बुन्देली भाषा, साहित्य, इतिहास परम्परा, संस्कृति, पुरातत्व, आलोचना की समग्र एवं सार्थक प्रस्तुति, बुन्देली बसन्त २००९ है। अच्छे लेख, अच्छी रचनाओं का आपके संपादन में चयन, स्मारिका की उत्कृष्टता एवं उपादेयता बढ़ता है। बुन्देली विकास संस्थान बसारी वास्तव में बुन्देली भाषा, संस्कृति एवं अपनी माटी के लिए समर्पित संस्थान है।

– साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी

३६/१५, प्रेमगंज, सीपरी, झाँसी

बुन्देली बसन्त २००९ की प्रति प्राप्त हुई। धन्यवाद। मेरी रचनाएं इस बार प्रकाशित नहीं हुईं। इस बार के अंक में जबलपुर क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं है। बुन्देलखण्ड में रकत की पुतरियां लेख शोधपूर्ण लगा, अपने आपमें नवीनता लिए हुए। बुन्देली के तेवर लिए दो नाटकों की प्रस्तुति महत्वपूर्ण रही। लोक चित्रों में समाया लोकहित रचना लोक की परम्परा के विलुप्त होते स्वरूप को उकेरती है। विलुप्त होते बुन्देली लोक वाद्य जो आलेख है वह अधूरा लगा क्योंकि इसमें और जो लोकवाद्य है, उनके बारे में नहीं लिखा गया जैसे तमूरा, तुरही, बंसी, चटकोली, लोटा, कसावरी, केंकड़ी, ढाँक, डड़ला, झालर, झूला, चमीटा, तारें इत्यादि। बुन्देली लोक काव्य परम्परा में कालीचरन, चतुरसिंह, मुन्नीलाल, पूनाबाई, नीलकंठ बलीराम, भवानी सिंह जैसे लोक रचनाकारों पर लेख आना चाहिये जो नहीं दिखे। इसी प्रकार से लघु कथाओं, कहानी की बुन्देली में कमी महसूस हुई। अंक पर मैं अलग से समीक्षा लिखने का प्रयास करूँगा, भेजूँगा। फिलहाल इतना ही –

– गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

कचनार सिटी, विजय नगर, जबलपुर

भाई श्री साकेत चतुर्वेदी जी के माध्यम से 'बुन्देली बसन्त' का फरवरी २००९ का अंक प्राप्त हुआ। साधनहीन व छोटे शहर से आप जिस तरह से बुन्देली साहित्य, संस्कृति व इतिहास को जीवित रखने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, उसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं। आप इसी तरह से इस कार्य को अंजाम देते हुए क्षेत्र, साहित्य, संस्कृति के विकास के लिए कार्य करते रहें, इसी कामना के साथ।

– किशोर श्रीवास्तव

९१६, बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली

बुन्देली विकास संस्थान बसारी की वार्षिक स्मारिका बुन्देली बसन्त २००९ के प्रकाशन पर टिप्पणी –

यह बुँदेली बसंत अंक सन दो हजार नौ।
अवगाहन करिकै बुन्देलखण्ड पहिचानौ।।
पुरातत्व इतिहास संस्कृति भाषा बोली।
अवगुंठित साहित्य शोध की गाँठें खोली।।
कवि 'भूषण' भाषत सुकवि, अरु बुध जन की जान है।
स्मारिका बसन्त यह, बुन्देली की पहिचान है।।
बुन्देली बसंतहि अंक मिलो, मन मोद भयो हिय हू हरख्यो।
कछु लेख विशेष कथा कविता, पढ़िकै बुनदेलि विकास लख्यौ।।

इतिहास पुरातन की बतियाँ, अभिलेखन की पतियाँ परख्यौ।
कवि 'भूषण' भाषत भावमयी, रचना लिखिकै यह छंद लिख्यौ।।
बुन्देली संस्थान को, यह बुन्देली बसंत।
दो हजार नौ अंक लखि, हमरे हिय हुलसंत।।
हमरे हिय हुलसंत, भाव जो मन में आये।।
छंदबद्ध कर शब्द सुमन तुम तक पहँचाये।।
साधुवाद सम्पादक जी कृति अति अलबेली।
नित नूतन सोपान चढ़े संस्थान बुन्देली।।

- कुँ. शिवभूषण सिंह गौतम

अन्तर्वेद, कमला कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

आत्मीय स्नेह स्वरूप आपके द्वारा भेजी हुई अमूल्य कृति 'बुन्देली बसंत २००६' की स्मारिका पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसे पढ़कर ऐसा लगा कि बुन्देली कला, सँस्कृति, साहित्य एवं इतिहास से संबंधित शोधपरक जानकारी/सामग्री हासिल करने वाले एक जिज्ञासु पाठक को और क्या चाहिए? बस! बुँदेली बसंत की स्मारिका ही काफी है। क्योंकि 'बुँदेली बसंत' के आने से बुँदेलखण्ड की पहचान और बुँदेली अस्तित्व जनक उज्जवल रोशनी चन्द्रकला की भाँति दिनोंदिन अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। यह बुन्देलखण्ड की अपूर्व निधि है। इसके सम्पादन एवं प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई। बुँदेली बसंत के लिए शुभकामनाओं सहित सादर प्रस्तुत।

- एल.एल. तिवारी

नगर पंचायत, शाहगढ़ जिला सागर

मांगलिकता/धार्मिकता की प्रतीक, मुख्य पृष्ठीय रंगीन छटा सँजोये, बुंदेली मिठास का पर्याय, सु-मधुर काव्यांश, सु-ललित-लेखांश, संस्मरण, साक्षात्कारांश, बुंदेली विकास संस्थान बसारी (छतरपुर) म.प्र. सु-स्मृति वाली, १२४ पृष्ठीय, १०वाँ अंक सैट 'बुन्देली बसंत' २००६ एक अनूठा प्रयास तो है ही, बुन्देली साहित्याकाश में भी स्थापित हो चुकी है। एक वाक्य में कुछ ऐसा भी लिखा जा सकता है कि "All this credit goes to the nice Editing" अब कुछ बुन्देली काव्य भी आपके लिए -

"खूबई अच्छी-अच्छी-अच्छी।। 'बुन्देली-बसंत' भी ना अच्छी।।
का-का कै दें - का-का छोड़ें, का-का न लिखें-ये है अच्छी।।
गेट-अप-संग-मोटापो नोनो - लेखक-कवियन-खाँ-है अच्छी।।
'सीकर' कहत खुशी लै मनमें मेहनत 'परमारजू' है अच्छी।।

- डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'

सीकर भवन, न्यू दतिया, पब्लिक स्कूल, ठंडी सड़क, दतिया

आप द्वारा प्रेषित बुन्देली बसन्त (१०/१०) मिला, इस महती कृपा के लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। बुन्देली विकास संस्थान के माध्यम से आपने बुन्देली भाषा, साहित्य, इतिहास, पुरातत्व तथा उसकी लोकधर्मी परम्पराओं को संरक्षित एवं संस्कारित करने का भागीरथ कार्य हाथ में ले रखा है। इससे भारत के अन्य अंचलों की साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन एवं मूल्यांकन करने की प्रेरणा प्रबल बनी है और अनेक विश्वविद्यालयों में शोधकार्य हो रहा है।

इस अंक में सकरांत, दराई-पिसाई के प्राचीन उपकरण तथा बुन्देली माटी का महाभारत विषयक टिप्पणी-आलेख पढ़कर इन पर विस्तार से जानने की प्रेरणा मिलती है, शोध के ऐसे विषय बहुत सारी वह सामग्री प्रस्तुत कर सकते हैं, जो इतिहास, संस्कृति और जीवनधर्मिता के कई नये अध्याय प्रस्तुत करने की सामर्थ्य लिये हैं। इधर मेवाड़ में ग्रामोद्योग विषयक शब्दावली पर वर्षों पूर्व अच्छा शोधकार्य हुआ है। दराई-पिसाई का उपकरण चक्की को इधर घट्टी कहते हैं, इसे विविध उपकरणों पर बड़े वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण हो सकता है, इससे उस क्षेत्र की उपज, जनजीवन तथा जीवनी संस्कृति का लेखा लिया जा सकता है। महाविद्यालयों में ऐसे विषय पर लघु अथवा पूर्ण शोधप्रबंध के लिए विषय में यदि लोकगीतों, गाथाओं का प्रचलन हो तो बड़ा व्यापक अध्ययन हो सकता है। जानकारी और चर्चा के अभाव में वह चीजें महत्वपूर्ण होती हुई भी उतनी ही गौण बनी रह जाती है इधर ऐसी घटनाएँ हुई हैं।

आपने बुन्देली बसंत को बुन्देली पर ही केन्द्रित कर बड़ा अच्छा किया। छतरपुर में आपके सानिध्य और आत्मीयता का स्मरण है, आशा है, आप सानंद एवं स्वस्थ हैं।

- डॉ. महेन्द्र भानावत

३५२, श्री कृष्णपुरा, उदयपुर

बुन्देली बसन्त २००६ अंक की समस्त सामग्री पठनीय और उत्कृष्ट है। इसमें आपकी प्रतिभा और परिश्रम साफ दिखाई देता है। दृष्टि के अभाव में ऐसी पत्रिका केवल उबाऊ और अप्रासंगिक संदेशों से अटी रहती है। आपने पत्रिका की आत्मा को जीवित रखा है। लेखों के सुरुचिपूर्ण चयन और अनुभागों में विभाजित कर आपने अपने संपादकीय विवेक का भी बेहतर परिचय दिया है। साधुवाद।

बुन्देली संस्कृति, साहित्य और कला का आईना बन गई है 'बुन्देली बसन्त' पत्रिका। इतनी गंभीरता से दृष्टि के साथ काम करने वाले बहुत कम दिखाई देते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस पत्रिका में 'अनुषंग' के रूप में बुन्देली की वाचिक परम्परा की किसी भी विधा पर एक पुस्तिका भी आये। धीरे-धीरे बुन्देली की समस्त वाचिक परम्परा का संकलन संरक्षण हो सकेगा।

- वसन्त निरगुणे

एच-७, उमा विहार, नयापुरा कोलार रोड, भोपाल-४२

बुन्देली बसंत २००६ अंक पढ़ा। पढ़कर मन बहुत प्रसन्न हुआ। इसमें समस्त बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परम्पराओं के बारे में जानकारी समेटने की कोशिश की जाती है। इसको पढ़ने से पता चलता है कि बुन्देली में इस समय क्या लिखा जा रहा है? यह शोधार्थियों के लिए एक अनिवार्य पत्रिका बन गई है।

- दिनेश रजक

आकाशवाणी केन्द्र, छतरपुर

बुन्देली गद्य की विकास यात्रा

- हरिविष्णु अवस्थी

'गद्य के पीछे पद्य का जन्म लेना स्वाभाविक है। किन्तु संसार के लगभग सभी साहित्यों में जो पहली कृति हमको मिलती है वह पद्य में।' ठीक यही स्थिति बुन्देली साहित्य की भी रही है। इसमें पद्य साहित्य तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य उसकी तुलना में नगण्य है।

बुन्देली गद्य के स्वरूप निर्धारण की प्रक्रिया सौलहवीं शती में, गढ़कुंडार नरेश रुद्र प्रताप द्वारा सन् १५३१ ई. में अपनी नवीन राजधानी ओड़छा में शिलान्यास तथा ओड़छा राज्य की स्थापना से हुई। महाराजा रुद्रप्रताप उसी वर्ष दिवंगत हो गये। उनके ज्येष्ठ पुत्र भारती चन्द्र (१५३१-५४ ई.) ओड़छेश हुए। उन्होंने बुन्देली को अपने राज्य की 'राजभाषा' के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके पश्चात् उनके अनुज ओड़छेश मधुकर शाह जू देव (१६५४-९२ ई.) के शासनकाल से ही ओड़छा राज्य का विखण्डन आरंभ हो गया। फलस्वरूप धीरे-धीरे पूरे बुन्देलखण्ड में अनेक बुन्देला एवं गैर बुन्देला राज्यों का उदय हुआ।

बुन्देलखण्ड भू-भाग के सभी बुन्देला एवं गैर बुन्देला शासकों ने 'बुन्देली' को ही अपनी राज्य भाषा बनाये रखा जिसके प्रमाण स्वरूप देश की स्वतंत्रता के पूर्व तक बुन्देलखण्ड के विभिन्न नरेशों द्वारा प्रदान किये गये ताम्रपत्र, सनदें, पट्टे, बचनपत्र, आमंत्रण पत्र, पत्राचार आदि के रूप में भारी मात्रा में उपलब्ध हैं। मधुकर शाह जू देव के आश्रित हिन्दी भाषा के प्रथमाचार्य महाकवि केशव दास मिश्र के अग्रज पं. बलभद्र मिश्र की कृति 'उपवन विनोद' (अप्रकाशित) में सर्व प्रथम हमें बुन्देली गद्य के दर्शन होते हैं। संस्कृत के इस ग्रंथ में श्लोकों की टीका की गई है। यथा -

श्लोक - अद्धपुरुषो धमनीः परावत सान्निमश्च पाषाणः
मद्भवति तत्र नीला दीर्घ कालं च बहुतोयं।।३८।।

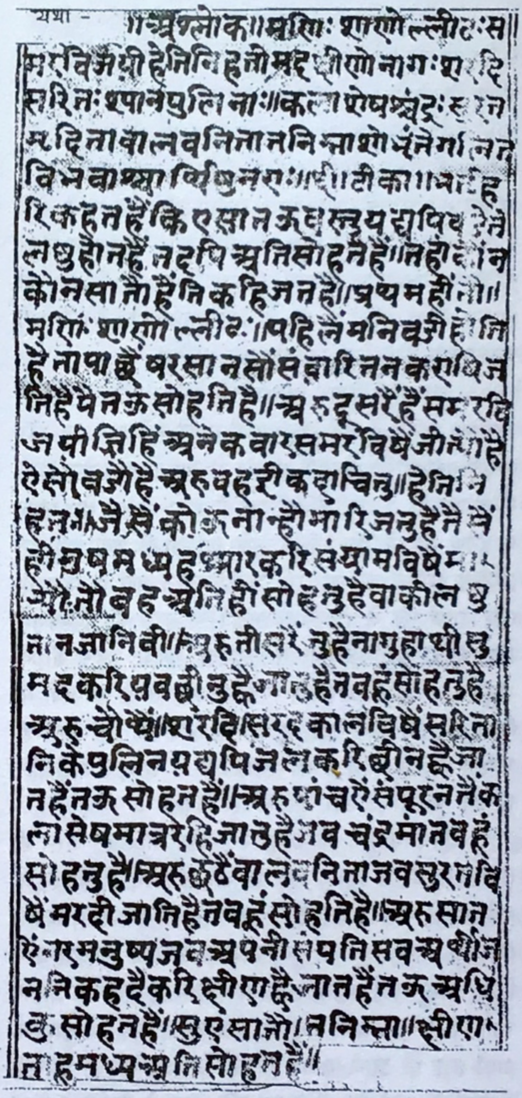
अर्थ - ताहां चिन्हु आधे पुरुष पर झिरु बहे। पाठांतर विषे आधे पुरुष (पुरसा) पर मछुरी निकरै अरु परेवा के वर्ण पाषाण निकसे अरुकारी माटी निकसे तहाँ अषूट जल रहै।।३८।।

श्लोक - वाल्मीको पथिताया निगुड्या दाक्षनेक स्त्रयोत्माने।
पुरुषः त्रयेस यदि भवति जलं स्वादु चाशोऽष्य।।३९।।
रोहितमत्स्योर्द्धनरे मृच्चापि पांडुरा ततः।
परतः सिकताश्चर्कराश्च क्रमेण भवेत्यं भवः।।४०।।

अर्थ - बांबी ऊपर अथवा निकट नगढ़ि (निगुड्या) वृक्षु होइ तातें दक्षिण दिशि तीनि हाथ पर षोदजे तौ सवा तीनि पुरुष परि स्वाद्यु जल निकसै। तातै पाछै अंसोषुं जो कबहू न सूखे, तहां लक्षण जु आधे पुरुष पर रोहू मछरी निकसै तातै पाछै पांडुर वर्ण माटी निकसै, तातै आगै बारु सहित माटी निकसै तातै जलु निकसै।।३९-४०।।

मधुकर शाह के तृतीय पुत्र इन्द्रजीत 'धीरज नरिन्द्र' ने 'भर्तहरि त्रिशतक' की टीका की थी।

यथा -


॥अथ श्लोक॥ मणिः शाणोल्लीढः स
मरविजयी हेतिनिहतो मदक्षीणो नागः शरदि
सरितः श्यानपुलिनाः॥ कलाशेषश्चन्द्रः सुरत
मृदिता बालवनिता तनिम्ना शोभन्ते गलित
विभवाश्चार्थिषु नराः॥ टीका॥ भर्तृह
रि कहत हैं कि ए सातऊ वस्तु यद्यपि ऐते
लघु होत हैं तदपि अति सोहत हैं॥ तहां कौन
कौन सातौ हैं ति कहियत है॥ प्रथम हीं तो॥
मणिः शाणोल्लीढः॥ पहिलैं मनि बड़ी होति
है ता पाछैं षरसान सौं संवारि तनक राषिज
ति है पै तऊ सोहति है॥ अरु दूसरैं है समर वि
जयी जिहिं अनेक बार समर विषैं जीत्यौ है
ऐसो वजौ है अरु वह टीकरा चिन्तु॥ हेतिनि
हत॥ जैसें कोऊ नान्हौ मारिजतु है तैसें
हीं मुष मध्य हथ्यार करि संग्राम विषैं मा
र्यौ तौ वह अति हीं सोहतु है वाकी लघु
ता न जानिवी॥ अरु तीसरैं जु है नागु हाथी सु
मद करि यव छीनु ह्वै जातु है तवहूं सोहतु है
अरु चौथैं॥ शरदि॥ सरद काल विषैं सरिता
नि के पुलिन यद्यपि जल करि छीन ह्वै जा
त हैं तऊ सोहत हैं॥ अरु पांचऐं संपूरन तैं क
ला सेष मात्र रहि जातु है जब चंद्रमा तवहूं
सोहतु है॥ अरु छठैं बालवनिता जब सुरत वि
षैं मरदी जाति है तवहूं सोहति है॥ अरु सात
ऐं नर मनुष्य जब अपनी संपति सब अर्थीज
ननि कह दै करि क्षीण ह्वै जात हैं तऊ अधि
क सोहत हैं॥ सु ऐसा जो तनिम्ना॥ क्षीण
ता हू मध्य अति सोहत है॥

अर्थ - भर्तहरि कहत हैं किए सातऊ वस्तु यद्यपि बड़े ते लघु होत है तदपि अति सोहतै हैं। तहां कौन कौन सातौ हैं कहियत है। पहिले मनि बड़ी होति है ता पाछै षरसान (मरसान) सौ सवारि तनक राषि जाति है पै तऊ सोहति है। अरु दूसरैं है समर विजयी जिहिं अनेकबार समर विषै जीत्यौ है ऐ सोव जौ है। जैसें कोऊ नान्हौ मारिजतु है तैसैं ही मुष मध्य हथ्यार करि संग्राम विषै मारयौ तौ वह अति ही सोहतु है बाकी लघुता न जानिवी। अरु तीसरैं जू है नागु हाथी सु मदिकरि यव छीनु ह्वै, जातु है तवइ सोहतु है, अरु चौथै सरद काल विषै सरतानि के पुलिन यद्यपि जल करि छीन है जात हैतऊ सोहतु है। अरु पांचऐ संपूरन तै कला सेष मात्र रहि जातु है जब चंद्रमा तबहूँ सोहतु है। अरु छठै बाल

वनिता जब सुरत विषैं मरदी जाति है तब हूं सोहति है। अरु सातऐं नर मनुष्य जब अपनी संपति सव अर्थी जननि कह दै करि क्षीण है जात है तऊ अधिक सोहत है। सु ए सातौ क्षीणताह मध्य अति सोहत हैं।

भर्तहरि त्रिशतक की टीका पर बिट्रिश विद्वान आ.एस. मेग्रगैगर ने शोधकार्य किया था। किन्तु बुन्देली का इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि मेग्रगैगर ने अपने इस ग्रंथ को 'Early Prose of Brij' शीर्षक दिया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ग्वालियर के निकट आँतरी (बुन्देलखण्ड) के निवासी सूरदास ब्रज में जा बसे थे और वहाँ उन्होंने विपुल साहित्य की रचना अपनी बोली में की। श्री मद्भागवत् की टीका तथा उनके द्वारा रचित अन्य विपुल साहित्य का पाठकों एवं श्रोताओं पर इतना प्रभाव पड़ा कि यह एक सामान्य धारणा निर्मित हो गई कि यही ब्रजभाषा है। जिसने आगे चलकर ब्रज की मानिक भाषा का रूप ले लिया।

प्रायः सभी विद्वान स्वीकारते हैं कि ब्रज और बुन्देली के आरंभिक स्वरूप में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं था। ब्रज और बुन्देली मध्यदेशी या शौरसैनी अपभ्रंश से उद्‌भूत मध्यदेशीया हिन्दी के दो रूप हैं। ये दोनों बोलियाँ एक ही भाषा के रूप थे। आरंभ में इनके रूप में कोई अन्तर नहीं था। १६वीं शती तक इन प्रादेशिक बोलियों का रूप पूरी तरह निर्धारित नहीं हो पाया था और उनके रूप में परस्पर समानताएँ भी बहुत थीं। विशेषकर, ब्रज, बुंदेली और कन्नौजी में। साहित्य मनीषी राहुल जी के अनुसार - "बुंदेली और ब्रज में इतनी समानता है कि अभी भी कितने ही ब्रज भाषा-भाषी बुन्देली को ब्रज की एक बोली ही समझते हैं। जब आज इतनी समानता है तो आज से साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व तो वह और अधिक रही होगी।"

मिश्र बन्धुओं के अनुसार "खोज में प्रिया दास जी (नाभादास जी के शिष्य) कृत भागवत भाषा भी लिखी है जो बुन्देलखण्डी भाषा में बनी है।" ज्ञातव्य है कि डॉ. श्याम बिहारी मिश्र एवं उनके अनुज श्री शुकदेव बिहारी मिश्र को बुन्देलखण्ड में स्थित छतरपुर एवं ओड़छा राज्यों में अनेक वर्ष दीवान के रूप में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। इस कारण भ्राता द्वय बुंदेली के अच्छे ज्ञाता थे। इसके पश्चात् ओड़छेश जसवंत सिंह की महारानी चन्द्रावती के पढ़ने हेतु श्री वैकुण्ठ मणि शुक्ल ने 'वैशाख महात्म्य' ग्रंथ की रचना गद्य में की। यथा -

श्री गनेशाय नमः।। अथ भाषा 'बैसाष महातमु लिष्यते।' प्रथम ही श्री गनेस जू कौ दंडवति करकै पुनि श्री देवी सरस्वती जू कौ दंडवति करकै श्री नाराइन जू कौ दंडवत् करिकै।। पुनि व्यास जू कौ दंडवत करकै।। सब देवतन की कृपा तै। अरु प्रसाद तै वैकुंठमनि सुकल।। श्री महारानी श्रीरानी चंद्रावती के धरम पढ़िवे के अरथ।। यह जय रूप ग्रंथ वैसाष माहतमु भाषा करत भये।।१।। ऐक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तै उठि कै।। सुमेर परवत कौ गये पुनि श्री गंगा जी कौ प्रवाहु देषि प्रथी विषै आये। तहां सब तीरथन के दरसन करत भये।।२।। तब श्री राजा अंवरिष के यहां आये। जब राजा अंवरीष नारद जी की नजीक आए की षवर सुनी।। तब ही उताइल कै सभा तै उठि आगे होइ लये। भली भांति दंडवत करे।।३।। पुनि अरध पावड़े करिकै सिंघासन पर बैठारे। अति आनंद सौ पूजा करी। अरु चरनोदक माथे पर धरयौ। पुनि राजा अंवरीष नारदजू की अस्तुति करन लागे।।४।।

अंतिम गद्यांश - श्री महारानी चन्द्रावती की कोटि वरष आरवल होइ।।२।। पोथी श्री महारानी चन्द्रावती लिषाई।। इति श्री मत्स कासीस्वर गहिरवार दिविधि विरदावली विराजमान मानोनत 'बुंदेलावतंस श्री महाराजाधिराज श्री राजा जसवंत सींघ जू देव तस्य धर्म पत्नी श्री महारानी श्रीरानी चन्द्रावती जू देवि स्फुट धर्म प्रवोधार्थ पं श्री सुकल वैकुंठमनि विरचिताया पदम पुरानोक्त षा ताल षंडे भाषा वैसास महातमे द्वादसमोध्याया।।१२।। संपूरन समापतं जैसी प्रति पाई तैसी लिखी ममदोष न दीयते लिषितं श्री प्रधान सक्त सींघ वा देवी सीघ सुरहरिया असाढ़ सुधि ११ सं. १७६६'

वैकुण्ठ मणि शुक्ल की एक द्वितीय गद्य कृति है 'अगहन महात्म्य' कृति के गद्य की बानगी प्रस्तुत है। यथा -

सिधि श्री गणेशाय नमः।।श्री सर्स्वती नमः।। अथ अगहन महातम कथा भाषा लिषते।।प्रथम श्री गनेश सरस्वती नरनारायन जू व्यास जू कौ डंडवत् करिजै तब कथा कहिजै।।१।। देवकी को आनंद के देनहारे सब जगत के सुष के दाता भू गति मुकति के दाता लछिमी के प्रभु जो हैं। श्री कृष्ण तिन कौ दंडवत करिकै कथा कहीजै।।२।। श्री सरस्वति उवाच।। सुत पौरानिक नेमषारन्य छेत्र में अठासी हजार रिषिस्वरनु सों कहत भये।। जे ब्रह्मा जू श्री नारायन कौ पूछो।। श्री नारायन ब्रह्मा जू सों कथा कही।। सो सूत जू कहत भये।।

अंतिम गद्यांश - अरु श्री दूलैया हरिबंस कुवर जू देव्या की जय करै।। अरु मनो कामना पूरन करै। इती श्री मकसीस्वर गैहरवार दिविधि विरदावाली विराजमान ।।मनोनत।। बुंदेलबंस अवतंस श्री महाराजाधिराज श्री राजा श्री महाराज सावांष सिंघ जू देव महिईन्द्र बहादुर जू (१७५३-६५ ई.) तस्य धरम पतिनी श्री महारानी श्री रानी श्री महारानी मौहन कुवर जूदे व्यास पुस्ट धर्म प्रबोधाथर विरंचताया सकंद पुरानो अगहन माहतम भाषा वैकुंठमनि सुकल वरनं नाम तीसमो धाय।।संपूर्न समापता।।

ज्ञातव्य है कि उपरोक्त "वैसाष महातमु' एवं 'अगहन महातम' की पांडुलिपियाँ वर्तमान ओरछेश मधुकर शाह जू देव 'द्वितीय' के राज्य ग्रंथालय में सुरक्षित हैं।

श्याम सुन्दर दास द्वारा सम्पादित परमाल रासौ (महोबा खण्ड) ग्रंथ के बीच-बीच में वाचनिक (वचनिका) का प्रयोग हुआ है। वे इसे विक्रम की सत्रहवीं/अठारहवीं शती में किसी बुन्देलखण्डी कवि की रचना मानते हैं। परमाल रासौ में गद्य में लिखा वाचनिक का उदाहरण इस प्रकार है - "जब दीप के समीप जिहाज पहुंच्यो तब राजा वुल्लिय ने केहा महाराज सहसा दीप न चालिये। राजन को राजनीति में अजोग्य है। दीप में दुष्ट जीव बहुधा होत हैं। मयंद, गयंद, दीक्ष, आहि, भीरादिक तहां महाराज न पधारियो अरु म्हां कौ आयसु होय तौ अवलोकि आऊं। परीक्षा करि विनय करि हौं। सेवढ़ा के अक्षर अनन्य ने अनेक ग्रंथों की रचना की। सत्रहवीं शती के गद्य का स्वरूप उनके 'अष्टांग योग' में मिलता है। यथा-

आसंका गीता की में उन्होंने लिखा कि - "अरजुन सौं कही कै तुम्हारी देह में जु ईस्वरता है ताही के सरन होउ। सु ईस्वरता करता की है। देह में वाही कौ करूयौ होत है। जैसे कुम्हार चक्र भरमाउत है तब बासन बनाउत है। तैसे करता बुद्धि कौं भरमाइ कै कर्म कराउत हैं तब फल देत है - दुख के अरु सुख के। सुबुद्धि कौ भरमाइवौ यह है जब कछू मनुष्य करूयौ चाहत है तब पहिल तौ सोच विचार सन्देह उपजत है तब विचार करि कै कर्म करत है। ताकर्म तै जु फल होत है सो करता के अधीन है।"

आसंका रामचन्द्रिका की में अक्षर अनन्य ने लिखा कि "राम जू वसिष्ठ कौं पूछी कै जीव बासना के बस जनम मरन अनेक कलेसनि में परै हैं सु कौन भांति उधरै। तापै वसिष्ठ ने चारि तरह के साधन कहै। एक तौ साधु संगति करे, दूसरे संतोष राखै, तीसरे विचार राखे, चौथे समता राखे। सु साधु संगति कौ साधन यहै जु ग्यान चरचा कहिवौ सुनिवौ करै। इतै उतै के बकवाद छूटि जाइ। अरु संतोष तैं भरमना मिटि जात है। संसार त्रस्ना कौं भरमत फिरत है।

अनेक वर्षों तक छतरपुर में शिक्षक रहे साहित्य मनीषी लाला भगवान दीन 'दीन' ने लिखा है कि "अठारहवीं सदी में बुन्देलखण्ड में गद्य लेखक एवं नाटककार भी हुए हैं।" किन्तु उन्होंने नामोल्लेख नहीं किया है।

ओरछेश विक्रमाजीत सिंह (१७७६-१८१७ ई.) एवं दतिया नरेश पारीछत सिंह (१८०१-१८३६ ई.) के राजत्वकाल में सन् १८१६ ई. में परस्पर गलत फहमी के कारण बाघाट (बीजौर) नामक स्थान पर दोनों राज्यों की सेनाओं के मध्य झड़प हो गई। इसका वर्णन आनंद सिंह कुड़रा ने 'बाघाइट राइसौ' नामक एक लघु पुस्तिका में बुन्देली में छंदबद्ध किया है। बाघाइट राइसौ का प्रारंभ गणेशवन्दना के दोहे के बाद एक गद्य पंक्ति में किया गया है "श्री महेन्द्र महाराज ने तरीचर लैबे को मनसूबा करौ।' बुन्देली गद्य का समकालीन स्वरूप बाघाट रासो में देखने को मिलता है। रासौ की भूमिका गद्य में लिखी गई है। यथा -

"श्री गणेश जू! मौजे बाघाइट कौ फौज गई। दतिया तैं चैत्र सुदी १४, संवत् १७८३ अमल संवत् १८७२ ता दिन दतिया तै श्री दिमान दिलीप सिंघ किसुनगढ़ के ते फौज सुघ्या (सुदया) गए, सो उनाव डेरा करो फेर दलीपनगर तै बैसाख वदी १४, सक्रे कौ पं. श्री सिकदार धनसिंघ गए सौ मौजे उनाउ मैं सब मेलें भईं। फेर वदी ३० सन्नौ को उनाउ तै कूच भयौ सौ बड़े गाँउ तै चलत नौहट की पैली तरफ बागन में डेरा भए। फेर उहाँ तै सुदि १ रबौ नौहट घाट उतरि बाघाइट सौ फौज जा लगी। फेर वैसाख सुदी २ रवौ बाघाइट लूटी। गाँउ मै आग लगी। बैहर चली। फौज ने हल्ला करो बिना हुकमै सो बाघाइट के मान्स ठाकुर बौहत मरे।"

"इस रासौ के बीच-बीच में भी गद्य का प्रयोग मिलता है। अंतिम पंक्तियाँ गद्य में हैं जो पद्य की तरह लिखी गई हैं -

"बैसाष सुदि १५ संवत् १८७३ अमल संवत।
१८७२ लिष्यते प्रधान आनंद सिंघ कुडरा।
पोथी घाइ सुभ संवत मंगल ददातु।
जहं बाघाइट की न्याउ सौ बडगैयन कौ।
उदासी भई। दतिया में षुसी भई।।

दतिया नरेश भवानी सिंह (१८५७-१६०७ ई.) के शासन काल में खेली जाने वाली रामलीला हेतु तैयार की गई हस्त लिखित प्रतियों में भी बुन्देली का प्रयोग हुआ है। संवत् १६०१ (१८४४ ई) के रामलीला कार्यक्रम का विवरण बानगी के रूप में प्रस्तुत है -

"याद रामलीला प्रकरण की चैत्र सुदी ६, संवत १६०१
चैत्र सुदी ६ शुक्रे कौ जन्मोत्सव आनंद समाज १
चैत्र सुदी १० शनी कौ विश्वामित्र कौ आवौ जग्य पूर्ण २
सुदी ११ रबौ कौ सिला उद्धार विदेह भैट नगर देषवौ ३
सुदि १२ सौमे कौ फूल वाटिका होइ ४
सुदि १३ भौमे कौ धनुष जग्य परसराम वाद विवाह ५
सुदि १४ बुधे कै पंगति ६
सुदि १५ गुरौ कौ तिलक की तैयारी वन जात्रा श्रंगवेरपुर वास ७

भारत सरकार ने गियरसन के माध्यम से सन् १८६४ ई. में देश का भाषा सर्वेक्षण कराया था। बुन्देलखण्डी भाषा का विवरण जिल्द ६ भाग १ में दिया गया है। ग्रियरसन ने प्रोडीगलसन नाम की कथा का सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली 'बुन्देली में अनुवाद' कराया। उसका उद्देश्य बुन्देली भासिक क्षेत्र एवं उसकी भिन्नता के कारण उप बोलियों को ज्ञात करना था जो वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में बोली जा रही थी। ग्रियरसन द्वारा संकलित, बुन्देली के विभिन्न स्वरूपों के यह ठोस नमूने हैं।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा सर्वेक्षण से ओड़छा और झाँसी जिला में बोली जाने वाली बुन्देली की जो बानगी प्रस्तुत की है वह अवलोकनीय है। यथा -

ओरछा की बुन्देली - एक बेरै एक हाँथी मर गवो तो। जब ऊकौ जी जमराज कै गवो, तो उन नै पूँछी कैं तैं इतनौ बड़ौ है और आदमी इतनौ हलकौ है, ऊ के बस में काये रात? हाथी को जी बोलो कि तुमैं मुरदन सैं काम परत है अबै जिंदन सैं काम नईं परो। जमराज सोचन लगे कै जिंदा कैसे होत ई हैं। अपने जमदूतन खां हुकम दवो कि जाव सिंसार सैं एक जिंदा लै आवो।"

झाँसी जिला की बुन्देली - "एक माते की छीर के ढिगाँ एक गरीब किसान की खेती ठाड़ी ती। ता खों लख कैं माते बोलो कि काये रे, हमारी खेती अपने ढोरन सें चरा लयी, तोखों देख नयी परत कि हम रखबारी करे हैं? किसान बोलो कि माते कक्का ढोर तो मोरे भुन्सारे सैं हारे बरेदी लई गऔ। माते ने सुन के कयी कि काल तेरौ बाप हमारी फिराद के लाने चऊतरे जात तो।

अपने पितामह ओरछेश प्रताप सिंह जू देव के देवलोक वास के पश्चात् ४ मार्च १६३० ई. को वीरसिंह जू देव 'द्वितीय' सिंहासनारूढ़ हुए। उन्होंने बुन्देली एवं हिन्दी के विकास हेतु श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़ की दिनांक १५ अप्रैल १६३० को स्थापना कराई। अपने हिन्दी के शिक्षक रहे पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को टीकमगढ़ बुलाकर १ अक्टूबर १६४० से 'मधुकर' पाक्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ कराया। मधुकर बुन्देली

भाषा सम्बन्धित सामग्री को प्राथमिकता के आधार पर प्रकाशित करता रहा।

मधुकर के सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा टीकमगढ़ के तत्कालीन जेलर श्री दुर्गा प्रसाद जी समाधिया को लिखे गए पत्र का अंश अवलोकनीय है। यथा -

"आप मधुकर के लिये अवश्य कुछ न कुछ लिखैं। ग्रामगीत बुन्देलखण्डी भाषा के शब्द इत्यादि जो भी विषय आपको पसंद हो उन्हीं पर लिखिये। आपके अधीनस्थ महात्माओं में तो बहुतों को ग्राम-गीत याद होंगे।"१७ (यहाँ महात्माओं से अभिप्राय बंदियों से है)

ओड़छा निवासी ठाकुर भगवान सिंह गौड़ ने गाँधी जयन्ती १६५६ ई. पर 'अथाई की बातें' प्रथम एवं द्वितीय खण्ड बुन्देली गद्य कृति प्रकाशित कराई। आपकी द्वितीय कृति 'अथाई की बातें' तृतीय खण्ड १६६५ में तथा 'अथाई की बातें' चतुर्थ खण्ड सन् १६७६ ई. में प्रकाशित हुए जो बुन्देली गद्य के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। गद्यांश के रूप में बानगी अवलोकनीय है -

खण्ड १ पृष्ठ ८ - "करनसिंह लम्बरदार बड़े भोर टेका की पिड़ी डारें अथाई पै बैठे सन कात रये हैं, जिनके मूँड़ पै सोरा हाथ सुपेद छांटी को स्वापा बंदौ, आँग में परमटा की तननदार कतैया पैरें, कतैया मैं अमोवा की वौ बारीक गोटलगी कै देखें चइये।"

खण्ड २ पृ. ४३ - "मुखिया बोले तुम निगौ हम दातौन करकै आउत। उजबक लाल अथाई पै बैठे के रए आज कछु कलेवा कौ डौल-डाल नैंया और भूख सो बड़ेई भोर सैं लगयाई। लम्बरदार बोले भौत मीठी महुवन कौ धरौ है मुरका, बड़ेई भोर सैं लगयाई। लम्बरदार बोले भौत मीठी महुवन कौ धरौ है मुरका, जी मैं दाखैं, चिरौंजीं और खुरोरू डरी है और भुंजी तिली मिली है। कव तौ मगावै?

खण्ड ३, पृ. ४१ - कस्तूरी बोली कछू ना कवौ बैन एसेई तो वे पापी आय जिनसे जा धरती मैया दुखी है दूसरे एक करै सबै लजावे, पै जे एसे काम तबसें होन लगे जबसें सिरकार और समाज कौ बन्दस टूट गव वैसे ऐसी बातें कभऊ सुना परत्ती अबतौ सबके आंगे मांस जा कऊत कै जो जीकै राजी सो का करै काजी।"

खण्ड ४, पृ. २३ - किदरीलाल बोले कै हंसी-हंसी मसकरी में कभऊँ-कभऊँ ठाई न्याव सोऊ हो जात कानात है कै रोग की जर खांसी न्याव की जरहांसी" मालवा वारे बोले कै 'मऊवा मेवा बेर कलेवा, गुलगुज बड़ी मिठाई और अचार खांय चावतौ विन्दयखंड में करौ सगाई। जई बात पै मोटे वारिन से बड़ी वैसा-वासी हो गई।'

सन् १६६२ ई. से श्री कन्हैयालाल जी 'कलश' ने गुरसराय से 'बुन्देलीवार्ता' का प्रकाशन प्रारंभ किया था जिसमें एक पृष्ठ 'बुन्देली गद्य हेतु निश्चित था जिसमें विभिन्न लेखकों के विविध विषयों पर छोटे-छोटे बुन्देली गद्य में आलेख प्रकाशित होते रहे।'

सन् १६८६ ई. में दतिया निवासी श्री हरिमोहन श्रीवास्तव का बुन्देली में नाट्य संग्रह 'गाँव की बातें' नाम से प्रकाशित हुआ। बुन्देली गद्य की बानगी देखें -

नाटक 'अच्छे दिन', पृ. १, "घसीटे! कौन की कईती का गान लगे (कडोरे सै) करोड़ा तै गा कौनउ रावला। कड़ोरे-ठीक तो गा रओ है। औसर की सब बात नौनी लगत। खेतन में जनी मानसन में सवरैं बसंत बगरौ फिर रवो।" इसके अतिरिक्त झांसी के राजाराम साहू 'विक्रम' की बुन्देली गद्य की एक कृति 'बोल बुन्देली बोल' भी इसी दौर में प्रकाशित हुई। जिसका विवरण प्रयास करने के बाद भी उपलब्ध नहीं हो सका है।

सन् १६६१ ई. में बुन्देली गद्य की एक कृति 'बाँके बोल बुन्देली के' श्री कैलाश मड़वैया के सम्पादन में प्रकाशित हुई थी। इस कृति में संकलित विविध सामग्री बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों के बुन्देली गद्य लेखकों के हैं जिससे इसमें बुन्देली गद्य की विविध ता में एकता का स्वरूप दिखाई देता है।

बीसवीं शती के अंत में छतरपुर से 'बुन्देली बसंत' स्मारिका का प्रकाशन हुआ। प्रति वर्ष बृहद कलेवर के साथ प्रकाशित इस स्मारिका में बुन्देली गद्य का स्वरूप देखने को मिल जाता है। इसके पूर्व छतरपुर से ही प्रकाशित 'मामुलिया' (सम्पादक डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त) ने भी बुन्देली गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

सन् २००० ई. में झांसी के डॉक्टर रामनारायण जी शर्मा ने बुन्देली गद्य की कृति 'बुन्देली कहानियाँ' प्रकाशित की। इस कृति पर उत्तरप्रदेश शासन का 'मैथलीशरण गुप्त पुरस्कार' सन् २००२ ई. का डॉ. शर्मा को प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया गया।

सन् २००३ में डॉ. रामनारायण शर्मा के सम्पादन में 'बुंदेली बानी' स्मारिका का 'बुन्देली कथा' अंक प्रकाशित हुआ जिसमें बुन्देली गद्य में लिखने वाले कथाकारों की १६ कहानियाँ संकलित हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. शर्मा की - १. बुन्देली वार्ता ग्रंथ, २. यात्रा कथा, ३. बुंदेली के कथाकार, शीर्षक कृतियाँ सन् २००६ ई. में बुन्देली गद्य पर आधारित प्रकाशित हुई हैं। इसी वर्ष संभवतः बुन्देली गद्य का प्रथम उपन्यास 'जय राष्ट्र' डॉ. रामनारायण शर्मा का प्रकाशित हुआ। 'जयराष्ट्र' उपन्यास के गद्य की बानगी देखें - "श्रीराम ने ताड़का मारीच, सुबाहु के मारबै सैं आश्रमवासी खुश हते तो श्रीराम कौं जनता में सरायो गयो। राम लक्ष्मन को देख नर-नारी खुश भये।"

सन् २००८ ई. में श्री कैलाश मड़वैया के सम्पादन में बुन्देली गद्य का एक संकलन 'मीठे बोल बुन्देली के' प्रकाशित हुआ है। इसमें भी बुन्देलखण्ड भूभाग के विभिन्न क्षेत्रों के निवासी साहित्यकारों का गद्य संकलित है।

इस प्रकार विगत चार सौ वर्षों से बुन्देली गद्य उत्तरोत्तर विकास की दिशा में अग्रसर हैं। गद्य लेखन के प्रति लेखकों के अतिरिक्त जनसामान्य में भी आकर्षण बढ़ा है और बढ़ रहा है यहाँ तक कि अब तो विवाह आदि के आमंत्रण पत्र भी बुन्देली में ही बहुतायत में लिखे जा रहे हैं। जिन्हें देख सुनकर बुन्देली का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

- अवस्थी चौराहा, किले का मैदान, टीकमगढ़

फूले-फूले हो पलैयन पलास

- आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

अमलतास फूल उठे, आमन पै बौर झूम उठे, लखौतौ-कारीकुरूप कोयलिया नें बौर का चीख लऔ? बा तौ खुद बौरा गई और गुरीरी तान छेड़ दई। कुहू..कुहू..कुहू... जा डार सें बा डार, बा डार सें जा डार, डारन डार कुहुकत-फुदकत हाल फूल में कछू और भाँत की हो उठी। ऊकी बेचैनी का है, सो तौ बौई जानें। का कँयँ? और का नहँ कँय? मद भरी बैअर में तौ नसा सौ घुर गऔ है। बैअर के छीतनइँ पंछी तौ पंछी लोग-मान्स लों बेहाल हो रए हैं। ऐसे में पलास तरें लछी अपनी एक गुइँयाँ से जोंन बतकाऔ कर रई वौ सुनकें पलास नें देखौ कै गुनी-मुनी का कँयँ जे तौ सबई कौ मन मोरँइँ। उतै ईसुरी सोई गा उठे कै -

"सुनतन फाग ईसुरी तेरी, तिरिया मुड़कें हेरी।
चाउन लगीं मरद सें मिलवौ, आउन लगीं घनेरी।।.."

ईसुरी की फागें सुनकें पलास को भरोसों हो गऔ कै बसन्त आ गए। फिर तौ पलास फूले नइँ समाए और धरनी पै ईंगुर से बगर परे। कवीसुर पद्माकर कों कनें परी कै "बगरौ बसंत है।"

उतै गाँव के परजापति सुन्ने बब्बा खों मोंड़ी-मोड़न ने घेर लओ और कई - बब्बा, किसा सुनाऔ। सुन्ने बब्बा तौ सियानें हैं। उननें किसा सुनाई कै - "भगवान राम जब वन खों जान लगे तौ पूरी अवधपुरी नें अँसुआ ढारे और अजुध्या के सबरे नर-नारी उनें गेंवड़े लों पछयाँयँ गए। मंत्री सुमंत जू ने औसर समझ-परख कें रथ दै हाँकों। रथ के घुड़ला हवा सें बात करत छूमंतर हो गए, रथ छिन भर में काँ सें काँ पोंच गऔ? अजुध्यावासी अपनी निगा पसार कें रथ की लाल धुजा देखत रै गए। रथ की लाल धुजा कौ रंग सोई हँराँ हराँ आँखन सामूँ से हिलविलान सी हो चलौ। कत है कै समय ठाँड़ौ नइँ होत, सो समय जातन कछू देर नइँ लगत। अजुध्यावासियन खों आसा की धुजा दूर वन में छेवले नें दिखा दई। जियें देख दुखी मन खों धीरज बधौतों। तबइँ से छेवले कौ फूलवौं सुभ सगुन मानों गऔ है। सो छेवले फूले और आसा जगी मानों नई आसा फूल उठी।"

पलास तौ बन-भूम सिंगार है। प्रेमियन के लाजें पलास आसा लैकें ठाँड़ो कै निरासा अपने आप छूमंतर कर देत है जो। अबला खा सें जोंन रसिया भरे पूरे हैं उनके लाजें दहक भरौ अँगरा का अंगरन कौ बड़ौ खजानों है जौ पलास। राग की आग है। रूप की, रूप में बसे रस की, छुवन की आग है। छुवन जो बिन कँय बोलत, गन्ध सी घोरत और बगरादेत बसंत छिन भर में। ई अनोखी आगी के बोल कोऊ सुन नइँ सकत और न गंध-गंध कोऊ सूँघ सकत। पलास के मद भरे बोल सुनैया तो रसियाइ होत। मनें रसिया होवौ पैलाँ जरूरी है। बोल ऐसे कैसे ग्रोंनन नइँ सुना परत, रस कौ जो भरम जानें वे ई स्रोना सुन सकत है। इतेकई नहँ हियौ ऐसौ होंय चइये कै जी खों पसु-पंछी, पेड़े-पौधा, विरछन सें लिपटे बौलारे, इन सब कीं हियरा रचौ-पचौ और बसो होय। रामधई ए, पलास की गंध तौ काऊ भाग्यशाली यई खों नसीब हो सकत। कायकै गंध के लाजें तौ रसियन कौ रसिया होय चइये। वाय ऐसौ साँचौ रसिया होंने पर है जो बसन्त की दई सुच्छम सें सुच्छम हिये की धड़कन के प्रति जुराव होय। पलास की गंध के लाजे सर्वभूत हियौ होवों जरूरी है। तौ ऐसौ रसिया तौ बौई हो सकत जो पलास वनन के बीचाँ रमौं होय बसौ होय। ऐसीई भऔ है दसारन देस में कभऊं एकरसिया, जीनें पलास की गंध लई और ऊमें डूबकें कै उठौ कै - "यस्य गन्धेन दिव्येन वास्यते परिमण्डलम्।।" (वायु. ३८/३६)

(जई बात साँसी है कै पलास की गंध के गवैया पुरान पुरुष जमुना मैया के लिंगाँ ढीमर की बिटिया से जन्मे। इन महामुनि वेद व्यास खों ई धरती पै सब कोऊ चीनत हैं)

सो पलास कौ केसरिया रँग की आँच आँख वारिन कों लुभाउत है और भाँत-भाँत के रस-रंग की झाँकी दरसाउत है। जब कवीसुर कालिदास नें पैलऊँ पैल जा फूले पलास कों देखौ, तौ कै उठे कै - "बसन्त आ गए हैं, फूले पलासन की चमक-दमक दहकत आगी सी है। फूलन के भारन जे नेंडर गए हैं। हवा बैअर के झकोरन सें कपन से लगे हैं। सिंगार के कारन नेंवरीं अनजानें कपकपातीं लजातीं ईगुर सौ बगराउतीं व्याव कौ लाल लुंगरौ पैरें नवल दुलैया अपने उनकी वाट सी हेरत मिलवे कों बेचैन होतीं, ऊसेंई बसन्त में वनभूम पलासन सें लग उठी हैं।"

"आदीप्तवह्नि सहशैर्मरुतावधूतैः
सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनमै।
सद्यो वसन्त समयेनि समाचितेयं
रक्ता शुंका नववधूरिव भाति भूमिः।।" (ऋतु संहार ६/१६)

इन कवीसुर जू नें फिर दूसरी दार फूले पलास देखे तौ ऊसौई भऔ जैसौ होंय चइये। बौ रुपई का है? जो छिन-छन नए रंगन न सपर लेय। रंग बदले तौ ढंग सोई बदल गए, फिर तौ मन अपने आप में नइँ रत। अबै रसिया बसन्त के आवे की बेरा में जोंन वनभूम लजात कलुरिया सी हती, तोई अब चतुर सियानी नार हो गई। बेई केसरिया आंच वारे पलास के फूल चौथ के चन्दा से टेड़े हो गए। उनकों रंग और गैरो हो गऔ सो रकत सौ लगन लगो और प्रेमिन वनभूम प्रेमीं बसन्त के संग एक हो गई ऊके ताजे नखत अब दुकारा नइँ दुके, सजीवर दिखा रए हैं।

"बालेन्दु वक्राण्यविकासआवात् वभुः पलाशान्यति लाहितानि।
सद्योवसन्तेन समागतानाम् नक्षतानीव वनस्थलीनाम्।।" (कुमार संभव ३/२६)

रामधई इन पलासन की जा चटक-मटक सैकरन वरस सें जाँ की ताँ है, तनकऊ फीकी नहँ परी। पलास जब जब फूले तब-तब विन्ध्य के रसियन के हियें बसन्त की लूकें कोंध-कोंध गई। ऊँच-नीच के भेद विलुर गए। लोक और शास्त्र दोइयन के सुर

मिलकें एक हो गए। ओंड़छे के सास्त्री पंडत आनन्दकंद कृष्ण कथा वांचत वांचत कै उठे कै - "अरे! जे टेसू के फूल ई वसन्त में रसिया छैलन के चाव कों उनके मनें सुआ सी कुतुर-कुतर कर उठे हैं।" तौ सागर की पहारियन में खिले फूल कविराज पदमाकर के कवि मन में एक हूक के सगै बेचैनी बढ़ा उठे हैं -"त्यों पद्माकर बखौ पलासन पावक सी मनों हूकन लागी।"

फूले पलास के देखतन उठी जा हूक देसकाल की दूरी पार करकें कुण्डेश्वर की खैराई के फगुवारे तक जा पोंची और कवि सत्यार्थी जू के हिय में फाँस सी आँसन लगी -

"सुरतन फाँस आँस गई मन में, हिरा गऔ मन वन में।
वन में देख बसंत सुहानों, झरत छेवलौ छिन में।।"
(रंग फुआरौ से)

ई फूले पलास नें गजब ढा दओ है। जो इयै ठीक ठीक चीनवे कौ दावा करत हैं वे कत हैं कै - पलास के फूलन में लाली है - लाल की लाली की। प्रेम के परव में वे टेसू रँग सें एक दूसरे कों रँग देत हैं और प्रेम में नोंचन सोई लगत है। जनवा जानत हैं के वो होरी की राख तब तक खाक जैसी भई है, जब तक ऊये पलस की आँच की पुट न परै। जौ केसरिया आँच जो पलास की लाली है वो होरी की राख कों गुलाल में बदल देत है। जा लाली मीठी मुस्कान है कुम्हार के लरकन के मीत कीं, असीम सत्ता के स्वामी पिता की कुनीत के विरोधी पूत की जा लाली हाल-फूल है पैलाद भगत की। जई हालफूल भरी मुस्कान कों भर दैवे के लाजें वे एक दूसरे के मुख पै अबीर-गुलाल मीड़ देत हैं।

पारखी पलास की जा लाली कों जब परखत हैं तो बे ई निरनय पै पोंचत कै - जौ तौ अब ढारेंइँ दहकत है, परचत है, खोट कों जराकें कुन्दन कर देत है और जब धाँय-धाँय झंडारें सी दिखा कें अवढारेंइँ सान्त सोई हो जात। जेठमास की उमस में जब वनखण्ड रस सें हीन होकें बरी बरी सौ दिखान लगत ऊ बेराँ जौ पलासइ है जो अपने गैरे रँग बगरा कें बन की तपन-जरन और निरासा कों दूर कर देत। जेठमास की जितनी गैरी उमस उसें कैऊ गुनों गैरौ पलास कौ रंग मानों जेठमास कों जीभ चिराकें हँसी उड़ा देत है। सो ई बसन्त में पलासई अपनी मन्द-मन्द मुस्कातन में हराँ-हराँ कै रऔ है कै -

"मो ताँइँ हेरौ और खुद समजौ कै जिनके अन्स में आग होत बे अपनी प्रान-अगन सें रस सींच देत हैं। जिनकी स्वाँसा में दम होत बे मरीमराई सूके बाँस की कटी कटाई पंगोलन में राग बसन्त के सुर जगा देत। आज तो तरें आँच भरे फूल बिछे हैं और मूड़ पै अंगरन कौ मुड़ायछौ राजा के मुकट कों मात दै रऔ है। सुरत करौ ऐसमई बसन्तरित हती और बे बहेलिया सें ब्रम्मरिख भए बाबा बालमीकजू तमसा नदी के तट पै बिराजे ते। उनके अन्तस की आँखन सामू सोंने की लंका धांय धांय बर रई ती और तन की खुली आँखन सामू एइ भांत के फूलन कौ मोर बाँधें फागुन ठाँड़ौ हतौ। सो अध समाधि में उनें ऐसी लगौ मानों कै लंका दहन करबे बारी वा दमक भरी आगी असल में मोरेइ फूलन की मुड़ायछौ बाँदे है -

"अत्राम्बदाग्नि रति प्रवृद्धो रुक्षप्रभा किंशुकपुष्प चूडः।"
(रामायन-सुन्दरकाण्ड ५४/२४)

"होय तुम में हिम्मत? तौ दै टोरो मोरे इन फूलन कों और फिर बाँधलो अपने मूड़ पै मुड़ायछौ। कर दो लंका दइन कै जी सोंनें की लंका नें आज जा भूम की आतमा जानकी माई कों कठिन कारावास में पेंड़ दऔ है। पै................तुम मों ताँईं अपनी बुझी-बुझी सी आँखन सें जिनके कोंने में एक लाल डोरा लों नइँयाँ हेरत ठाँड़े के ठाँड़े रै गए? आखिर तुमें हो का गऔ है? मैं खुद डीलन सजीवर देखवे वारौ और गवाही हों कै तुम वैस्वानर के बेटा हौ। तुमाए रोंम-रोम में हमाई अगन परच रई है, तौऊ तुमनें निरासा, हीन और दीन भाव ओड़ लए हैं? एक नइँ दस-दस पानीदार मताइयँन के लाड़ले विन्ध्या के पूत कभऊ दीनहीन नईं होत। पैने पुरुषारथ सें भरे पूरे होत।"

तुमाई जो दसा आज है, ऊके लाजें तुम खुद जुम्मेदार हौ। तुमनें हमाए बन के बन काटे, तुमाई कुलरियाँ हमनें छाती पै पथरा धरकें सईं, तुमने हमें बारी और हम तुमाए लानें जरे। कायसें कै तुम हमाए हौ और हम कुआउत देव विरछा। हम जौई सोच कें रैगए कै तुम कुसंग में बिगरे सो दुष्टता तुममें घर कर गई है। गुसाईं जू कै गए "शठ सुधरहिं सत संगत पाए।" आसा जगाईती कै तुमें आज नइँ तौ कालके दिना सत संगत मिलहै और तुम सुधर जैहौ। तुम देव अगन खों चीन लै हौ जोंन पलासन में समाई है, समिद्धर है, जग्ग-हवन की पैली समिधा है। पलास ऐसी वैसी लकरिया नइँयाँ। दुःख तौ जई बात कौ है कै तुमनें काऊ ज्ञानी-विज्ञानी 'याग्यवल्क्य' की बात सुनी न सुधरे हौ। ई के बाद तुम हमाई जड़े खुदे उठे, उनें काटे फिर कूटे और बकोंड़ा बनाकें ढिरिया में ऐसे ढेर लए जैसें कोऊ महामूरख हीरा-मोतियन जैसे बड़े रतनन खों पासंग बनाकें भटा-भाजी तौलत होय। जैसी दुर्गत तुमनें मोरी करी सो हमइँ जानत हैं। हम तौ जौई जानत रये कै अब तुमें कोऊ गाँव कौ सिद्ध बैद बताहै कै पलास की जरन सें निकरबे बारौ लाल-रस भौत कीमती है, तिरदोष हरत, टूटे हाड़ जोरत। पलास कौ रस आँखन की धुन्ध और अँधासी मिटा सकत है। पै जे बातें तुमें जिननें बताईं तौ तुमनें सुनकें अनसुनी कर दई। मोरी जीवन-रस अखारत में बउत रऔ और तुमारी आँखें मुदी रईं। हाँ तुमनें हमाए चमकत हरीरे पत्तन खों जेठमास की उमस में जरूर देखौ... पै जी पत्तल में खाओ ओई में टोंका करो। हमाई हँसी जौ कैकें उड़ाई कै - 'रए ढाक के तीन पात।'

गुनबौ-समझबौ तौ तुमनें छोड़ई दओ है। पैरियन से चली आई परम्परा तुमसें छूट गई या छोड़ रये हौ तुम। मतलब समझें बिना आचार और अनुष्ठान नईं होत। बौ तौ रूढ़ि है जो जब-तब घोर अनरथ कौ कारन बन जात है। का तुमनें जानबे की कोसिस करी कै बरस के बरस एक दार हर जोतबे के पैले औसर पै हरायते लेत बेरां मंगलकाज में मेंहर के औसर पै मोय कायकौं पूजत हैं? का तुमाए व्याव की सात भांवरें मोरी लकरिया के बने खाम तरें नइँ भईं? व्याव की पंगत की रसोई के लाजें ईंधन के रूप में मोरी लकरिया कों छेई कैकें काय पूजत रये। का कई, तुम छेई

पूजबौ नइँ जानत? कायखों जान हौ? अबतौ नए नए ईंधन चल गए, नए चलन में पुरानी परम्पराएँ बिसर गईं तौ अचरज का है?

तौ लो सुनों, छेई की बात मैं तुमें सुनाएँ देत "कायसें मैं तुम उनकी सन्तान हौ जो जगजाहर रये हैं। बे जानतते और मानतते कै ब्याव एक जग्ग है और जग्ग कौ भोजन ऐसी-वैसी नकरिया के ईंधन सें सिद्ध नइँ हो सकत ऊके लाजें सबसें पैलाँ चाउनें - समिधा 'ब्रह्मोपनेता' जो मैं खुद पलास-देवविरछा हों। जई सें तुमाए पुरखन ने छेई पूजी ती जीकी पैरिन से लकीर तुम पीटत आ रए हौ। तुम भलेंइं भूल जाऔ अकेले तुमाए घर की जेठीं पुरानीं अबै लों नईं भूलीं और बे जब कातिक अनाऊतीं हैं। जब बे प्रेम में भाव विभोर होकें गाउतीं हैं तो उनकी आँखन में मोरे लाल-केसरिया रंग के सगै मोरे दुर्लभ पियरे, लीले, और सेत वरन फूलन के 'चतुर्विधर्णामा' तैर जात है। तुमनें उन आँखन में तैरत ना तौ आस्था देखी और न ऊ आस्था सें उपजौ अटूट विश्वास। जौ तुमाऔ बड़ौ भाग कहिये कै बुन्देली माटी में हम अबैलो जी रये हैं। हम तौ अबैलो जौई चाउत है कै तुम बचे रऔ और खूब फूलौ-फलौ। हम तौ मेधा विरछा है, ब्रह्म वर्चस दैबौ हमाऔ सहज सुभाव है। पलास बन रैहें तौ बे प्रसन्न और स्वस्थ्य होकें फूलत रैहें तो समझौ के तुमाई जा शठता उनकी संगत की रै नईं पै है। हमाई संगत सें तुमारौ सोउत भऔ पुरसारथ जग में उमड़ परै।" देखत नइँ देखत पलास कौ वौ मन्दसुर मीठी मुस्कान में बदल गव।

पलास कौ ऊजरौ अर्थ मोरे सामूँ जब जगमगा गऔ तौ एकाएक मनुज जनम सें तीन जुग पुरानी पलास के जनम की कथा सुरतन में कोंध गई। कै - "एक बेर देवतन नें धरती पै सुर्ग लोक के आनन्द 'सोम' कों उतारबे की सोची। जौ जुम्मेदारी उननें गायत्री कों सोंप दई। धरती में ऊपर जावे वारी चेतना-गायत्री सुपर्ण बाज पंछी कौ रूप करकें दिव्य लोक के आनन्द सोम को दबाएं, सुर्ग लोक से धरती की तरफ नोंने लौट रहँती तौ विघ्न सन्तोषी शक्ति-कुशानु सें ना देखौ गऔ और ऊनें अड़गा डार दओ। नीच कुशानु नें गायत्री पै अपनों वान चला दऔ। वान के लगतइँ सोम कटेकें एक पर्ण रूप में धरती पै जा गिरौ। सो जई सोम के पर्ण से पैलऊं पैल पलास नाँव कौ विरछा धरती मैं ऊगयाऔ। तवइ सें पलास पर्ण कुआवन लगो और समूचे पेड़-पौधन के संसार में वौ पत्ता-पर्ण या पलास नाँव सें चिनार में आगऔ।"

मैं सोच रऔतो कै पलास कौ विरछा ऐसौ-वैसौ विरछा नइँयाँ, जौ तौ साधारण विरछा है। रसियँन, कवियन, सें लैकें नई नवेलियन तक कौ जो चहेतौ बनें, अपनी मँजरियन सें रसियन कों लुभाउत रहै और जियै जो चाँय वौ फालतू बनाकें अपने प्रमोद वन में घेर लेवे ऐसे आम के विरछा सरीखौ मधुर पलास कौ विरछा नैयाँ। पलास वियोगनिन के हिय में लूके और हूकें उठाउत है, तौ उनें सुभ और आसा भरी संदेसौ सोई देत है। जौ निर्बल और दूबरे पतरे जनन कों अपने मूल रस में सींच कें उनमें पुरसारथ भर देत और उनके त्रिदोष हर के सन्तुलित कर देत है। जीवन के चकरभोंयरे में जावे की तैयारी के समय ब्रह्मचारी कों आधार के रूप में अपनों आषाढ़ दण्ड दै देत है। जी पै वौ सबरी विपत-बाधा मैं विजयी होवै। इतेकइ नइँ, जब सब कछु त्याग कें कोऊ सन्यासी बनकें आप अकेलोई मुक्ति के मारग पै निगवे कौ संकल्प लै लेत ऊबेराँ सोई पलास ऊकौ ध्यान राखत है। उवै बिन माँगें समर्थ सहारौ देत, अपने डंडा को ब्रह्मदण्ड बना देत है।

पलास कों जानवे-समझवे के लानें ऊके ऐंन लिंगाँ पोंचवे की जरूरत है। ऊकी उखरत जड़न कों ढाँकनें परहै, ऊके गैरे घावन पै पछतावौ करकें ताते अँसुअन सें सेंकनें परहै और नेव कौ अर्घ देने परहै। पलास उमंग से भर उठै और गूढ़ रहस्यन कों एक-एक करके खोलत चलो जैहै। ऊके संकेतन और रहस्यन कों खोल है जो हज्जारन बरस सें ढँके-मुदे हैं। ऋग्वेद में लिखी रामायन और रिखिका सावित्री सूर्या दोई बताउत हैं कै सूरज की किरनन कौ संयुजन और विसर्जन पलास जानत है। वे मानत हैं कै आपः परमाणु अन कौ संघनन, किरनन कौ संग्रहन और बूढ़त सूरज में गैरे अन्तः संबंध है जो पलास अच्छी तराँ सें जानत है। नए खोजी सोई खोज करवे पलास के लिंगा पोंच गए हैं, उननें कई कै पलास की पिटारी में विलात रतन दुके हैं। जो हमाई विरासत के कीमती रतन हमें कबै मिलहै? किदना वौ सोंने सौ दिन आवनें?

वौ दिना आहैं और इकइसमी सदी में आकें रैहै, मोरौ मन बोलत है। जब हम सब के हांतन पलास वन पलपुस कें हमाए नगरन और गाँवन कों अपनी ओली में समेट लैहैं, जब हमारी वनभूम के मनस्वी पूत और विदुषी बिटियाँ इन पलास बनन में आनन्दभरी गोटें कर हैं, जब वे छुट्टी के छिनन में पलास के कुंजन में नचहैं गाहैं और ज्ञान बढ़ाकें अनुभव में समृद्ध हुएँ, उनके प्रेमालाप विधिविधान सें व्याव-जग्गन के तेहार बन जैहें, जब व्याव जग्ग पलास विरछ के हरे भरे मड़वातरें हुइयें तब उनके भीतरै ज्ञान-विज्ञान और अध्यात्म अपनी घुण्डी खोल कैं भेंट हैं तब पलास विरछ उछाह में भरकें अपने सबरे रहस्यन की पुटरिया खोलकें कीमती रतनन कों तुमाए सामूं बगरा दैहै और तब इँ..।

साँचऊ सें पैपलियोनैसी (Paplionaceae) कुल में जन्मों जौ ब्युटियामोनोस्परमा (Buteamonosperma) पलास कुल के छुट्टाँ हँस परो हुइयै। दूर कहूँ ढुलक की थाप और नगरिया की लै पै फाग की सुर लहरें आ रइँ हुइयें। लिंगा के सुवरन भरे खेतन में भोंरा गुनगुना रये हुइयें। सामूं पलास कुंजन में इठलातीं-गुठलातीं, चुहल करतीं फाग के रसरंग में सपरत सराबोर रजिया-ललता की जोड़ी आ गई हुइयै। फागुन के उनइँ छिनन में उनें टेसू के फूल चावनें केसरिया रंग घोरवे कों। सो बे नन्द-भौजाई अब गा उठीं पलास के लाजें मंगलाचार। उनके मधुर खनकदार सुर दसऊ दिसन में सुभ संदेसे बनकें गूँज उठे -

"फूले फूले हो पलइयँन पलास,
फूले फूले हो पलइयँन पलास...।।"

- ६, कालिदास, नूतन विहार, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड की रानी रूपमती प्रवीण राय : उनका प्रियतम और उनकी जागीर

- डॉ. लखन लाल खरे

रानी रूपमती और बाजबहादुर की ऐतिहासिक प्रेम-गाथा कौन नहीं जानता? मालवा के माण्डू से प्रारम्भ इस प्रेम-कथा का अंत सारंगपुर में हुआ, जहाँ एक जीर्ण-शीर्ण कब्र में रानी रूपमती अपने प्रियतम बाजबहादुर से, माण्डू से दूर सैकड़ों वर्षों से सो रही है।



कछौवा के 75 वर्षीय श्री तेजसिंह पटेल

बुन्देलखण्ड की रानी रूपमती थी - प्रवीणराय या रायप्रवीण, जिसे रानी का गौरव तो प्राप्त न हो सका, पर वह कला और रूप सौंदर्य की स्वयंभू साम्राज्ञी अवश्य थी। मालवा और बुन्देलखण्ड की इन रूपमतियों में अद्भुत साम्य और वैषम्य था। दोनों मध्यकाल की अकबरकालीन नेत्रियाँ थीं। दोनों अतीव सुन्दरी थीं। दोनों काव्य और संगीत कला में पारंगत थीं। उस काल की कठोर जातिप्रथा के विपरीत दोनों ने विजातीय वरों के हाथों में अपने जीवन की डोर सौंपी थी। एक को मालवा के गीत-संगीत-प्रेमी बाजबहादुर ने अपना प्यार और विश्वास दिया, तो दूसरी ओर ओरछेश मधुकर शाह के पुत्र इन्द्रजीत सिंह ने अपने हृदय की मलिका बनाया।

दोनों में विषमताएँ भी पर्याप्त थीं। रूपमती को उच्चकुल की ब्राह्मण कन्या बताया जाता है। (कोई-कोई उसे गड़रिया की कन्या भी बतलाते हैं) तो प्रवीणराय को लुहार कन्या। रूपमती को विधिवत् रानी एवं पत्नी का पद प्राप्त था, पर प्रवीणराय को नहीं।



कछौवा दुर्ग की टूटी दीवार के साथ लेखक डॉ. लखन लाल खरे

रूपमती नर्तकी (पातुरी) नहीं थी; परन्तु प्रवीणराय ओरछा की राजनर्तकी थी। अकबर ने दोनों को पाना चाहा था। उसे रूपमती की मृत देह प्राप्त हुई थी और प्रवीणराय से वह उसके काव्य-कौशल-तूणीर से निकले 'जूठी पातर भखत हैं...' के तीर से लज्जित और नैतिक रूप से पराजित हुआ था। रूपमती की कब्र आज कचड़े से ढँकी हुई है। रायप्रवीण का अंतिम विश्राम



कछौवा की भूलुंठित दीवार

स्थल कहाँ है, किसी को कोई पता नहीं। हाँ, उसका वह भव्य भवन आज भी ओरछा में आधी सहस्त्राब्दि से खड़ा है, जो उसके प्रियतम ने उसके लिए निर्मित करवाया था।

रायप्रवीण का प्रियतम कौन?

ओरछेश महाराज मधुकर शाह के पुत्र थे - इन्द्रजीतसिंह, जिनकी प्रशस्ति में ओरछा के राजकवि केशव ने लिखा था -

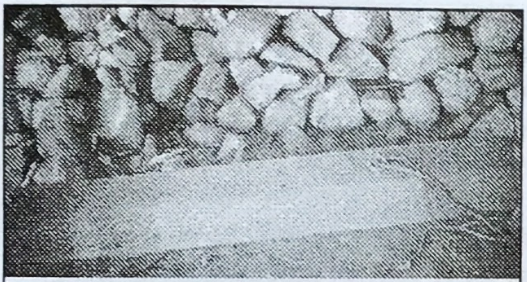
"भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवे जुग-जुग,
जाके राज केसोदास राज सो करत है।।"

ओरछा को बुन्देलखण्ड की अयोध्या बनाने वाली महारानी गणेशकुँवरि के पति महाराज मधुकर शाह के दो रानियों से आठ पुत्र थे। इनमें से बड़े रामशाह को, महाराज मधुकरशाह के निधनोपरान्त ओरछा का राजा बनाया गया था। इन्द्रजीत सिंह, महाराज वीरसिंह जू देव से बड़े थे। केशव ने अपने ग्रंथ 'वीरचरित्र' के दूसरे अध्याय में इन आठों पुत्रों का उल्लेख निम्नानुसार किया है -



कछौवा गढ़ की भग्न दीवार

जेठे रामसाहि रनधीर। गुनगन मन बल बुद्धि गंभीर।।
तिनते लहुरे होरिलराउ। खंग दान दिन दूनो चाउ।।
OO OO OO
तिनते लघु नरसिंघ सुजान। जूझ जुरै नहिं तासौं आन।।
रतनसेन तिनतें लघु जानि। गहि जान्यो तिनही खग पानि।।
तिनतें इन्द्रजीत लघु लसै। सो गढ़ दुर्ग कछौवा बसै।।
OO OO OO
तिनतें लहुरे राउप्रताप। राहत दिन दुर्जन को ताप।।
तिनतें लहुरे हरिसिंघदेव। मूरतिवंत मनो कोइ देव।।



कछौवा की भग्न दीवार के पास पड़ा
एक कलात्मक प्रस्तर स्तंभ जिससे अब बैल बंधते हैं।

यही इन्द्रजीत सिंह, रायप्रवीण के प्रियतम थे, जिन्हें कछौवा की जागीर प्राप्त थी। ये अपने छोटे भाई वीरसिंह देव से अत्यन्त स्नेह करते थे, परन्तु अपने ओरछा राज्य के प्रति भी अत्यन्त वफादार थे। महाराज आसकरन, रामशाह, दूलहराम, राजाराम और हसन खाँ के संयुक्त दल को वीरसिंह की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए अकबर ने आदेश दिया। संयुक्त दल की बैठक में आसकरन का इन्द्रजीत सिंह के बारे में यह कथन उनकी राजभक्ति की ओर स्पष्ट संकेत करता है :



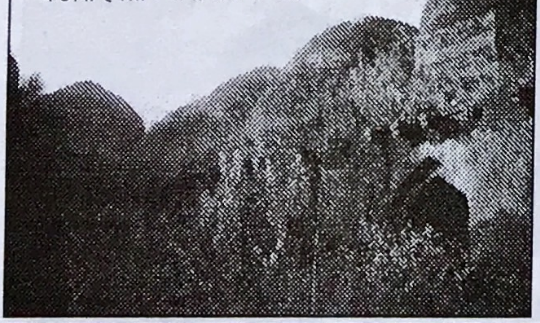
कछौवा हवेली का प्रवेश द्वार

तब हँसि आसकरन यह कह्यो। कहे बिना अब जाइ न रह्यो।।
गढ़ में इन्द्रजीत रनजीत। मन-कम-वचन तुम्हारो मीत।।
जाहि तुम्हारो लाग्यो काम। तासौं क्यों करिहै संग्राम।।

परन्तु वीरसिंह की भाँति इन्द्रजीत सिंह को अपने भाई रामशाह का अकबर के सामने सीमातीत समर्पण पसंद नहीं आया और उन्होंने अपने अनुज वीरसिंह का साथ देना स्वीकार किया:

राय भुपाल बली इन्द्रजीत। राउ प्रताप सदा रनजीत।।
बीरसिंघ के हित के लये। ये चारयों एकै हूवै गये।।

कछौवा हवेली : दायीं ओर के कक्ष



स्वयं रामशाह अकबर के सम्मुख कहता है -

इन्द्रजीत अरु विरसिंघदेव। कै करि दूरि कराऊँ सेव।।

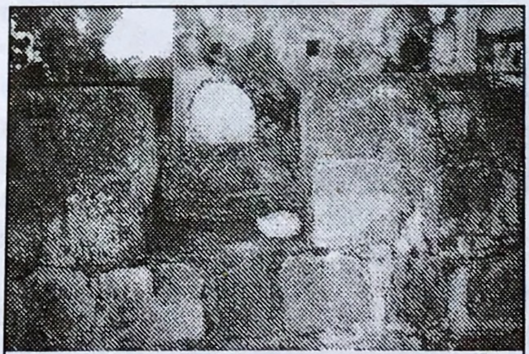
बुन्देला-वंश-इतिहास में इन्द्रजीत सिंह का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, परन्तु उनका वह मूल्यांकन नहीं हुआ, जो होना चाहिए था। इनके सम्बन्ध में यत्र-तत्र जो भी थोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि ये अत्यन्त संतोषी प्रकृति के जीव थे। ये अपने अग्रज रामशाह तथा अनुज वीरसिंह की भाँति महत्वाकाँक्षी नहीं थे। अपनी छोटी-सी जागीर कछौवा से ही ये जीवन भर संतुष्ट रहे और उसको ही सजाते-संवारते रहे। इनका



कछौवा हवेली का मध्य द्वार

मन राजनीति की अपेक्षा संगीत और काव्य-कला में अधिक रमा।

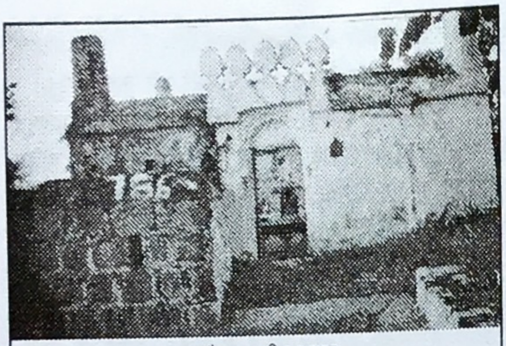
इन्द्रजीत सिंह का समूचा जीवन-वृत्त संभवतः अनुपलब्ध है। इनका निधन कब, कहाँ और कैसे हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर भी संभवतः अनुत्तरित हैं। जब ये कछौवा से कई-कई दिनों तक ओरछा रहते थे, तब इनकी अनुपस्थिति में जागीर का राज-काज कौन संभालता था, यह भी संभवतः कोई नहीं जानता और इनके पश्चात् इनकी जागीर कछौवा का क्या हुआ? संभवतः इतिहास मौन है।



कछौवा : प्राचीन मजार की दीवार पर उत्कीर्ण (उर्दू में) शिलालेख

कैसा है गढ़ कछौवा?

वीरसिंह जूदेव अपने समस्त भाइयों में सर्वाधिक महत्वाकाँक्षी थे। यही कारण है कि बड़ौनी जैसी छोटी जागीर पाकर भी वे असंतुष्ट रहे। अत्यधिक यौद्धिक हलचलों के कारण बड़ौनी का नाम इतिहास के पन्नों पर 'बोल्ड' अक्षरों में लिखा ही गया, जबकि शांतिप्रिय, कविहृदय राजा की जागीर-कछौवा-हाशिये पर जाकर कहीं लुप्त हो गयी।



कछौवा : नवीन मजार

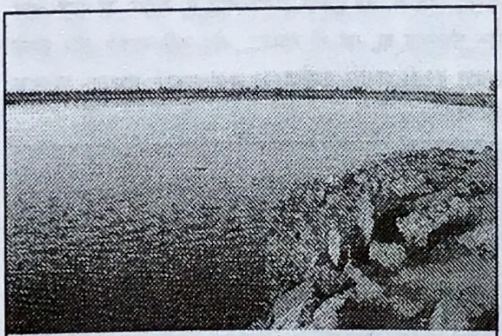
कछौवा का संक्षिप्त वर्णन करते हुए आचार्य केशव ने इस गढ़ की उपमा 'कमल' से की है -

ताहि कछौवा कमल सो गढ़ दीनो नृप राम।
विधि ज्यों साजन बैठि तहँ केसव बाम अबाम।।

कछौवा गढ़ में इन्द्रजीत सिंह के प्रभाव का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं :

कर्‌यो अखारो राज कै सासन सब संगीत।
ताको देखत इन्द्र ज्यों इन्द्रजीत रनजीत।।
बालबहिक्रम बाल सब रूप सील गुन वृद्ध।
जदपि भरयो अवरोध षट पातुर परम प्रसिद्ध।।

और इसके आगे केशव रायप्रवीण का वर्णन करते हैं। इस 'कमल से' कछौवा को देखने की उत्कण्ठा से जब मैं वहाँ पहुँचा, तो निराशा नहीं, घोर निराशा हाथ लगी।

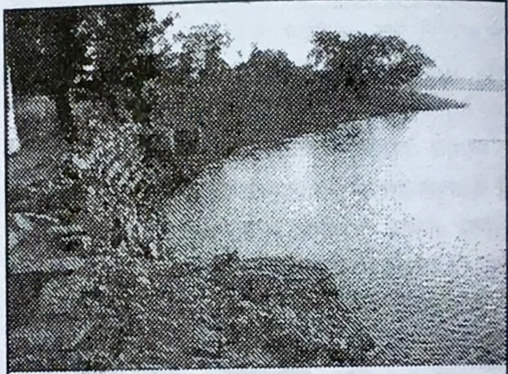


बरधुवाँ स्थित प्रवीण सागर

पिछोर (शिवपुरी जिले में) से दिनारा जाने वाली मुख्य सड़क के दो किलोमीटर से पूर्व की ओर ४ किलोमीटर दूर स्थित है - कछौवा

लगभग दो हजार की आबादी का छोटा सा ग्राम। ग्राम में प्रवेश करते ही दाई ओर परकोटे के बुर्ज के भग्नावशेष हैं, जिस पर स्थित छोटे से चबूतरे पर स्थापित हैं - एक दो खण्डित प्रतिमाओं के रूप में ठाकुर बाबा। यह परकोटा अदृश्य सा दाईं ओर लम्बा चला गया है, जिसके भीतर झाड़-झंकाड़ से मण्डित एकाध गिरी हुई दीवार दिखाई दे जाती है। समूचा परकोटा लगभग एक किलोमीटर के घेरे में हैं इस परकोटे के भीतर ही दुर्ग और राजमहल रहा होगा। यही पुराना कछौवा है। अब यहाँ कृषि कार्य होता है और खेतों के पास से टौरियाऊ भूमि काफी विस्तृत है, इसी भूमि पर खण्डहरों की इक्का-दुक्का दीवारें खड़ी हैं। समय की बलिहारी! जिस 'कमल से' कछौवा की भूमि पर रायप्रवीण के नृत्य की थिरकन स्पंदित होती थी, जहाँ कभी संगीत की स्वर लहरियाँ अठखेलियाँ करती थीं, आज वहाँ बंधे बैलों-गायों और भैसों के रंभाने के स्वर सुनाई देते हैं।

इसी परकोटे के भीतर महल और दुर्ग की भूलुंठित दीवारों से लगभग सौ मीटर दूर नौ गुम्बदों वाली एक इमारत है, जिसकी उम्र पाँच सौ वर्ष से कम नहीं है। इसके टूटे-फूटे प्रवेश द्वार के पश्चात् एक दालान और दालान के पश्चात् झाड़-झंखाड़ों से युक्त



बरधुवाँ स्थित प्रवीण सागर

आंगन है। आंगन के बायीं तथा दायीं ओर चार-चार कोठरियां हैं। इनके मध्य एक बड़ा कमरा है। कोठरियाँ और कमरा गुम्बदयुक्त है। इन गुम्बदों की बनावट स्तूपाकार-बाबरी मस्जिद के गुंबदों की भाँति है। बायीं ओर की कोठरी के भीतर से सुरंगनुमा मार्ग गया है, जो संभव है, बीच की मुख्य कोठी तक अथवा दाईं ओर की टूटे गुंबदवाली कोठरी तक गया हो। यह भी संभव है कि प्रत्येक कक्ष का स्वतंत्र अस्तित्व हो। यह जानने के लिए विषधरों की उपस्थिति के कारण इन कक्षों में जाना संभव न हो सका। स्थानीय बुजुर्ग इसे 'राजा की हवेली' कहते हैं। 'किस राजा की?' - 'क्या पता, हजारों साल पहले की बात है साब, कौन जानें!!'

यह 'राजा की हवेली' स्वतंत्रता के पूर्व तक तहसील का



बरधुवाँ का महलनुमा दुर्ग



बरधुवाँ का प्रवीण सागर और किनारे पर बने प्राचीन मंदिर

कार्यालय रही है। पहले पिछोर तहसील नहीं थी, कछौवा ही थी। अब भी पिछोर, कछौवा-पिछोर के नाम से जाना जाता है बताते हैं, गणेश-चौक, पिछोर निवासी, सेवानिवृत शिक्षक - श्री उमाशंकर सोनी, जो मेरी खोज यात्रा में मेरे साथ थे।

हवेली के मुख्य द्वार के दाईं ओर एक घेरे में दो मजारें अच्छी स्थिति में हैं। इनमें से एक की उम्र हवेली के लगभग बराबर है और दूसरी, उसके बाद की प्रतीत होती है। हवेली के उम्र की मजार पर दीवार में लगा उर्दू में एक शिलालेख है, जिसे मैं, उर्दू का ज्ञान न होने के कारण पढ़ न सका। दूसरी मजार पर अगरबत्ती लगा रहे एक मुल्लाजी से जब मैंने जानना चाहा, तो मजारों को उन्होंने बहुत पुराने चीरों की मजारें तथा हवेली को बहुत पुरानी मस्जिद बताया।

गाँव को गयी पक्की सड़क के दाईं ओर है ऊजड़-पुराना कछौवा और सड़क के बायीं ओर बसा है - नया कछौवा। पुराने कछौवा में खेतों पर रह रहे कृषक और नये कछौवा के पक्के मकानों में रह रहे सभ्यजन नहीं जानते कि यह ग्राम कभी महाराज इन्द्रजीत सिंह की जागीर का वैभवशाली मुख्यालय रहा होगा। शोधार्थियो के लिए यह मौलिक शोध का विषय हो सकता है कि जब हजार वर्ष के भवन व गढ़ जब तक खड़े हैं, तो कछौवा गढ़ किन कारणों से पूर्णरूपेण मटियामेट हो गया?

और रायप्रवीण?

इन्द्रजीतसिंह की भाँति रायप्रवीण का प्रारंभिक जीवन-वृत्त भी अंधकारमय है। साहित्यकारों व इतिहासकारों का एक वर्ग रायप्रवीण का जन्म ओरछा में, तो दूसरा वर्ग बरधुवाँ में मानता है। तीसरा वर्ग दोनों स्थलों को समन्वित करता हुआ कहता है कि प्रवीणराय के पूर्वज ओरछा राज्य के निवासी थे और किन्हीं कारणों से बरधुवाँ आकर बस गये थे। रायप्रवीण का जन्म इसी ग्राम में हुआ था। तीसरी मान्यता के प्रतिपादक कथाकार और इतिहासकार स्व. श्री रामनाथ नीखरा थे। श्री नीखराजी की मान्यता सत्य प्रतीत भी होती है, क्योंकि -

बरधुवाँ, पिछोर (शिवपुरी) से २२ कि.मी. दूर माताटीला बाँध मार्ग पर स्थित है। बरधुवाँ से माताटीला बाँध लगभग पाँच किलो मीटर है। कछौवा से यह ग्राम पूर्व-दक्षिण की ओर सीधे में लगभग १०-१५ किलोमीटर है। संभव है, बरधुवाँ, कछौवा जागीर का ही ग्राम रहा हो। माताटीला बाँध बनने के पूर्व तक यहाँ अत्यन्त सघन वन था, अब से पाँच सौ वर्ष पूर्व तो और भी सघनतम वन होगा, जहाँ इन्द्रजीतसिंह शिकार खेलते होंगे। संभव है, शिकार के मध्य ही उनकी भेंट रायप्रवीण से हुई हो। चूँकि बरधुवाँ, कछौवा के समीप ही है, अतः इस धारणा को बल मिलता है कि रायप्रवीण के जन्म और बचपन की क्रीड़ाओं का साक्षी यही ग्राम होगा।

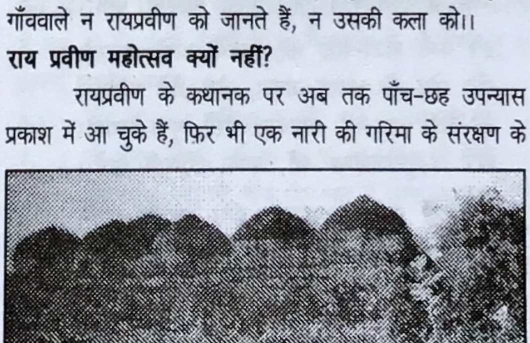
जब इन्द्रजीत सिंह जैसे बलशाली और प्रभावशाली की जागीर के रंचमात्र अवशेष उपेक्षित, अपरिचित और अपमानित हैं तब रायप्रवीण जैसी अति साधारण जन में परिगणित का क्या चिन्ह शेष रहा होगा? फिर भी कुछ सूत्र प्राप्त होने की आशा से अपने साथियों - रमन बिहारी सक्सेना, हरी शंकर मथनेया एवं पिछोर निवासी शिक्षक विनोद सोनी के साथ मैंने इस ग्राम की यात्रा की।

बरधुवाँ में एक अत्यन्त प्राचीन तालाब प्रवीणसागर है। प्रवीण से ध्वनित है कि यह तालाब या तो प्रवीणराय ने बनवाया होगा (इन्द्रजीत की उपपत्नी बनने के बाद) अथवा उसके नाम पर इस तालाब का नामकरण किया गया होगा। बुन्देलखण्ड के विख्यात साहित्यकार व इतिहासकार पं. श्री हरिविष्णु अवस्थी, (डॉ. भगवानदास गुप्त स्मृति शोध संस्थान झाँसी द्वारा प्रकाशित 'संधान-७' में छपे) अपने एक आलेख "प्राचीन-मध्ययुगीन भारत में जल-प्रबंधन में लिखते हैं कि "इन्द्रजीत सिंह, जिन्हें कछौवा की जागीर प्राप्त हुई थी, ने अपनी प्रेयसी प्रवीणराय के नाम पर बरधुवाँ में प्रवीणसागर का निर्माण कराया था, जो अब भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है।" (पृ. ७५, सम्पा. : डॉ. सुरेश मिश्र)

तालाब के घाट और इन पर बने दो अत्यन्त प्राचीन मंदिर इसके पुरातन इतिहास की ओर इंगित करते हैं। ग्राम में एक गढ़ीनुमा हवेली है, जो अपेक्षाकृत ठीक-ठाक है। परन्तु इसका सम्बन्ध रायप्रवीण से है, अथवा नहीं कहना मुश्किल है। ग्रामवासी इस हवेली का सम्बन्ध खनियाधाना राजपरिवार से बताते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई ऐतिहासिक सूत्र मुझे प्राप्त नहीं हुआ। गाँववाले न रायप्रवीण को जानते हैं, न उसकी कला को।।

राय प्रवीण महोत्सव क्यों नहीं?

रायप्रवीण के कथानक पर अब तक पाँच-छह उपन्यास प्रकाश में आ चुके हैं, फिर भी एक नारी की गरिमा के संरक्षण के



कछौवा हवेली : पृष्ठभाग

रूप में, आदर्श प्रेयसी के रूप में विदुषी कला-नेत्री के रूप में तथा राष्ट्रभक्ति के रूप में रायप्रवीण का जो मूल्यांकन होना चाहिए था, नहीं हुआ। ओरछा में प्रतिवर्ष केशव-महोत्सव मनाया जाता है, परन्तु मंच पर ही इन्द्रजीत सिंह का कोई चित्र रहता है, न रायप्रवीण का। इतना ही नहीं, विद्वजन अपने बौद्धिकता से बोझिल व्याख्यानों में इन्द्रजीत और रायप्रवीण का प्रासंगिक उल्लेख करना भी उचित नहीं समझते। इतना विभेद क्यों? क्या इसलिए कि वह लुहार-कन्या थी, अथवा इसलिए कि वह स्त्री थी? अथवा इसलिए कि वह 'पाक-साफ' नृत्यांगना थी? यदि रायप्रवीण न होती तो क्या 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' का प्रणयन केशव द्वारा किया जाता, जिससे हिन्दी में रीतिकाल का सूत्रपात हुआ।

ग्वालियर में प्रतिवर्ष होने वाले तानसेन समारोह का प्रारंभ बेंहट ग्राम-तानसेन के जन्मस्थल से होता है। मालवा के माण्डु-महोत्सव में बाजबहादुर-रानी रूपमती का स्मरण किया जाता है, तब बुन्देलखण्ड की रानी रूपमती-रायप्रवीण की घोर उपेक्षा क्यों?

ओरछा के केशव महोत्सव का विस्तार वाया बरधुवाँ-कछौवा तक किया जाना चाहिए। काव्य-संगीत-नृत्य-तीनों सहोदरों (तीनों शब्द पुल्लिंग हैं, जो अपनी स्त्रीलिंग माँ कला के बेटे हैं) का समन्वय इस महोत्सव में होना चाहिए। इससे अधिकाधिक जनभागीदारी होगी और उपेक्षित पात्रों के प्रदेय से नयी पीढ़ी परिचित होगी।

जिस प्रकार कछौवा के लोग इन्द्रजीत सिंह को विस्मृत कर चुके हैं, उसी प्रकार बरधुवाँ के लोगों ने अपने गाँव की उस कलावंत व विदुषी लाड़िली का नाम भुला दिया, जिसने हिन्दुस्तान के शहंशाह अकबर 'महान' का गर्व चूर-चूर कर दिया था। दोनों ग्रामों के अभिशप्त अवशेष अपने उद्धार की बाट जोह रहे हैं।

- सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

- शास. एस.एम.एस.एम. महावि., कोलारस (शिवपुरी)

(आलेख के समस्त चित्र लेखक द्वारा छायांकित किये गये)

हक्क वाजिबी चानें

- कल्याण दास साहू 'पोषक'

धरा तरस रइ है बुन्देली, आज प्रगति के लानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

सबरे-हाँर तरक्की हो रइ, गिरा येइ खों घेरें।
किलकिला-घाँइं बाट विकासी, बैठे कबसें हेरें।।
ई धरती के पिछड़ेपन खों, दूर कबै हो पानें?
देखो ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

ऊपर वारन की मनमर्जी, निंगा न सीदी हो रई।
परबस है रइयत बेचारी, अँसुवन सें मौं धो रई।।
खूब आफतें बढ़ रइं अबतौ, दिन पै दिन कल्लानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

दो पाटन के बीच फँसो है, भू-बुन्देली अपनों।
पूरौ नइं हो पारव ई सें, सुख-सुबदा कौ सपनौं।
फूटी आँख खुले अब जल्दी, दालोदुर हो भ्याँनें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

इतै कमी रोजी-रोटी की, सबसें जादाँ खलरई।
गाँव छोड़ कैं भगरइ जनता, जैसे तैसें पलरई।।
नर-नारी ना करें पलायन, ऐसौ गुन्त लगानें।
देखो ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

भूम इतै की है उपजाऊ, हीरा उगलत घाटी।
हीन नहीं है खनिजन से भी, जा बुन्देली माटी।।
नरवा, झिरवा, ताल-तलइयाँ, नदियन की का कानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

जड़ीं-बूटियाँ कन्दमूल फल, कठवा-काठ भरपूर।
एक चीज की कमी खटक रइ, किरन विकास की दूर।
गौर-दौर ना करी अगर तौ, ठौर बिगड़तइ जानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

कच्चौ माल सड़त रत ऊसइ, बिना उचित संसाधन।
मौं में जीरन-घाँइं ऊँट के, इतै सिंचाई साधन।।
जौंनौं बाँध न बनने तौंनौं, कैउ आफतें आनें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

क्षेत्र की होवै अनदेखी, जनता के साथ ठगी।
पृथक राज्य बुन्देलखण्ड की, येइ सें रटन लगी।।
न के बराबर इतै खुले हैं, रोजगार के बानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

जौंनौं राइ-भरौ रोवै ना, दूद मताई प्यावै।
केवल खेल-खिलौनन से ही, ऊकौ मन बैलावै।।
घी निकरै ना सीदी उँगरन, समज-समज समजानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

सुख कौ सार, परिवार छोटौ, बात समज में आ गई।
जय बुन्देलखण्ड की मनमें, सौंदी मिहक समा गई।।
मनकी पूरन हुइयै इकदिन, डटै धार पै रानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

जनता की सुबदा के लानें, भओ प्रान्त बँटवारौ।
बेचारे बुन्देलखण्ड खों, काय भूल में डारौ?
'पोषक' न्याय करौ जल्दी सें, चलें न हील-बहानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

धरा तरस रइ है बुन्देली, आज प्रगति के लानें।
देखौ ई-बुन्देलखण्ड खों, हक्क वाजिबी चानें।।

- किले के पास, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

महाकवि ईसुरी के काव्य में आत्मतत्व दर्शन

- डॉ. रामनारायण शर्मा

दर्शन एक गूढ़ विषय मानो गयो। जी में अखिल ब्रह्माण्ड के रहस्यन के विचार युग व काल के अनुसार अनेकन विद्वानन ने अपने-अपने मत से दये। ऐइसें दर्शन की परिभाषा एक रूप में देबौ कठिन है। परन्तु अखिल ब्रह्माण्ड के सृजनहार के गूढ़ सूत्रन की जानकारी में दर्शन के आधार मिलत। सचराचर में जो जड़-चेतन कौ उत्पत्ति करने बारो है वो 'ब्रह्म है' जो सचराचर में व्याप्त है। ऐइसें सारौ जग भाषित होत। ब्रह्म कर्ता है और अकर्ता है, सो ब्रह्म (ईश) कौ सगुन और निर्गुन रूप-निरूपन वास्तव में 'दर्शन' है। भारतीय दर्शन के ऐई- तत्व-ज्ञान की जानकारी के भाव काव्यरूपन में सनातन सें बताये जात रये। जीके सरल भाव महाकवि ईसुरी के काव्य में लोकबानी बन प्रगट भये।

काव्य सोई अक्षर रूप ब्रह्म है। जो सृजन कौ प्रान-तत्व मानौ गयो। सृष्टा कों 'कविरेव प्रजापति' जानौ गयो। काव्य अक्षर योग, ब्रह्म, माहेश्वर, सूत्र, अरु, वाग देवी के स्वर बन भारतीय मनीषा के प्रकट आधार बने। काव्य जीवन की संरचना कौ बीज मानो गयो जीमें विराट कौ ज्ञान समाओ। काव्य में 'आत्म-तत्व' के 'एकोऽहम् बहुस्यामः' की ध्वनि (गूँज) सुनाई देत। ऐइसे काव्य को मनुष्य के चेतन मन की पुकार मानो गयो।

भारतीय दर्शन में ब्रह्म, जीव, माया के विचार देखवे मिलत। जीमें शुरू में 'एकोऽहम् द्वितीयो नास्तिः' कौ विचार सामें आओ जो बाद में परम परमात्मा की असीम सत्ता और जीव (जीउ) के जोग से 'अद्वैत' से 'द्वैत' रूप में जानो गयो। यह 'द्वैत' सोई माया के कारन, विशिष्टा द्वैत जानो गऔ। वेदों कौ एकेश्वर वाद, बौद्धों का निरीश्वरवाद को शंकर के ई अद्वैत ने ब्रह्म के सत्य और जगत को मिथ्या बताओ जो माया को खेल मानो गयो। जीवन की क्षणतः, देह की नश्वरता के बावजूद 'देही' अथवा 'आत्मा' को अजर अमर बताओ। ऐई विचार और आत्म तत्व के दर्शन-भाव समें-समें पै काव्य ज्ञान में जन-मन के सामें रखे गये। महाकवि ईसुरी ने इन तमाम विचारन को गुन कें, समझ कें अपने जीवन में उतार कें जो तत्व रूप जन-जन को सुलभ कराओ बो वास्तव में ब्रह्म के सगुन अरु निर्गुन रूप में अपने काव्य में बखानों। वैसें ब्रह्म कौ साकार रूप को उननें अधिक मानता दई। १. ब्रह्म, २. जीव और ऊकी परम गति, ३. माया, ४. देह और अन्तकाल, ५. परमात्मा प्राप्ति के साधन कर्म-साधना के ६. सखि भाव आदि ईसुरी के काव्य के मूल बने। जिनकौ सार-संक्षेप ई प्रकार है -

ब्रह्म की सत्ता - ईसुरी सारे सचराचर के रचनाकार और परम ब्रह्म परमेश्वर की महिमा को मानत जो सब जीव धारी कौ पालनहार कर्ता और अकर्ता है। वह सारे जगत में व्याप्त, अविनाशी, अगोचर रत होत साकार रूप से में विद्यमान है। ऐसे मालिक के होत कोनउ कमी नईं हो सकत -

सबकी खबर लेत जल-थल में, चिरई चुनगुनी हू कौ।
भोजन देत साँज लौ सब खाँ, कोऊ परत ना झूको।
वे ही आसमान खाँ थामें, भार धरें सब भू कौ।
ईसुरी जिनके ऐसे मालिक कौन बात खाँ झूँकौ।।

ऐसौ परमात्मा सब की नैया पार लगाउन हार है। सो ऊकौ सुमरन कर जीवन सुफल करो -

नैया कोहै पार लगैया, बिन परमेसर भैया।

ईसुरी परमब्रह्म परमेश्वर की सत्ता स्वीकार करत ऐसे कर्ता की सत्ता कों समझबे की सिफारिस कर रये जो बज्र कों तिनका अरु तिनका कों बज्र बना सकत -

तृन सें बज्र-बज्र से तिनका, तिल से बज्जुर करते।

ई तरां निर्गुन रूप के अपने पैले के कवियन के भाव खल में खलक, खालक खलक में खालिक। सब जग माहिं समाया (कबीर) के निर्गुन कों मान रये और दूजी सगुन रूप राम कृष्ण की बातें कर ज्ञान कौ भरम समझा रये -

१. लैबो राम नाम है सच्चा, लगे ना दुख कौ दच्चा।
बरत अवा सें कूदत आये, मंजारी के बच्चा।
२. जिनके रामचन्द्र रखवारे, को कर सकत दगा रे।

ईसुरी अपने मन-मोहन के मोह में गावत प्रसन्न हैं। वृन्दावन के महारास को परमसत्ता की लीला कौ प्रसाद उननें स्वयं चखो और अपने काव्य भाव सें सब कों. बाँट पुण्य कमाओ। विद्वानन ने (वल्लभ) में ब्रह्म में सब धर्म माने। सारी सृष्टि को लीला के लिये ब्रह्म की आत्मकृति मानी। ब्रह्म कौ अंशरूप ऊकी लीला कौ दर्शन है। अक्षर ब्रह्म ईसें अचिंत्य शक्ति सें जगत में व्याप्त रतः अरु चित् और आनन्द को देबे बारो है। परन्तु ई लीला रूप परब्रह्म की जानकारी जन-मन में जागरित करबे ईसुरी ने अपने कवि गुरु महाकवि तुलसी दास की शरन लई। तुलसी नें जगत को केवल राममय न मान 'सियाराम मय' कई। सीता प्रकृति रूप और ब्रह्म राम रूप में अचित और चित् पक्ष रखो जो वास्तव में एक ही हैं। ईतरां ईसुरी नें अपने काव्य में श्री राधा जू को अपनों इष्टदेव मानों -

१. मोय बल रात राधिका जू कौ, करें आसरो की कौ।
२. जौ जिऊ जियत राधिका कै कें, रोज नॉव लै लैकें।

ऐसें लीला रूप कौ भाव जन-मन में जागरित कर ईसुरी नें लीला रहस्य के दर्शन को सरल बना कें बड़ौ काम करो।

राधा और रजऊ कौ दर्शन - 'श्री राधा' श्रीकृष्ण की शक्ति मानी गईं। भारतीय दर्शन में इनें ईश्वर अंश की मानता मिली। जैसें 'सिया' बिन 'राम' अधूरे हैं और 'श्री' बिना 'शिव' तो शव मात्र है। ऐसेई श्रीराधा के बिना कृष्ण अपूर्ण हैं। श्रीराधा कृष्ण की आध्यात्मशक्ति हैं। आध्यात्म में शरीर, इंद्रियाँ, मन, बुद्धि, जीव और परमात्मा आदि तत्व मिले हैं। सगुन रूप परमेश्वर ही ब्रह्म है, यह गीता का दर्शन है। जी की झलक ईसुरी काव्य में श्री राधा के

बखान कौ स्वरूप (आध्यात्म रूप) देखबे मिलत। ऐइसें ईसुरी नें श्रीराधा के भौतिक रूपों और सौंदर्य की अद्‌भुत आभा के दर्शन कराये हैं जो अद्‌भुत हैं। जैसे एक आराधक अपने इष्ट की मूरत में दैविक, दैहिक व भौतिक सभी पक्षों को अपनी नजर से देखत बैसेई ईसुरी ने राधा के रूप-रंग-भाव-भंगिमायें, रास-थिरकन, हंसन, बिलपन, और बिछुरन के रंग अपने काव्य में रचे, उनें राधा में श्याम दिखाई दये और श्याम में राधा मिली। जैसी ई पद में लिखो -

भीजीं फिरें राधिका रंग में, मन मोह के संग में।
रंग की धूम मचाय दई है, मजा उड़ा रये मग में।।

राधा के अप्रतिम नयनों की सुन्दरता कौ बखान ईसुरी ने निष्कपट भाव से करो है देखिये -

लख नव नैनन की अरुनाई, रहे सरोज छिपाई।
मृग-शिशु निज भय खाँ तान, के बसे दूर बन जाई।
चंचल अधिक मीन खंजन से, इनकी उपमा गाई।
'ईसुर' इनकी कालों बरनों, नैंनन सुन्दरताई।

ये सब एक चतुर, निश्छल आराधक के अपने आराध्य कों मनावे के मानक रूप आयें। वैसे ईसुरी ने बिना लाग-लपट के श्रीराधा को अपनों इष्ट मानो और उनई की आराधना करी जो मानस जनम सुफल करबे में जरूरी मानो। ईसुरी नें अपने आध्यात्म इष्ट को बखान में अनंकन छंद रचे पै राधा-दर्शन की झलक इन छंदन में सुंदर है। देखिये -

१. जो जिव जियत राधिका कैकें, रोज नाम लै लैकें।
नेमी नेम निवाउन हारों, नमस्कार ने नेकें।
चित सें लगा बन्दगी करिये, चरन कमल गै गैकें।
'ईसुर' वे सुरधाम चले गये, नाम बीज वे बोकें।

२. मोय बल रात राधिका जी कौ, करें आसरो की कौ।

ईसुरी जन-जन कों राधा नाम कौ सार समझा रये -

१. तुमने राधा नाम बिसारे, समझा-समझा हारे।
जौन गैल हम तुम्हें बता रये, चलत न पांव तुम्हारे।
कैसे हुये पार जा नइया, को है खेवन हारे।
'ईसुर' कात राधिका चरनन में, कबहुँ न मस्तक हारे।।

२. राधा कह न मिले किनारो, मानो बचन हमारो।
जोहै नाम सें सबई सूदौ, ते क्यों भेद निकारो।

ईसुरी कौ मत है कै राधा कौ नाम बिसार कै श्याम तक कों कठिन विपत्ति सें परेशानी भई ती -

अब गई बिसर श्याम खाँ राधा, राधा नाम अगाधा।
जब जे राधा मान कररती, श्याम धरत ते धाधा।
राधा बिना श्याम नहिं रतते, एक घरी पल आधा।
गिरत गाज लई बचा ईसुरी, राधा राधा राधा।

राधा-रजऊ कौ दर्शन - जी तरां से राधा को ईसुरी नें आध्यात्मशक्ति रूप में मानों। ऊतरां सेंई उनने राधा को कभउँ प्रेम-प्रेरना दाई और कभऊँ निर्गुन रूप में रजऊ अपने काव्य में बताओ। वास्तव में निर्गुन कों सगुन रूप सें देखबे कौ प्रेम मार्ग सूफी दर्शन कहो गयो। जोई बात आगें 'सीख' भावना ईसुरी के काव्य में 'रजऊ' दिखाई देत। साधारण जन इये श्रृंगार उत्प्रेरित अवधारणा सें देखत जो ईसुरी ने अपने काव्य में साफ कर दयी।

श्री राधा और रजऊ को ईसुरी ने अपने काव्य में एक रूप में देखो जो देखवे जोग है -

१. नइयाँ कोउ रजऊ की सानी, दूजी नहीं दिखानी।
देव लोक में कइयत नइयाँ, देवतन की देवतानी,
दस और चार भुवन चौदा में, अगरा अगरा छानी।
धन्य घरी पैदा भई 'ईसुर', श्री बृकभान भवानी।।

ई छंद में ईसुरी रजऊ नाँव कौ बखान करके आखिर में वृषभान कुँवर अर्थात् राधा कौ नाव उजागर कर गये। ऐई भांति ईसुरी जी नाँव को आठों याम सुमिरन करत, ऊकों भोजन पान कराबे बाद प्रसाद पाउत, ऊकौ नाँव लेत अन्तकाल मरबे की चाह्त पालें। देखिये -

जौ तन रजऊ के लानें, का काहू सें कानें।
पैलां भोजन करे रजउआ, पाछू के मोय खाने।
जालों जीनें जियत जिन्दगी रजऊ, के हेत कमाने।
रजऊ रजऊ को नाम 'ईसुरी', लेत लेत मर जानें।

ईसुरी सूफियाना भाव में अपनी आराध्य कौ दर्शन निस-वासर करबे कों देरी (मठ की देहरी) कौ पाथर बनबे की कै रये -

विधना करी देह ना मेरी, रजऊ के घर की देरी।
जाती चरन कमल रज लगके, कुमति सुधरती मेरी।
बाजन लागी आन कान, के ऊपर बजनेरी।
'ईसुर' होत उठन अब चाहत, बाट भौत दिन हेरी।

ईमें चरन-कमल-रज के लगबे सें कुमति दूर होबे के भाव केवल प्रेम-प्यारे (प्यारी) राधा के सम्बन्ध में लिखी गई। इये जन साधारण भौतिक रूपी रजऊ के बारे में जानत। जो सई नइयाँ। ईसुरी आगे जीवन की हद सें ऊपर निकर पौ फटत, मुर्गी की बाग देतन ई घर सें निकर जावे की धमकी देत कै रये कै अब अपने घर-द्वार देखिओ। ईमें हृदय-मन की पीर है। ईसें आगें ईसुरी रजऊ को माँ, वामा कह के पुकार रये। देखिये -

कहूँ कहूँ पे निज नारी खाँ रजुआ के के गा रये,
कहूँ 'ईसुरी' रजऊ खाँ अपनी माता समझ मना रये।

खुसरो ने अपने मालिक को अंत समें देख ऐसेंई वचन उचारेते -

गोरी सोबे सेज पै, डारे मों पै केश।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई इहिं देश।।

बाद में ईसुरी ने अपने काव्य में सबकौ भ्रम दूर करत साफ कर दयो कै रजऊ काऊ नें नई देखी अरु न ऊके निवास की जानकारी पाई न ऊके दर्शन नसीब भये। जेई भाव तुलसी दास के निर्गुन दर्शन में देखबे मिलत - "जनम-जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कह आवत नाहीं।" कईयक जन्म की साधना पै भी उस परमेश्वर के दर्शन सुलभ नईं होत। ईसुरी तो अपने एक जनम की साधना सें 'रजऊ' रूपी ब्रह्म के दर्शन नईं कर पाये। परन्तु साफ कर गये कै जिये हम जनम भर ढूँढ़त फिरे बो तो अपने अंतस में समाओ। सो इतै-उतै ढूँढ़बो बिरथा है जैसें -

१. देखी रजऊ काऊनें नइयाँ, कौन वरन है मुइयाँ।
काँ तौ इनकी रहन रास है, को दये जनम गुसइयाँ।
२. नइयाँ रजऊ काऊ के घर में, बृथा कोऊ ना भरमें।
सब में है और सब सें न्यारी, सब ठौरन सब घर में,
कोउ कहे अलख खलक की बातें, लखी न जायें नजर में।
'ईसुर' गिरधर रयें राधा में, राधा रयें गिरधर में।

ईसुरी आगे जनम-जनम के फेरे की बात बता कें परमात्मा के परमतत्व से भेंट करबे की लालसा में कइयक जनमों के भटकाव की बात मान रये। काय सें हमाई सोच सकरी हती सो जीव और ईश्वर की दूरी बनी रई। मतलब आय कै सच्चे प्रेम, भाव से यदि ईश्वर की आराधना करें तो वो दूर नइयाँ वरन सबई के अन्दर बसत है। बस पैचान की बात है -

हम सें दूर तुम्हारी बखरी, रजऊ हमें जा अखरी।
आमें-सामें भओ न द्वारो, खोर हती बा सकरी।
हो न पाओ तनक बतकाओ, पल भर मिली छकरी।
फिर आवत फिर जात 'ईसुरी', भये फिरत हम चकरी।

ई तरां से परब्रह्म के सगुन-निर्गुन की तनिक झाँकी ईसुरी काव्य-दर्शन में देखबे कौ जतन मात्र करो। जो तन-थोरे में भोत जानें।

जीव - ब्रह्म के बाद 'जीव' कौ बखान अपनी समरथ सें करत। भारतीय दर्शन में जीव-जीवन और तत्सम्बन्धी अनेकन बातें थोड़े में बताबो कठिन है, परन्तु मति अनुसार बखान करत। सृष्टिकर्ता नें जड़-चेतन सबई की रचना करी। चेतन प्राणियन में जो आत्मतत्व बसत बोई आत्मा मानो गयो। आत्मा ब्रह्म को अंश है, जो नित्य है, अजर है, अमर है, और अविनाशी है। इये प्रान कहत। जीवात्मा ब्रह्म तत्व है, जो प्राणियों के शरीर में जन्मलेत और अंतकाल अपने परब्रह्म परमात्मा से फिर सें जा मिलत। सो विद्वानन नें आत्मा कौ बखान तत्वरूप जीव, पिंड, हंस व पंछी (सुआ) आदि अनेकन तरां से करो, ईसुरी ने अपने काव्य में जीवात्मा को १. मन पंछी, २. हंस और राम मुनैयां आदि लिखो जो इन छंदों से स्पष्ट है -

१. राखें 'मन-पंछी' ना रानें, इक दिन सब खाँ जानें।
२. ईसुर कात सबई के देखत, ब्रह्म में जात समानें।
३. ईसुर सींक खुली पिंजरा की, उड़ गई राम 'मुनैयाँ'।
४. हंसा उड़ चल देस बिराने, सरवर जायें सुखानें।
५. हंसा फिरें विपत के मारे, अपने देश बिना रे।
अब का बैठें ताल-तलैंया, छोड़ समुद्र किनारे।
चुन चुन मोती उगले उननें, ककरा चुनत बिचारे।
ईसुर कात कुटुम अपने सें मिलबी कौन दिना रे।

पंछी जी तराँ डाल-डाल घोंसला बनाता अंत में अनन्त में उड़ जात और हंस रूपी आत्मा जब मोह-माया कपट आदि में फँस बेबस अपने पुराने निवास (ब्रह्म) में मिलबे छटपटात अपने घर जाबे की इच्छा से परमात्मा से विनती करत। काये सें अंत तो ब्रह्म में लीन होबो है। बुन्देली लोकगीतकारन नें सोई आत्मा को पंछी अथवा सुआ कई -

"उड़ जाओ तोताराम, पिंजड़ा पुराने भये।
उड़ जाओ गंगाराम पिंजड़ा पुराने भये।"

लेकिन ईसुरी पुनर्जन्म और आवागमन के दर्शन को बताउत कै रये-

इक दिन हुये सबई कौ गौनों, होने उर अनहोनों।
जानों परै सासरे सब खाँ, बुरी लगै चाय नोनों।
आयें लिबौआ बे ना मानें, चाय बता दो सोनों।
'ईसुर' विदा हुये जा जिदना, पिय के संग चलौनों।

ईमें ईसुरी ने 'गौना' अर्थात् 'द्विरागमन' की बात बता कें आवागमन कौ दर्शन समझाओ। ईसें आगे ईसुरी अपने काव्य में ब्रह्म में जीव कौ मिलन पिंडी के धागा कौ पिंडी से निकर जैसे करघा में समा जात। बोई तरां जीव शरीर से निकर ब्रह्म में लीन हो जात।

"कैंड़ा कैसो छोर ईसुरी हँसा, हुये रबाने।"

परन्तु जीव को जब तक पिंजरा में रहस करने तब तक तो ब्रह्म ज्ञान के उजास के लाने इन्तजार करनें। कायसें संसार में कोऊ अमर नइयाँ -

आओ को अमरौती खाँकें, ई दुनियाँ में आकें।
नंगे गैल पकर गये, घर गये का करतूत कमाकें।
जर गये, बर गये, धुँधक लकरियन, घर गये लोग जरा कें।
बार-बार नई 'जनमत ईसुर' कूख आपनी माँकें।

मनुष्य के कर्म उसके पुनर्जन्म को आधार ईसुरी ने बताओ -

कइयक करे बड़ेरे कारे, कबे चुकाए भारे।
जिन जिन घरन रये तुम पैलें, वे वे आप बिमारे।
ममता बढ़ी पराये घर सें, जबरई गये निकारे।
जे कच्चे घर कौन काम के, द्वारे बिना किबारे।
पक्को घर घनश्याम बना लो, जासौं टरौ न टारे।
जीव की जई अंतिम सद्गति मानी गई।

शरीर तत्व - जीव जो अविनाशी तत्व है शरीर रूपी नश्वर तत्व में निवास करत। जी कौ बखान विद्वानन नें पिंजड़ा रूप में करो। परन्तु ईसुरी नें अपने काव्य में 'बखरी' कै कें समझाओ। वैसें शरीर पंचतत्व सें रचो गयो जो छिति-जल-पावक-गगन और समीर माने गये। शरीर दस इंद्रियन-पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्री हैं जिनें मन सम्मारें रत। शरीर आत्मा रूपी रथी कौ रथ मानो गयो।

महाकवि ईसुरी नें शरीर के ई दर्शन कौ अपनी अलग भावना से बखान करो। जो लोक जन में प्रसिद्ध 'बखरी मानो'। 'बखरी' शब्द में ब (वायु) अ (अनिल), खं (आकाश), अ (अम्बु) और र (रज व पृथ्वी) शब्दन के भाव से पंच तत्व दर्शाये गये। जो दयालु भगवान द्वारा दयो गयो। देखिये ईसुरी कौ जौ दर्शन कितनो सच है -

बखरी रइयत है भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।
बे बंदेज बेवाड़ा, जीमें दस द्वारें की।
किबार-किबरियाँ एकऊ नइयाँ, बिना कुची तारे की।
'ईसुर' चाय निकारौ जिदना, हमें कौन उआरे की।

बखरी की दीवारें कच्ची मिट्टी (पंचतत्व) की बनी हैं, जो फूस और चारे (इंद्रियाँ दस और अहंकार, क्रोध, मोह, ईर्ष्या आदि) ज्वलनशील

पदार्थन सें ढकी है। फूस जो अत्यन्त ज्वलनशील है, वह क्रोधाग्नि कौ वाचक कवि नें बनाओ। ईके प्रभाव से शरीर-मन झुलस जात और बुद्धि विवेक नष्ट होय सें जीवन नष्ट होत। जोई दर्शन गीता में दयो गयो। बखरी के दस द्वार दस इंद्रियाँ हैं जो खुली छूट पायें और किबार-किबरियाँ न होय से बिना बंदेज (प्रबन्ध) या बन्धन के हैं। दरवाजे बिना कुची-तारे के खुली हैं। ई में कवि ने दस इद्रियन में ज्ञानेन्द्रियां - आंख, नाक, कान, व त्वचा के इंद्रिय निग्रह की बात करी है। इंद्रिय निग्रय के काजें मन बुद्धि की चाबी से ज्ञान प्राप्त कर ताले को खोलबे की बात कई गई। चाबी (ज्ञान) की बात पैलें साँची है, तबई तौ अज्ञान रूपी ताले को खोलो व बन्द करौ जा सकत। यदि इंद्रियन को खुली छूट मिली तौ बर्बादी अवस है। किवार किबरियों कौ लगा कें दोष - (क्रोध, मोह, अहंकार) आदि सें बचौ जा सकत। दूजी बात ईसें जा भी निकरत के इन दोषन सें बचबे के लाने मन के किबार खोलौ तौ ज्ञान की बयार अन्दर प्रवेश करिहै और आनन्द मिलै। नेत्र द्वार सें ईश-दर्शन और रूप रस पान, कान सें भजनादि व घुँघुरूयन के शब्द, नाक सें सौरभ सुगन्ध और इत्र-फुलेल, जीभ से षटरस और ईश्वर नाम रूपी रस कों चखो जात। अब मनुष्य के ऊपर निर्भर करत कै बौ इन पंचेन्द्रियन को कैसें उपयोग करत। ऐइमें ऊको भलो बुरो होत। ईसुरी तो एक तपसी-ज्ञानी-निर्मोही भक्त की भांति अपने प्यारे (सखि भावदर्शन) सें मिलौ शरीर चाय जब छोड़बे को तैयार हैं। परन्तु रूप-रस-लावण्य के दोषन सें वे सावधान रैबे की कै रये और ज्ञान की गैल बता रये -

१. लैबो राम नाम है सच्चा
२. रसना नाम कौ नाम नगीना } रसना
३. मन तें भजत काये नई रामें
४. अटकी प्रीत पिया पियारे सें
५. जौ तन आय बलम कौ खजानों
नैन-कपोल, जुबन जेबर खां } नेत्र
लख ललचाय जमानों
६. जिदना रजऊ की ज्वानी जैहै,
सब कोऊ बुढ़िया कै है।

परन्तु बखरी कौ बन्दोबस्त करे सें सब दोष दूर होत। जौ मानुष शरीर परमेश्वर नें दयो और ऊकौ 'भाड़ौ' चुकाबे की बात ईसुरी कै रये। ईमें भजन-दरसन-श्रवन-आदि कर चुकारौ (भारौ) चुकाऔ जा सकत। ईसुरी कौ जौ दर्शन जीवन की कुंजी है।

माया और संसार - ब्रह्म जीव और माया की त्रिपुटी भारतीय दर्शन की विशेषता है। माया महाठगनी है जो ब्रह्म और जीव के बीच भ्रम कौ पर्दा बन जीवन में भटकन पैदा करत। ईसुरी ने माया को एक तमोलन के रूप में बताओ-

बैठी बीच बाजार तमोलन, पान धरें अनमोलन।
रम्भ-रीत सें ग्राहक टेरे, बोले मीठी बोलन।
प्यारी गूद लगौ ढिपकारी, गोरे बदन कपोलन।
खैर-सुपारी-चूना धर कें, बीरा देय उमोलन।
ईसुर होस रओ ना हँस तन, कैऊ जनें के चोलन।

संसार माया के जाल में भ्रमित रत और परमेश्वर से दूर हो जात। ईसुरी नें संसार कों ओस कौ बूँदा व पानी कौ बबूला व ह (मेला) मानो।

१. जौ संसार ओस को बूँदा, पवन लगे सें ढुरनें।
२. नइयाँ ठीक जिंदगानी को, बनो पिंड पानी कौ।
३. राखें मन पंछी उड़ जानें, ईसुर कही मान लो मोरी,
लगी हाट उठ जानें।

दूसरी ओर ईसुरी संसार को नदी नाव कौ भेरो बता रये हैं ईमानदारी से चलाउनें - जो है नदी नाव कौ भेरो, अपने खों खेवे ईसुरी जिन्दगी को सार एक बहीखाता बता रये, जी में जनम-मरन सब निश्चित है -

जिदना खतम होय बई खाता, बुलवा लेय विधाता।
घड़ी पलक की देरी नाहीं, सत्य हिसाब कराता।

कविवर घनश्याम पांडेय ने जोई लिख दई रजिस्ट्री रूप में -

कब लौ रैहो ई बखरी में, नींव नहीं है जीमें।
दिन ना रात मरम्मत चालू, बनी रात है ईमें।
तो बो दरकत परत रात है, भीत-छन्द-खिरकी में।
बने रहौ तौलों जौलों तुम, मालिक की मरजी में।
कवि घनश्याम एक दिन मिलनें, नोटिस रजिस्टरी में।

किन्तु अंतिम सत्य और जीवन कौ सार (दर्शन) ब्रह्म में लीन होबो है। जोई परम गति है। ईसुरी के काव्य कौ दर्शन कौ सार जोई है।

- रामायण, ६६५/३, सिविल लाइन, झाँसी (उ.प्र.)

मुस्कल भई किसानी

- वीरेन्द्र सिंह परमार 'वीर'

हो रई मुस्कल आज किसानी, जा विपदा सोइ जानी
जो जन करतइ रहत किसानी, हाय राम! मुस्कल भई किसानी।
पाँच साल सें समौ बिगर रओ, ना बरसो हित-पानी।
काये में घर चलै-गिरिस्ती, मँहँगी है मनमानी।
खाद-बीज ना मिलै समै पै, पइसा-दाम की हानी
उर्दा मूँग अरहर जुन्डी ना दिखै कहूँ, ला-सानी।
ककुन, सवाँ नदारद हो गये, कोदवा बीज निसानी?
कारे धान साठिया ना भये, बजरा बाल दिखानी??
खीरा, फूट, कचरियाँ, स्याँधा, ना हो रये हैरानी?
कहूँ पड़ोरा नहीं करिलियाँ, छाईं दिखें उमानी।
कठिया, देसी चना औ पीली सरसों नहीं दिखानी।
बिन बरसात होंय क्यों फसलें? ठाड़ी विपत-बसानी।
खाद-कीटनासक-जुत फसलें, सत्वरहित परै खानी।
ऐसेइ फल बिक रये उपचारित, फूल सुगंध न आनी।
देसी भाँटा की का कइये, भूँजत-खात-सो जानी।
अब ना मिल रओ पानी अच्छौ, का होइहै को जानी???
आगूँ की रच्छा प्रभु करियो! साफ मिलै हमै पानी।
'वीर' मना रये हैं बिधना से, मिलै प्रचुर अब पानी।

- ग्राम उटियाँ, पो. धरौन, जनपद महोबा (उ.प्र.)

मानक बुन्देली : क्यों और कैसे?

- पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

संस्मरण याद आता है - एक बार उर्दू के मशहूर शायर फिराक गोरखपुरी मजाकिया मूड में हिन्दी के अपने मित्र कवियों को छेड़ रहे थे। कहा कि - मुझे हिन्दी की कविता कभी सुनने को नहीं मिली, क्या पुराने जमाने में हिन्दी की कविता किसी ने नहीं लिखी? सुनकर एक सज्जन ने कहा - क्या आपको तुलसीदास की श्री रामचरित मानस भी देखने को नहीं मिली? वे बोले - वो तो अवधी में है, हिन्दी में बताइए। दूसरे सज्जन ने सूरदास का एक पद सुना दिया। जिसे सुनकर फिराक साहब ने फिर वही बात दुहराई कि वह तो ब्रजभाषा है, हिन्दी में सुनाएं। तीसरे सज्जन ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं...। लेकिन फिराक साहब कब मानने वाले थे, बोले - आप हिन्दी में सुनाइये न, ये तो खड़ी बोली है।... यह अन्तहीन संवाद ठहाकों के बीच चलता रहा। इसी प्रकार आज कोई व्यक्ति सागर तरफ के कवि से कहे कि आप कोई बुन्देली कविता सुनाइये और उसकी कविता को सुनकर कहे कि यह तो खटोला है, बुन्देली में सुनाइये। महोबा का कवि आगे आकर अपनी बुन्देली कविता जब पढ़ेगा तो उसको भी नकार दिया जाएगा कि यह तो बनाफरी है, बुन्दली में सुनाइये। तब किसी की रघुवंशी, तो किसी की तवरधारी, तो किसी की सिकरवारी, तो किसी की भदावरी तो किसी की लुधांती, तो किसी की ललितपुरी, वगैरह बोलियों की ही कविताएँ हमारे सम्मुख आती चली जाएंगी, और हम यही कहेंगे कि बुन्देली में सुनाइये। जबकि इन सभी बोलियों में बुन्देली माटी की महक, यहां की पर्वत श्रृंखलाओं की गूँज, और यहां के पानी की ठसक... वगैरह सब कुछ मौजूद है, और हम हैं जो फिराक गोरखपुरी की तर्ज पर सिर्फ बुन्देली की ही रट लगाए जाएँ? समस्या तब और भी जटिल हो जावेगी जब प्रत्येक क्षेत्र विशेष का कवि सिर्फ और सिर्फ अपने ही एक अति सीमित क्षेत्र के अनपढ़ मजदूर वर्ग के लोगों द्वारा अटपट एवं ऊबड़ खाबड़ बोली को ज्यों का त्यों लिपिबद्ध किये अपने ही उस स्वरूप को ताल ठोककर असल बुन्देली कहेगा व अपने उस स्वत्व मोह को किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार न होगा।

वस्तुतः बुन्देलखण्ड एक बहुत बड़ा भू-भाग है जिसकी छवि का अंकन ओरछा राज्य के अन्तिम राजकवि 'अजमेरी' जी ने इन पंक्तियों में किया है -

"यमुना उत्तर ओर, नर्मदा दक्षिण अंचल,
पूर्व ओर है टोंस, पश्चिमांचल में चंबल।
उर पर केन, धसान, बेतवा, सिंध बही है,
विकट विन्ध्य की शैल-श्रेणियाँ फैल रही हैं।"

विविध सुदृश्यावली, अटल आनन्द भूमि है, प्रकृति छटा बुन्देलखण्ड स्वच्छन्द भूमि है" और यही स्वच्छन्दता प्रकृति के विविध रूपों में विभाजित हुई है - नदियों, पर्वत श्रृंखलाओं, वन-उपवनों, बेहड़ों की भौगोलिक परिस्थितियां बदलती गई और उन्हीं के साथ बुन्देली की बोलियों और उपबोलियों में विभाजित होती चली गई। परिणाम यह हुआ कि किसी क्षेत्र में जो शब्द जिस अर्थ में प्रचलित है वही शब्द किसी दूसरे क्षेत्र में दूसरे ही अर्थ को व्यक्त कर देता है। जैसे सागर के क्षेत्र में 'नें' शब्द 'नहीं' के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है - "काय भैया तुम गढ़ाकोटा जै हौ? तो उत्तर मिलेगा - हम नें जै हैं।. परन्तु बुन्देलखण्ड के ही अन्य क्षेत्रों में नैं जैहैं का अर्थ झुक जाने से व्यक्त हो रहा है, तो कहीं जाते जाने के अर्थ में - 'गाड़ी में बैला नें दो।' ऐसी स्थिति में जो बुन्देली कवि जिस क्षेत्र विशेष की बोली या उपबोली को साहित्य लेखन में प्रयोग करेगा तो उसके सृजन को तो बुन्देलखण्ड के ही अन्य क्षेत्रों में समझने में कठिनाई होगी। ऐसी स्थिति में हम यह महत्वाकांक्षा लेकर लिखें कि जिस प्रकार मध्य युगीन हिन्दी की पर्याय ब्रजभाषा का काव्य भारत में कहीं भी हिन्दी साहित्य में रुचि रखने वाले प्रबुद्धजन समझ कर आत्मसात कर लेते हैं, ठीक वैसे ही हमारी बुन्देली की काव्य रचनाओं को भी आत्मसात करें। अब तो बुन्देलखण्ड के बाहर के भी विश्वविद्यालयों में हिन्दी के छात्रों को ऐच्छिक रूप में बुन्देली पढ़ाने की सुविधा उपलब्ध है। टीकमगढ़ के ही निवासी प्रो. महेश जायसवाल ने तो भारत के ही बाहर हॉलेण्ड के विश्वविद्यालय से बुन्देली में डाक्ट्रेट ली थी। ऐसी स्थिति में बुन्देली का स्वरूप बोलियों-उपबोलियों के सीमित घेरों में अतिक्षेत्रीय प्रभाव को लेकर "अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग।" की उक्ति चरितार्थ करे, तो निश्चय ही बुन्देली ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली, डिंगल.... आदि के समान एक साहित्यिक भाषा नहीं हो सकेगी। जबकि लोक साहित्य अवश्य अपने-अपने क्षेत्र विशेष में वहां के प्रभाव में फूलता-फलता युगों की परम्परा से जीवित रहा है। लेकिन शिष्ट साहित्य सर्व ग्राह्य होता है, इसलिए बुन्देली को सर्वग्राह्य बनाया जावे-

जिसे यमुना से नर्मदा तक और चम्बल से टोंस तक सभी बुन्देलखण्डी चाहे वे बनाफरी हों या खटोला, रघुवंशी, भदावरी, लुधांती आदि किसी भी क्षेत्र के हों, वे उस निखरे हुए बुन्देली के जिस स्वरूप को अपना मान लें, मोटे तौर पर वही स्वरूप मानक बुन्देली कहा जा सकता है।

आज बुन्देली कवियों की भीड़ हमारे सामने खड़ी है। लेकिन उनका उद्देश्य बुन्देली के लिए कुछ कर गुजरना नहीं अपितु कवि सम्मेलन के मंच जीतना और भरपूर कमाई करना है। ऐसी स्थिति में वे रचनाकार बुन्देली के मानकीकरण में भला रुचि क्यों रखेंगे? वे तो भोले-भाले ग्रामीणों का माखौल उड़ा कर पब्लिक को खूब हँसायेंगे और तालियाँ बजवाकर आयोजकों से अच्छा पैसा वसूल करेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनका काम अति क्षेत्रीय प्रभाव वाली बोली या उप बोली से जब बिना श्रम किये चल रहा है। तो भला उन्हें क्या जरूरत कि वह मानकीकरण की बात सोचें. ...। ऐसे कवियों की सर्जना मात्र कवि सम्मेलन, मंचों पर सिर्फ

तब तक ही जीवित रहती है, जब तक वे स्वयं मंच पर रहते हैं।

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जैसे पुराने लोग ही नहीं, अभी कुछ वर्ष पूर्व तक मंचों पर छाए रहे - बलवीर सिंह 'रंग', शिशुपाल सिंह 'शिशु', डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' तथा बुन्देली में भी वंशीधर पंडा, सन्तोष सिंह बुन्देला, शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला', लक्ष्मीनारायण शुक्ल 'वत्स' और चतुरेश जी जैसे दिग्गज कवियों के नाम तक स्मृतियों से ओझल हो गए। ऐसी स्थिति में कवि सम्मेलन-मंच की वाहवाही लूटने को ही सब कुछ मानकर बुन्देली कवि या बुन्देली काव्य का आंकलन नहीं किया जा सकेगा। मंच जयी बुन्देली कवि, स्वयं-भू अपने को बुन्देली का सरताज भले ही मान लें, परन्तु उनकी रचनाधर्मिता कालजयी जब तक नहीं होगी, तब तक उनका वास्तविक मूल्यांकन भला किस आधार पर कर लिया जावे? कालजयी साहित्य बोली, उपबोली और अतिक्षेत्रीय प्रभाव के संकीर्ण फेरों में बँधकर कभी नहीं लिखा जा सकता। इसलिए बुन्देली रचनाधर्मियों को पहले तो इस मिथक को तोड़ना होगा कि कवि सम्मेलन मंच लूट लेना उपलब्धि बिल्कुल नहीं है। वस्तुतः मंचजयी बुन्देली कवियों ने बुन्देली को एक साहित्यिक भाषा न मानकर देहाती अनपढ़ गवैयों की बोली ही माना है। उस अनपढ़ देहाती समाज की गतिविधियों एवं फूहड़ता को मंच पर उसी रूप में बखान करके वे श्रोताओं को हँसा कर तालियां बटोरते हैं। उनकी पंक्तियों में काव्य तत्व कहीं दूर-दूर तक भी देखने को नहीं मिलेगा, परन्तु वे ठीक वैसे ही अनपढ़ देहातियों के लहजे की हू-ब-हू नकल करके मंच से जब कविता के नाम पर कहेंगे कि - "हम्मनें कई सो टिन्ना गए?"

तो श्रोता ग्रामीण फूहड़ता पर ही ठहाका लगाते हैं न कि उसमें हास्य रस का रसाभास देखते हैं। उन अनपढ़ ग्रामीणों द्वारा सुने हुए अंग्रेजी शब्दों का भ्रष्ट उच्चारण भी उनकी बुन्देली काव्य रचना का आधार बन जाए तो आश्चर्य क्या? जैसे कि डेलीना, हैवीपन.....आदि। इतना ही नहीं अतिक्षेत्रीय प्रभाव वाली शब्दावली सुन-पढ़ करके तो बुन्देली के अधिकृत विद्वान भी कभी-कभी अपना माथा पकड़कर रह जाते हैं कि इसका मतलब क्या हुआ? उदाहरणार्थ राठ (हमीरपुर) निवासी स्व. हरगोविन्द सिंह जी की कुछ पंक्तियाँ देखें -

"...भर गुच्छन जमना फूट कढ़ी गौहान हार गोरी-नारी।"

"....हिलरो जल कंडी-उतरावन, जब गिरो कलफया भदर-भदर।
नद्दी-नारे गड़गड़ा उठे, या धुँआँधार की झिमर झिमर।।"

"...नाठर-कुनकुट गुलजार करत, ऊ पुरसारथ की बलिहारी,
कंचन के झुमका उठा-उठा, जै बोल रही क्यारी-क्यारी।
ककरीले काबर की काया बन जात मार, विलसत कछार।।
मिहनत की महिमा है अपार।।...."

एक उदाहरण उरई (जालौन) निवासी स्व. शिवानन्द मिश्र 'बुन्देला' की 'बरजोरा कौ समरपन' शीर्षक बुन्देली कविता से -

"......दाँव रकेबन जमे, कसो पीठी पै बालक;
बघबाबै चहुँ ओर बैरियन की घातन में।
सने रकत में वस्त्र, अस्व ज्यों बिजली कोंधा;
ऐसी लगै सजीवन यौवन कूंदी रन में।।..."

इन्हीं 'बुन्देला' जी का एक और उद्धरण -

"..... भूखे मुन्स उघारे मिल है, सीदे और हरारे मिलहैं;
बइयर लरका वारे मिल है, मुखिया कहूँ मुनारे मिलहैं।..."

बानपुर (ललितपुर) निवासी श्री कैलाश मड़वैया की भी कुछ पंक्तियाँ -

"......लोखर कैसी धजा साँवरी, भरी जवानी छव नोंनी,
रसिया के दो बाँके नैनाँ, मो संग कर गए अनहोंनी।..."

उद्धरण तो बहुत हैं, परन्तु स्थानाभाव में इन थोड़े से उद्धरणों में रेखांकित शब्दों की ओर पाठकों का ध्यान चाहूँगा। क्या यह रेखांकित शब्द सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में ही लोग उसी अर्थ में समझ लेंगे जिस अर्थ में रचनाकार के अतिक्षेत्रीय दायरे में बोले व समझे जाते हैं। बुन्देला जी ने 'सीदे' शब्द सीधे सादे व्यक्ति के अर्थ में लिखा है। जबकि बुन्देलखण्ड में ही कहीं कहीं सीदे का शब्दार्थ पंडितों को दिया जाने वाली भोजन की कच्ची सामग्री से भी है। तब ऐसे भ्रामक शब्दों का प्रयोग भी मानक बुन्देली में घातक सिद्ध होता है और कुछ वे शब्द जो केवल उस क्षेत्र विशेष में ही अपना अर्थ लिए प्रचलित हैं उन शब्दों से भी परहेज आवश्यक है। जैसे उपर्युक्त उद्धरणों में - गौहान, कलफया, नाठर-कुनकुट, बघबाबै, बइयर, मुनारे, लोखर शब्द हैं जो निरर्थक नहीं हैं, उनके क्षेत्र में धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रहे हैं परन्तु बुन्देलखण्ड के ही अन्य क्षेत्रों में वे समझ से बाहर हैं।

साहित्य महोपाध्याय स्व. श्याम सुन्दर बादल ने अब से लगभग चार दशक पूर्व मेरी आरम्भिक बुन्देली रचनाओं के संकलन "रंग फुआरौ" की सम्मति में यह शब्द भी लिखे थे - "...बुन्देली की एक कानात है - "दस कोस पै भाका बदलै।" ई सें ई भाका के कैऊ रूप हो गए हैं। सो ई कों ऐसे सबदन के प्रयोग सें बचावौ जरूरी है, जिनकौ व्यौहार सीमित क्षेत्र में हो रऔ है।..." 'मानक बुन्देली' के सन्दर्भ में अब से चार दशक पूर्व यह रोशनी हमें बादल जी से जो प्राप्त हुई थी, उसे कवि सम्मेलनों की सस्ती वाहवाही के साथ कमाई की चिकनी फिसलन पर फिसलते बुन्देली कवियों ने अब तक लगातार अनदेखा किया है।

आज चार दशक बाद एक बार फिर बुन्देली के मानकीकरण की हवा चल पड़ी है। इस हवा में उड़ते हुए स्वयं-भू विद्वान अभी भी नहीं जानते कि यह 'मानकीकरण' किस चिड़िया का नाम है? यह मानकीकरण आज बुन्देली के सन्दर्भ में क्यों आवश्यक है? और यह कैसे किया जा सकता है?.... जबकि बुन्देली के प्रति उनकी दीवानगी आज देखते ही बनती है। ऐसी स्थिति देखकर वह युग सहज याद आ जाता है जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उत्तर प्रदेश के एक अँचल विशेष में बोली जाने वाली खड़ी बोली के मानकीकरण की हवा चलाई थी। उनके अथक परिश्रम के बाद वह आँचलिक खड़ी बोली आज हिन्दी का पर्याय हो गई है। जबकि वह भी मानकीकरण के पूर्व बुन्देली, बघेली आदि की ही भाँति एक सीमित अँचल में बोली जाने वाली बोली ही थी। वह मानकीकरण के साथ सु-संस्कृत और परिनिष्ठित भी हो गई है। कुछ नासमझ लोग भले ही ढिंढोरा पीटें कि उस मानक खड़ी बोली हिन्दी की अपनी कोई संस्कृति नहीं है।

संस्कृति तो केवल बुन्देली में ही पाई जाती है.... वगैरह। ऐसे विद्वानों को कथन करने से पहले यह जानना चाहिए कि संस्कृति की जड़ें लोक में गहरी होती हैं और यह खड़ी बोली रातों रात आसमान से नहीं टपक पड़ी है। वह भी अपने मूल में किसी अंचल विशेष के लोक से ही उपजी है। इसलिए खड़ी बोली हिन्दी को संस्कृति से हीन एवं संस्कारविहीन कह देना हास्यास्पद ही है।

आज जब बुन्देली के मानकीकरण की हवा चल पड़ी तो हम स्वयं अपने को बुन्देली के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के रूप में स्थापित करने के आकांक्षी तो हैं। किन्तु इससे बिल्कुल बेखबर हैं कि खड़ी बोली के मानकीकरण के लिए उन महापुरुषों के द्वारा कोई मोटा यजमान खोजकर सम्मेलनों के आयोजन कभी नहीं हुए। कि सम्मेलन में सहभागी विद्वानों के भोजनादि, आवास वगैरह का प्रबंध यजमान से कराकर प्रतिभागियों से पंजीकरण के बहाने पैसा वसूला गया हो, भाषाशास्त्रियों, विद्वानों से परचे पढ़वाए गए हों, भाषणबाजी कराई गई हो। उन विभूतियों ने मसक्कत करके सर्व प्रथम स्वयं खड़ी बोली के मानक स्वरूप में लिखा और वैसा लिखने वालों को पर्याप्त प्रोत्साहन देकर उसके लिए वैसा ही माहौल तैयार किया था। क्या हम उनके उस पथ पर चले बगैर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बुन्देली के सन्दर्भ में बन जाएंगे? लेकिन हमने उन विभूतियों के नाम को तो पकड़ा काम को स्पर्श तक नहीं किया है। अस्तु -

सार संक्षेप यही है कि बुन्देली को यदि ब्रजभाषा, मैथिली, अवधी, डिंगल आदि के समान हिन्दी साहित्य में स्थापित कराना है तो उसको लोक रीत से ऊपर उठाकर, बुन्देली का मानक स्वरूप निखारें और उसे साहित्यिक भाषा के स्तर तक लाने हेतु बोलियों, उपबोलियों और अति क्षेत्रीय प्रभाव के संकीर्ण घेरों से बाहर लाने की इच्छाशक्ति जागृत करें। यह कार्य कोई भाषाशास्त्री आलेख लिखकर या भाषण देकर कभी नहीं कर सकेंगे। इसके लिए प्रथम जरूरत बुन्देली के रचनाधर्मियों में इच्छाशक्ति की है। स्व. श्यामसुन्दर बादल के अनुसार अपनी रचनाधर्मिता में ऐसे शब्दों से सख्त परहेज किया जावे जिनका प्रयोग किसी सीमित क्षेत्र में ही हो रहा है। वे यह समझकर लिखें कि समूचे बुन्देलखण्ड के लिए लिख रहे हैं न कि सिर्फ अपने इर्द गिर्द के मुट्ठी भर लोगों के लिए। हम स्वयं बुन्देली में ऐसा निखरा हुआ रूप लेकर लिखें एवं वैसा लिखने वालों को भरपूर प्रोत्साहन देकर एक माहौल तैयार करें। यदि ऐसा हम कर सके तो वह दिन दूर न होगा कि बुन्देली अपने मानक स्वरूप को राष्ट्रभाषा हिन्दी के दर्पण में निहार सकेगी। अन्यथा सम्मेलनों या कार्यशालाओं के आयोजक और उन आयोजनों की गतिविधियाँ शिगूफेबाजी के अलावा कुछ नहीं होंगी। हाँ मोटे यजमानों की उदारता से स्वयं आयोजक अवश्य निहाल भी होंगे और ऐसे स्वयं-भू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भले ही बन जाएं। लेकिन बुन्देली-रचना संसार का ढर्रा ज्यों का त्यों ही सिर्फ कवि सम्मेलन मंचों से सस्ती वाहवाही बटोरता व कमाई करता रह जाएगा। अहं को त्यागें बगैर बुन्देली के मानकीकरण फिलहाल हमारे लिए गूलर के फूल के समान ही है।

- कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) म.प्र.

तरकस के तीर

-रतिभानु तिवारी 'कंज'

लोकतंत्र के देश में, जौ कैसौ दस्तूर।
स्यारन सें कर जोरकें, कैरय कंज हजूर।।१।।
गोरी रंग घोरें धरें, कोउ न ऐंगर जात।
नेता जू के दौर में, बूड़े तक बुल्यात।।२।।
आज जरूरी हो गऔ, ई पै करौ विचार।
मुखिया जू की लाँच सें, कबसें भई चिनार।।३।।
चौघेरां अब चल गई, बेइमानी की चाल।
लबरन खों गद्दी मिली, हिरा गई चौपाल।।४।।
नेता कौ नातौ बड़ौ, महिमा बड़ी अपार।
नों नीके नों मायके, गली-गली ससरार।।५।।
साँचे खो फांके परें, लबरन के हैं ठाठ।
स्वारथ ने ई देश खों, करदव बाराबाट।।६।।
टाठी धर दइ माँजकें, हँड़िया हींड़ी देख।
बरबर कें कारी भई, हाय करम की रेख।।७।।
कीच-गिलारौ फाग खों, फेकत्ते इठलात।
इक-दूजे पै साल भर, अब फेकें दिन रात।।८।।
छैंकौ कर उजरा पिड़ें, मचौ भौत अन्धेर।
मौड़ा-चांपें काँख में, देत गाँव में टेर।।९।।
रात कढ़ें दिन होत है, काल करोंटा लेत।
जैसें कारे पाख में, होत जुनइया सेत।।१०।।
दलबदलू नेता फिरें, कोउ न पूँछै बात।
नइ चपिआ में ज्यों घरौ, घीउ धरौ ना जात।।११।।
बुलकत हैं नितखीर में, खात मलीदा मीड़।
बासी रोटी नोंन खों, दीन-हीन रय हींड़।।१२।।
सूरा बाटै रेवड़ीं, चीन-चीन के देत।
नंगा ठाँड़ौ गैल में, चोर बलइयाँ लेत।।१३।।
आसतीन में पल रये, नाग चेंनुआं आज।
फुसकारें फन मारबें, तनक न आबै लाज।।१४।।
झूँठ-साँच की हो रई, आपस में तकरार।
छाती दिरकी साँच की, धरम भऔ लाचार।।१५।।
बैर बिसाकें धर लऔ, कछू न सोची पैल।
जितै सिया कौ मायकौ, मइं राबन की गैल।।१६।।
हूँका में चूका परौ, दई तानकें लात।
कक्का कलुआ के घरै, दयें दोंदरा जात।।१७।।
सबके पेटै बैठकें, लेत पराऔ भेद।
जी पातर में खात हैं, करें ओइ में छेद।।१८।।
तला-तलइयाँ बावरीं, चौमासें इठलात।
जेठमास की तपन में, रीते डरे दिखात।।१९।।
जे पथरां 'गड़वांत' के, लातन रोंदे जात।
मूरत बन मन्दिर बसें, फूल चढ़ें मुस्कात।।२०।।

- 'बुन्देली धाम' नैगुवाँ, (टीकमगढ़) म.प्र.

बुन्देली की उन्जसों का आनन्द

- डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'

कौनऊ बात कोउ कात। अपनी बात खां अच्छी तरां से समझावे के लाने कैबे बारौ कछू ऐसी तुलना करत उर उंजसें देत कै हिरदे में बात पैर जावे और सुनवे वारेन खां भली तरां से समज में आ जाय। जैसे कन लगत कै ऊके उन्ना बगलां से फक्क या झक्क हैं। ऊतौ केवला सें कारौ धरो। संस्कृत भाषा में कवि कालिदास कौ नाव तौ सबने सुनो हुयै। पूरी संस्कृत की भाषा में कालिदास कैसी उपमायें और उंजसें कौनऊं कवि की नइ बन पाईं उनके बारे में कई गई कै "उपमा कालिदासस्य" जीकौ अर्थ है कि कालिदास के समान काऊ की उपमा नैयाँ। ठीक ओई तराँ सें बुन्देली भाषा की जो उंजसें बोल चाल में परम्परागत रूप से चली आ रई, बे उंजसें कालिदास की उंजसन से कम नइयां। जे उंजसें सुनबे में साजी लगतीं उर सुनवे वारे बात खां पूरी तरां से समज लेत। बुन्देली की कछू उंजसन कौ अपुन आनंद लेव जिनखां एक एक बात में कैवत के सँगै ढारौ गओ।

हम तौ उनें हरतार से लगत। हमाय सँगै गिजाई सी ना टिरकौ उर चिपरू कैसौ मों ना चलाव। लरकन वाये अरा सौ मों बाउत। उनकौ लरका तौ डूंड़ सौ करिया धरौ। बिटिया देखौ तौ रैन कैसी पुतरिया है। ऊयै तौ भूत से भरे रात। हमसें बोले तौ हम बंदरा सौ बमका दें। हुरकिनी सी बमकत। चमगोदर सौ मौ चलात। नार से ना हेरौ। वा तौ कुतिया सी दोंकत। अरुवा सौ भ्यांयदौ बोलत जा बिटिया तौ कोइल सी कूकत। भौरी सी मड़रात। कौआ सो काँव काय खां कर रये। ऊतौ बाज सौ टूट परौ। हाड़ैल कैसी नकइया ना पकरें रओ। ऊकी बात हमें तीर सी लग गई। वौ तौ करीं सी चीरत। बा तौ चील सी मड़रात रई। पुरिया सी ना पूरौ। बा रिसा गई उर बमीठे सी बैठी। किवार कैसी छाती तौ लगाँय। ऊके मूड़ में पड़ा सौ जुवां कड़ो। हम तौ ओरे से बरकाउत। बरा से बदलवौ ठीक नइयां। हमसें ना उरजौ माछी सी मीड़ दें। सांड़ सी दलांकत, शेर सौ दाँकत। सुँगैया सी मों चलाउत। साजें नईं बोलत स्याउ सी फिकरत। बौ भौत बेशील है - लठिया सी टोरत। लम्पा कैसौ इठत। बादर सी गरजत। घरई में घूंस सी घुसी रात। बात नईं करत-ऊमर सें ठूंसें। हम तौ पान से पलोटत। तकुवा से सूदे हो गये। सवारी भुसा सी भरें। पुलिस नें सोंट सी फोर दई। भटा से गटा ना काढ़ौ। कुंजरियन सी लरतीं। घुरवा कैसे नकुवा फुलैउत। ऊने अपनी जनी खां मार मार के बरा सौ सुजै दओ। धान सी कूटी। लुचई सी बेली। पिड़ी सी माड़ी। रांट कैसी घरियां है। संसार की माया तौ मकरी कैसौ जारौ है। भारई सी भन्नात उर ततइया सी भगी। टिटार कैसी चिचिया है। ऊकी सारस कैसी जोड़ी है। मिदरवा से ना उचकौ। ऊके गोड़े सरइया से हैं। शंख सौ फूंक दओ। घुरिया सी हिनहिना रई। खजरी कैसी डूँड़ धरो। ऊकी बतकिया सी चाल है। हम लाई सी भूंज दें। ऊके पेट में उरदा से चुर रये। बा तौ गोली सी ढड़कत। मोटर में बैठे बैठे बेर से उसत रये। बौ जर मरो उर सकला सौ उदर गओ। मौड़ा आंगन में खुटियां सीं गाड़त फिरत। करिया सौ फूसत। कुकरा सौ लरत। मूंद सी दाब लई। हम तांय केंड़ा बैला सौ हेरत। हमनें तौ टका सी कै दई सो ऊखां गान सौ दब गओ। बा तौ छचूंदर सी लगत। जांदा लरका बिटियां है सो कभऊं कभऊं हड़िया से सुंदत। भाजी सौ काट दें। हमाओ लरका तौ हीरा सौ है। जा गगरी बिलकुल कइंरा सी हती। ऊके ओंठ ईंगुर कैसे लाल है। बिटिया केरा कैसी गाब है। सुआ सौ पड़ा दओ उर छत्ता से तने रये। वौ बार सें बारीकी करत उर मूसर सौ है। हम तौ मौआ से रखा रये। मोर सी कूक रई। राण से हाँत डारें। भाँड़ सौ मों बाउत। लाख सी लख गई। छोत सी बैठ गई। मंत सौ पड़ दओ। पानी सौ पतरौ। बिच्छू सौ झन्नात। कुस सी बिड़ गई। कूंड़ सौ कड़ गओ। बातें का कत बरछी सी हूलत। कुचरेड़ कैसौ मों कुचरें। हम तौ पानी सौ पीयत गये। तिली सी झार लई। ऐंठा से ना टोरौ-मैंना कैसी बोलौ। मूड़तौ भटा सौ भुंज रओ। निबुआ कैसी निचोरकें फेंक दे। सुआ कैसी नाक है। बा तौ तांत सी तनत। होरी सी बार दई। लरका तौ होरी कैसौ डांड़ो है ऊकी मती सी मर गई। बार तौ बन से तिरक गये। साड़ी सी रोर लई। घर में दमार सी ठुकी। पथरा सौ करेजो करौ। चंदा कैसौ ऊरौ। नैंनू कैसी लोंदा। चिरैया सी उड़ गई। हिराने गदा से कुटौ। खरा कैसे गोड़े चूमत।

ई तरां से बुन्देली की हजारों उपमां रोजईं रोज सुनवे उर बोलवे खां मिलतीं। बुन्देली भाषा के उंजसें भौतई साजी हैं। कुल्ल गिनाई जा सकती। इनसे बुन्देली की भाषा में जान आ जात उर मिठास आ जात।

- ग्राम व पोस्ट स्यावरी, मऊरानीपुर, जिला झांसी

बुन्देली बसंत

- एल.एम. चौरसिया

दूल्हा बन बसंत जु आये, सकल बरात सजाये।
हाली फूली प्रकृत दुलइया, हरदी आंग चढ़ाये।
मनमौजी मकरंद मस्त हो, स्वागत गीत सुनाये।
कोहे कोहे कहै कुयलिया, जब प्रियतम घर आये।।

बिछ गओ लो बसंत कौ फट्टा, जुर आये फरचट्टा।
अलसाइं कलियां अंगड़ाई, लै लहराया दुपट्टा।
मतवारे भौंरा मस्ती में, मारें खूब उचट्टा।
गदराइं अमियां चुटयाबे, मारे सुआ झपट्टा।।

- सीताराम कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

नोंक-झोंक

- डॉ. दुर्गेश दीक्षित

बड़न-बूढ़न नें जा बात सोरा आना साँसी आ कई है कै, आदमी कौ भाग बदलबे में देर नईं लगत। जौ सब समै कौ फेर है। कै नईं सकत कुजानें कियै कबै का हो जाय। भगवान की लीला बड़ी विचित्र है। कबैं कीकौ का कैसो भाग खुल जाए? कओ लांख की लीक हो जाए उर लीक को लाख हो जाए। ई कानात खौं कोऊ झूठीं नईं कर सकत।

"मनुस नहीं बलवान है, समय होत बलवान।
भीलन लूटी गोपिका, बेइ अर्जुन बेइ बॉन।।"

पूरी असफेर भर में मनपुरा वारे, दिमान साव कौ भौतई नाव हतो। गेरँऊ, उनईं की बाँधी बँधत ती उर छोरतन छूटत ती। उनकौ नाँव सुनतनईं लोग थर-थर कपन लगतते। ऐसी कानात कई जात कै 'म्याँऊ के मुँएँ को लग सकत? जो बोलें सोऊ बेऊँ बिबूचें। ईसें दूरई रैबौ ठीक है। दिमान साव तौ कछू दिनाँ में राम खौ प्यारे हो गये। उनके जेठे कुँवर साब बड़े दादा कुआऊत ते। वे दिमान साव सें कैसऊँ कम नईं हते। अपने बुजुर्गन नें जा बात सोरा आना साँसी आ कई है कै -

"जाके कुल की रीति जो, लहें रात है तौंन।
सिंह बाज के चैनुबाँ, मार सिखाबें कौन।।"

उर जा कानात सोऊ कई जात है कै'कैकरे जाव तौ माटी खोदतई है। कछू दिनाँ में कुँवर साब की सांके कौ ब्याव हो गओ। बड़ी धूम धाम सै बारात गई। उनके ससुर साव भौतई बड़े जागीरदार हते, भानगढ़ के। उनके घर में इन्द्र कैसी परी दुलइया जू की अवाई हो गई। अपनी बऊ धन खौं देख कै नन्ना जू की हाल फूलकौ ठिकानौ नईं रओ। उनकी घर बखरी, बहू रानी पै भौतई लाड़ प्यार फसफसात रओ। हराँ-हराँ भगवान की कृपा सें दो ठौआ गुलाब कैसे फूल कुँवर पैदा हो गए। उनकौ भौतई लाड़ प्यार सै पालन-पोसन भओ उर हराँ हराँ दोई कुँवर ब्याव लाख हो गए। उर कछू दिनाँ में बड़े दादा ने दोइयँन कौ साके कौ व्याव कर दओ। उर फिर रैन कैसी पुतरियां दो ठऊ बउयें घर में आ गईं।

अपनी सुक दिखावन बऊवन के संगै रत, रत बड़े दादा खौं कैऊ सालै कड़ गई, दोई बऊये उर दोई कुँवर एकई घर में हिल मिलकें रत्ते। दोई बऊयें भारई छोंचायली हतीं। पूरी घर गिरस्ती कौ भार उननें अपने मूँढ़ पै लै लओ तो। वे खूब मन लगाकें अपने सास-ससुर की सेवा करत तीं। जा बात साँसी आ कई 'जात कै आदमी जानिए बसै, उर सोनौं जानिये कसैं।' ऐसई ऐसै। उनकी कैऊ सालैं कड़ गई। और तो और बड़े दाऊ साव के दो चार नाती हो परे। उनकौ परवार ऊपर से तौ अच्छौ हरो भरो उर फूलौ फरो हतो, अकेलै भीतरई भीतर घुन सौ लगत जाते तो। भीतरई भीतर कछू खुटपुट सी होत रत्ती। ऊकौ असर बड़े दाऊ उर नन्ना जू पै भौतई बुरओ पर रओ तौ। वे विष कैसो घूँट पी पी कै रै जा रये ते। अब वे बिचारे अपनी बिथा कियै सुनाबें? वे तौ गुर भरे हँसिया से हो-हो जा रये ते, जो ना गुटकत बने उर ना उगलत बनें। कजन काऊ सें वे अपने घर की बात कत है कै कछू सार नईं हतो। कोऊ कछू पुजै नई देत। हँसी के करबे वारे तौ दस जानें ठाँढ़े रत। जा बात कविवर रहीम, सोरा आना साँसी आ कै गये कै -

रहिमन मन की बिथा, मन ही राखैं गोय।
सुन अठलैहैं लोग सब, बाँट न लैहै कोय।।

अब काऊ सै का कये? बड़े दाऊ साब, अपनी छाती में गतकौ सौ दैकै रै गये। वे कछू रीनें रीनें से रन लगे। बऊएँ अपनी सास खौं मौका चौका पै ठूँसा से मारन लगीं। अकेलें सासो बाई मौंगी चाली सुनकै रै रै जातती। सब सुनत रत्ती अकेलै। उनकौ अपनी बऊवन पै भौतई लाड़ प्यार हतो। वे कासै कौ सुर काँसई में राखन चाऊत तीं। जा बात वे अच्छी तरा सें जानत ती कै "ना ऊमर फोरौ उर ना पखा उड़ाव।"

अकेलै उनकी उन दोई बऊंवन में भीतरई भीतर एक भ्रम सो भरो रत्तो। बड़ी बहू सोसत रती कैं बाई हल्की खौं भौत चाऊती उर हल्की सोसतती वे बड़ी खौं भौतई चाऊती। जेई सोस कै उनके भीतरई भीतर खुटर-पुटर सी होत रत्ती। हराँ ऐसी सोस-सोस कै देवरानी उर जिठानी में फूसा-फासी सी होन लगी। बऊएँ एक दूसरे खौं देख-देख कैं मौं मरोरन लगी। उर अपने ऐरै अपने-अपने घरवारन के कान भरन लगीं। कई जात कै "मन महीप के आचरन दृग दिमान कै देत।" कछू ऐसई बात लोक कवि ईसुरी सोऊ कै गये कै - "को नईं जानत बुरये चितैवो, रूखे मन मुस्कैवो।"

बड़े दाऊ साव जान तौ सबई रये ते। उनके भीतरई भीतर घुना बीदी सी लगी रत्ती। वे अपने दोउ लरकन खौं अलग-अलग करबे कौ मौका देख रये ते। वे सोसत ते "ना रहै बाँस ना बजे बाँसुरी'।

अब बताव कै का कई जाय। जा हबई ऐसी चल गई। जा सबरी मान-मर्यादा धरा में मिलत जा रई। बड़न-बड़न की कोनऊ रीजई बूज नई रई। और तो और अपने लरका, अपनई बाप मताई खौं माटी कूरा मानन लगे, उर बहुएँ अपनी सासन सें नौ हात, दूर रन चाउतीं हैं। ऐसी कानात कई जात कै "जिनई ने जोय, उनइये लजाये।'

एक दिना गेरँऊ सनाकौ खिचो तो। सब आराम सें अपने-अपने घरै सो रयेते। अचानक आदी राते बड़े दाऊ साब के घर में रोबा-पोंकी उर हल्ला-गुल्ला सुना परो। पुरा परोसी जग उठे, उर हराँ-हराँ दायजू साव के घरै ठट्ट जुर गओ। उनकी दोई बऊएँ तौ खुड़ पेंच मचाई हतीं। वे कछू न कछू अनुवा, अनारौ उर अलच्छ खोज रई ती। आदी रातै क्याँऊ सें हल्के कुँवर साव नशा करकै आ गये उर लग गये आयली बाऊँली बकबे। बऊँवन खौ तौ कौनऊँ नई कोनऊ बहानौ चानई हतो। ऐसी कई जात कै "कानी

की आँख में तुस गओ, उर कानी खौं मिस भओ। अरे वे तौ कुस गुन की बाट हेरईं बैठीं तीं। कई जातकै "आलसी निगइया कुसगुन की बाट हेरै।" उनके दिमाग में गोबर तौ पैलँऊ सैं घुरऊ हतो। हल्कौ कुँवर सब्जी के बहाने इकदम भड़क परो उर लग गओ बऊ धनकी धुनाई करबे। उर दादाबाई ने जई सै उयै तनक रोको सोऊ वौ उनई पै बिगना सौ टूट कै गिरो। वे बेचारे दाऊ साव ऊसैं का कत्ते? मौंगे चाले, चिन्ता कैसे काटे रै गये। उन दोई जनन की आँखन सै अँसुआ टपटप गिरन लगे।

इतेकई में क्याँऊ से गाँव के जिमींदार साव आ धमके। जौ बँधी घर फूटत देखकै बोले कै काय हो कक्का जू, तुमाये घरै जौ इत्तौ बड़ौ फितूर काय आ होन लगो। तुमाये घर की बऊँवन, बिटियँन खौ तौ आज नौ काऊने रतन नई जानौ। कक्का जू बोले कै भइया जौ सब जुग कौ प्रभाव है। जिमींदार साव हमाये लानें तो पाँचई उँगरियाँ बिरोबर हैं। हमाये लानें तौ कोऊ काऊ से कम नइयाँ। अकेलै ई भ्रम की, कोनँऊ दवाई नइयाँ आजकल की बऊँवन खौं तौ अपनी सासें लाशन घाँई बसाऊती हैं। वे उनसै तौ नौ पगइया दूर रन चाऊती हैं। जब देखौ जब ऐंठा से टोरतीं रती हैं। जब ऐसी उनके मन में आई सो करत रती। उनके मौपे कोऊ तारौ नई लगा सकत। उठाई जीव और तरुआ सै दै मारी। अरे जिमीदार साव ऐसी कानात कई जात कै "माते दुके पिआँर में को कये को बैरी होय।" सो भइया हमने तौ दोऊ लरकन खौं अलग-अलग करबे की सोस लई। भइया! आजकल तौ ऐसी चलन चल गई कै घर में नई बऊ आई उर आऊतनई ऊने अलग चूलौ धर लओ। अपनी सास-ससुर के संगै रैबो उयै पुसातई नइयाँ। कक्काजू ने जैसे तैसे रो धो कै रात कांटी उर भुन्सरा होतनई दोइ लरकन खौं न्यारौ कर दओ। दोई लरका अपनी डेरा टकोरा लैकै अलग अलग घरन में रन लगे। अब कोऊये काऊ से का लेंने दैने? ऐसी कानात कई जात कै 'न्यारौ पूत परोसी बिरोबर'। दोई लरका हराँ-हराँ अपनौ अपनौ कारबार समारन लगे। जब सास-बहू की आकन्नई मिट गई तौ फिर उनें कक्का जू सैं का लैने दैने तो। वे उनके संगै रैकै अब का करते? अब कक्का जू बायरै का मौ दिखाँय? जौन घर बखरी अपने हाँतन सैं ठाँढ़ी करी ती, आज ओई में रैबौ कठिन हो गओ।

दूसरे दिनाँ वे अपनो सट्टो पट्टो बाँध कै तीर्थन कुदाऊँ कढ़ गये। उर विन्द्रावन में जाके अपनौ डेरा डार लओ। उनकी राजन कैसी गिरस्ती धूरा में मिल गई। ऐसई ऐसे कैऊ बरसै कढ़ गई। अकेलै डुक्को खौं तो अपने नाती-नंतन की भौंतई खबर आऊत रत्ती। वे दोई भइया तौ अलग-अलग रतई हते। हराँ-हराँ दोई लरकन के लरका बिटिया व्याव लाख स्याने हो गये। मौका पै दोइयँन खौं कक्का जू उर नन्ना जू की रै रै कै खबर आँवन लगी। जईसैं चैथी में घली, सोऊ होश आ गओ। वे सोसन लगे अब इनकौ ब्याव काज को करत? जौ सब स्वारथ कौ खेल है। कन लगत कै छूछे तुमे कोऊ ने नई पूछे। अरे बीदे पै सीदौ दओ जात। अटके पै तौ गदा सैं मौसिया कई जात। जा बात तौ बाबा तुलसी सोरा आना साँसी आ कै गये -

"गरज परै कछु और है, गरज सटै कछु और।
तुलसी भाँवर के परत, नदी सिरावत मौर।।"

पैलाँ तौ भईयन-भईयन की बोलई चाली नई हती, उर जई सैं गरज परी सो दोई जने रीत में आ गये। उर उपतकै दोई जने बोलन चालन लगे। बड़े भइया ने हल्के से कई कै देखौ तुमाई मौड़ी ब्याव लांख हो गई। उर इतै तुमाओ भतीजौ ब्याव लाख हो गओ। अब इनन खौं घर खोजबे को जैय? अपन खौं तौ कोनऊ ज्ञान गट्टो नइयाँ। अब 'चूले की खाँई मजोठे में हुन कढ़ीं आ रईं। कक्का जू तौ विन्द्रावन में बसकै रै गये। अब जे इत्ते बड़े काम उनके बिना को कर सकत? उनके बिना जौ इत्तौ बड़ो घर भाँय भाँय सो लग रओ। दोऊ बऊये अपने ऐंरै पसतान उर अपने पतियँन सैं कन लगीं कै अब जैसे बने सो उनें अपने घरै लुआँकै आव। नईतर जौ कांधौ भात अब कीके पेटे, समात? उर जे लरका बिटिया कैसे ठिकाने लगे। लरका बोलै कै अरे जा कढ़ी तौ तुमारई मठा की आय। तुमने पैलऊ तौ अपने सास-ससुर खौं आँखन नई देखो। अब लग गई जा तुमाई अक्कल ठिकाने। अब तुम सोसौ कै हम उनें अब का मौं लगाकैं जाँय। बऊये हाहा करन लगीं। तब कऊँ दोई लरका हिम्मत बाँध कै अपने मताई बाप नौ विन्दावन पौंचे। उर जातनई डिड़याकैं मताई बाप के गोड़न पै जा गिरे। मताई की आत्मा, भौतई बुरई बनाई। अपनी आत्मा के टुकड़न खौ देख कै वे अपनौं धीरज खो बैठी। उर उनकी असुवँन की धार सैं पूरे मन कौ मैल धुल गओ। वे सबके सब घंटन लौ रोऊत रये। उनन्ने मताई बाप सै बार-बार क्षमा माँगी, उर घरै लुआ जावे की जिद्द करन लगे। अब अपनन सै मिलबे में का लगत दोई भइया उने लुआकै अपने घरै लौट आये, बऊवन ने कान पकर पकर कै माफी माँगी। उर उदनई सैं दोई भइया मिल जुर कै अपने मताई बाप के संगै मिल जुर कै रन लगे। कक्का जू कौ बीरान घर फिरकऊं आबाद हो गओ। उन्ने अपने नाती-नतन के ऐन साके के काज कर लये। दोई बऊयें हिल मिलकै रन लगी। बाबा तुलसी जा सासी आ कै गये -

"जहाँ सुमति तहँ सम्पत नाना,
जहाँ कुमति तहँ विपत निधाना।।'

ऐसी कानात कई जात कै अपने घर के बड़े बूढ़े अपने ज्ञान उर अनुभव सै बड़े से बड़े जग जीतत रत। कछू जने कन लगत कै ब्याव में बब्बा खौं टिपारे में धर लै गये ते। घर गिरस्ती में पग पग पै बड़न बूढ़न की जरूरत परत है। जौ सब सहनशीलता कौ खेल है। कजन सास बऊये उर लरका-बिटिया हिल् मिलकै रये तौ बेऊ घर स्वर्ग कैसो बन जात। उर कजन घर में खुटर-पुटर मची रये तौ बों नरक बन जात। अरे, बऊये तौ घर की लक्ष्मी आँय, उर उनई से घरकी शोबा, प्रतिष्ठा है, चार बातें सैबे में सब काम पूरे होत रत। जा बात सोरा आना साँसी है कै, ज्यों ज्यों भीजे कामरी त्यों त्यों भारी होय।"

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ म.प्र.

लोरी : स्वरूप और उत्स

- डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

लोरी गीत का ही रूप है। जैसे गीत में एक ध्रुव पंक्ति होती है जिसे प्रत्येक छंद या अंतरा के बाद टेक के रूप में दुहराया जाता है। इसी प्रकार लोरी में भी ध्रुव पंक्ति होती है जिसे प्रत्येक अंतरा के बाद दुहराया जाता है।

लोरी शब्द की व्युत्पत्ति स्नेह प्रदर्शक शब्द लोर, लोरना से हुआ होगा। लोर का अर्थ चंचल, लोल, आँसू, उत्सुक आदि है तथा लोरना का अर्थ लिपटना, लोटना, चंचल होना आदि है परन्तु 'लोरी' शब्द गीत विशेष के अर्थ में प्रयुक्त हैं ऐसा गीत जिसे माँ द्वारा बच्चे को सुलाने के लिए गाया जाता है। लोरी गायन की परम्परा भारत के सभी अंचलों में रही है। ये लोक संस्कृति के अंग हैं। शिशु के जन्म के उपरान्त जब शिशु कुछ महीने का हो जाता है तो उसे झूले या पलने में लेआकर सुलाया जाता है। कुछ शिशु झूले या पलने में लिटाये जाते समय रोते हैं किन्तु जब माँ लोरी गाती है तो शिशु गीत की मधुर कोमल लय में मुग्ध होकर निद्रामग्न हो जाता है।

लोरी गीतों का शिल्प और संरचना संगीतात्मकता से युक्त होती है। आँचलिक बोली के शब्दों व लहजों के विविध प्रयोगों के साथ ये लोरियाँ भारत के भिन्न-भिन्न अंचलों में शिशुओं को सुलाने के लिए गायी जाती हैं। आधुनिक युग में जहाँ व्यक्ति की जीवन शैली और रहन-सहन में परिवर्तन हुआ है, वहाँ इन लोक संस्कारों में भी परिवर्तन हुआ है। उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ इन पुराने ढर्रे की लोरियों को गाने में शर्म का अनुभव करती हैं। वे उन्हें आज की परिनिष्ठित भाषा की शब्दावली में ढालकर गाना पसन्द करती हैं। कुछ पारम्परिक लोरियां यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। इन लोरियों पर भी आधुनिकता का थोड़ा बहुत प्रभाव भाषा संरचना में दिखाई देता है।

लोरी - अपने गुपाल जू को पलना डार झुला दउंगी,
झूला डार झुला दउंगी-अपने गोपाल जू कौं।
जब मेरे गुपाल जू खिलौना मांगे,
चकरी, भौंरी, अंटा गोली और खिलौने ला दऊंगी।
जब मेरे गोपाल जू कलेवा मांगे
माखन मिसरी दूध मलाई और मिठाई ला दऊंगी।
जब मेरे गोपाल जू सवारी मांगे
हाथी, घोड़ा, ऊँट पालकी छकड़ा गाड़ी ला दऊँगी।

उपर्युक्त लोरी भक्ति भावना से भरी है। माँ अपने शिशु को गोपाल जू कहकर संबोधित कर रही हैं। शिशु को बहलाने के लिए अथवा लोरी को लम्बा करने के लिए चकरी, भौंरा, अंटा गोली आदि खिलौनों का, कलेवा मांगने पर माखन, मिसरी, दूध, मलाई, मिठाई देने और सवारी के लिए हाथी, घोड़ा, ऊँट, पालकी, छकड़ा गाड़ी आदि का उल्लेख किया गया है। माँ अपने शिशु के समृद्ध और सुखी जीवन की कामना करते हुए लोरी गाती है।

तू झूल मोरे ललना, पलना में झूल
बाबा के अंगना में डरो है पलना
दादी लगावें पलना में फूल। तू झूल मोरे ललना......।।

उपर्युक्त लोरी का कथन बिल्कुल सादा हैं माँ शिशु को संबोधित कर रही है कि मेरा लल्ला पलने में झूलेगा। पलना बाबा के अंगना में स्थित है। दादी पलने में फूल लगाकर सुसज्जित करती है। लोरी को लम्बा करने के लिए फूफा, बुआ, काका, काकी, देवर, देवरानी, जिठानी, जेठ, ननद, ननदेऊ आदि सम्बन्धों का उल्लेख किया जाता है। इस प्रकार की लोरियों की एक परम्परा है। परिवार और समाज में सम्बन्धों की समरसता, एकता तथा सह संवेना को सुदृढ़ करने में इन लोरियों का भी महत्व है।

मेरो खेलैगो कुंवर कन्हाई झुंझना सोने की।
सोने को झुंझना बाबा लियाये
दादी लेत बलैंया-झुंझना सोने की।।.....

उपर्युक्त लोरी में शिशु के खेलने का उल्लेख किया जा रहा है। माँ शिशु को झूले में लेटाकर गाती है। मेरा पुत्र कन्हैया झुंझना-झुनझुना से खेलेगा। झुनझुना सोने का है। यह सोने का झुनझुना बाबा लाये हैं। दादी जी बलैंयां लेती हैं। ऐसे लोरी गीतों में आगे की पंक्तियों में जेठ-जिठानी, देवर-देवरानी, ननद-ननदेऊ आदि सम्बंधों का उल्लेख किया जाता है जिससे लोरी लम्बी हो जाती है और सगे-सम्बंधी अपने नाम का उल्लेख सुनकर प्रसन्न होते हैं

झुंझना दैदो लला के हाथ,
चांदी की झुंझना, सोने की झुंझना
झुंझना बजै दिन और रात।
सोने को झुंझना बाबा लै आये
दादी खिलावें दिन रात।।...

पूर्व प्रस्तुत लोरी जैसा ही कथ्य उपर्युक्त लोरी का भी है। केवल राग, ध्वनि, लय और संगीतात्मक स्वर में विभेद हैं

झूला में झूलेगो हमारो ललना
लीजो-लीजो सासू जी हमारो ललना
तुम्हें दादी कहैगो हमारो ललना
झूला में झूलैगो हमारो ललना
लीजो-लीजो जेठानी हमारो ललना
बड़ी अम्मा कहेगो हमारो ललना
झूला में झूलैगो हमारो ललना
लीजो-लीजो देवरानी हमारी ललना
तुमें काकी कहैगो हमारो ललना
झूला में झूलैगो हमारो ललना
लीजो-लीजो ननद जी हमारो ललना
तुमें बुआ कहैगो हमारो ललना

झूला में झूलैगो हमारो ललना
बाजें घुंघरू हंसैगो हमारो ललना
झूला में झूलैगो हमारो ललना

उपर्युक्त लोरी दादरा या ठुमरी जैसी लय में हैं माँ अपने शिशु को झूला में झुलाते हुए गा रही है। लोरी को लम्बा करने के लिए पारिवारिक सगे संबंधियों का उल्लेख किया गया है। सासू जी लल्ला को लेना ये आपसे दादी कहेगा, जिठानी जी लल्ला को लेना, यह आपसे बड़ी माँ कहेगा। इसी तरह देवरानी, ननद आदि के लिए कहा जा रहा है पर मुख्य विषय शिशु को पलने में लिटा कर झुलाते हुए सुलाना है।

सोजा सोजा वारे वीर
वीर की बलैंयां लैंहों जमना के तीर।

यह एक पारम्परिक लोरी है। देश के विभिन्न अंचलों में भाषा और बोली के लहजे में अंतर के साथ इसे गाया जाता है। इस लोरी ने कुछ आंचलिक लोकगीतों को भी जन्म दिया जो लोरी के रूप में अन्य प्रकार की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से लिखे गये हैं। दतिया के प्रसिद्ध हास्य कवि चतुर्भुज दीक्षित 'चतुरेश' द्वारा आज के छियालीस-सैंतालीस वर्ष पूर्व ऐसे ही कुछ लोकगीत बुन्देली में रचे गये हैं। एक टूटी-फूटी पंक्ति मुझे ससन्दर्भ याद आ रही है। सन् १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय कवियों ने इसी संदर्भ में रचनाएँ लिखीं थी। तब चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई थे। 'चतुरेश' ने लोरी की उपर्युक्त पंक्तियों की भाँति लोक लय का प्रयोग अपने उस बुन्देली गीत में किया है -

मेरी लाला लरबे जैहे
दुश्मन कें दो लातें दैहै। (चतुरेश, दतिया)
झूला देउ माई श्याम परे पलना।
काऊ गुजरिया की नजर लगी है सो रोउत है ललना।
राई नौन उतारौ जसोदा खुशी भये ललना।
काहे के तोरे बने पालना काहे के गंसना।
अगर चंदन के बने पालना रेशम के गंसना।
जो मोरे ललना कों पलना झुलावे दैहों जड़ाऊ कंकना।
सबरे बिरज की सखियाँ जुर गईं घाल लये री पलना।

उपर्युक्त लोरी 'कृष्णपरक' है। इसमें कृष्ण को प्रतीक मानकर माँ अपने शिशु की कुशल कामना करती हुई उसे पलने में झुलाने और सुलाने का प्रयास कर रही है। लोरी गीत में माँ को यशोदा का प्रतीक माना है और पूरी लोरी कृष्ण-यशोदा के संदर्भ में प्रस्तुत की गई है। यह लोरी पचास-साठ वर्ष पूर्व मैंने अपनी माँ से सुनी थी, जो झूला झुलाते समय मेरे छोटे भाई के लिए गातीं थी। गीत की लय, धुन सब वही पर एकाध शब्द भर का अंतर गाने वालों के द्वारा कर लिया जाता है क्योंकि लोरियां अधिकतर कंठस्थ रहीं हैं। उपर्युक्त गीत में 'झूला देउ माई' है जबकि मैंने 'झुलाओ माई' भी सुना हैं इसी तरह 'अगर-चंदन' शब्द परिमार्जित है। इसके स्थान पर 'अनन-चनन' तथा 'अगर-चनन' शब्द युक्त गीत भी मैंने सुना है किन्तु उपर्युक्त लोरी गीत सर्वशुद्ध है। बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त अन्य अंचलों में भी आंचलिक बोली के लहजे के साथ वह लोरी प्रचलित है।

आधुनिक युग दूरदर्शन वाला युग है। नई सभ्यता, नई जीवन शैली है। अब झूलों और पलनों का स्वरूप बदलता जा रहा है। आज की माँ अपने शिशुओं को लोरी गाकर नहीं सुलातीं। फिर भी जहाँ बड़ी-बूढ़ियाँ घर में हैं वहाँ अब भी लोरी के अंश सुनने को मिल जाएंगे। आधुनिक जीवन इतना व्यस्त, त्रस्त और तनावग्रस्त है कि लोरी जैसे कोमल गीतों को गाने की मानसिकता ही सुरक्षित नहीं रह पाई।

- अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा, जिला दतिया

चर्चा चुनाव की

- नीरज कुमार खरे

होन लगी चरचा, अथाई पै चुनाव की।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

दद्दा जा कै रये कै लड़ुवा बनवाऔ।
बुड़की कौ मौका है, दाव जौ अजमाऔ।
सोसौ न तनकउ तुम गुड़-शक्कर भाव की।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

गुमटी में साव डांड़ी संग मन तौल रये।
दरजी सींअत झंडा, गाँठ मन की खोल रये।
मुखिया खों चिंता पूरी मूंछन के ताव की।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

ठलुवा कै रये कमरा, दारू बटवाऔ।
न मानत हो कौनउ तौ हमखों बताऔ।
भीमसेनी लट्ठ डारे वोट तोरे नाव की।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

वोटर हैरान है के की खां जिताबें।
नागराज भैया जी, दाऊ हैं दबाबें।
गाँव भर में फैली है गर्मी अलाब सी।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

सपनन में सबै जीप रुतबा दिखा रओ।
चुनाव बाप-बेटा खौं, सामूं लरवा रओ।
हालत जा हो गई है, आज सबई गाँव की।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

होन लगी चर्चा, अथाई पे चुनाव की।
कोउ कै रओ काउ की, कोउ कै रओ काउ की।

- शास. उत्कृष्ट उ.मा.वि., बल्देवगढ़
जिला टीकमगढ़

बुन्देली की शब्द सम्पदा

- डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

उत्तर भारत की समस्त आधुनिक आर्य भाषायें उस बहुरंगी पुष्पमाला के समान हैं, जो प्राकृतों और अपभ्रंशों के माध्यम से आयी वैदिक भाषा छंदस तथा परिनिष्ठित भाषा संस्कृत के बटे हुए अन्तःसूत्र में पिरोई हुई है। समस्त आधुनिक आर्य लोक-भाषाओं की शब्दावली का प्रमुख स्त्रोत तो वैदिक भाषा ही है, जो कई सोपानों को पार करती हुई उन्हें प्राप्त हुई है।

प्रथम सोपान वैदिक भाषा का वह लौकिक रूप है जो वाणी-व्यवहार में चलता रहा होगा। इसमें वैदिक भाषा से इतनी ही भिन्नता रही होगी, जितनी मुखसुख तथा अन्य समाजैतिहासिक कारणों से साहित्यिक भाषा और लोक भाषा में होता है। इसे भाषा वैज्ञानिकों ने प्रथम प्राकृत नाम दिया है। भाषा में विकास क्रम निरन्तर चलता रहता है। ऋग्वेद से अथर्ववेद तक आते-आते भाषा में अन्तर आ गया था।

द्वितीय सोपान है - दूसरी प्राकृत। इसमें कुछ क्षेत्रीय रूप महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी आदि सात-आठ रूप विकसित हो गये थे। कुछ विद्वानों ने छोटे-मोटे अन्तरों को लेकर सत्ताइस रूप मान लिए थे, परन्तु आचार्य वररुचि ने अपने प्राकृत प्रकाश ग्रंथ से महाराष्ट्री प्राकृत का विशद विवेचन करते हुए सबकी मूल प्रकृति लगभग एक ही निरूपित की है।

तृतीय सोपान है - तीसरी प्राकृत या अपभ्रंश। इसके कुछ और अधिक क्षेत्रीय रूप विकसित हो गये थे। बाद के दिनों में उसके कुछ क्षेत्रीय रूपों ने साहित्यिक भाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया था, और उन्हें संस्कृत और प्राकृत की तुलना में अधिक मधुर माना जा रहा था, जो विद्यापति के इस कथन से स्पष्ट है कि "देसिल बयना सब जन मिट्ठा, ते तैसन जंपओं अबहट्ठा।"

अपभ्रंशों के द्वारा वैदिक भाषा का घिसा-पिटा या विकसित शब्द भण्डार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को प्राप्त हुआ है।

बुन्देली को भी शौरसैनी प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से वैदिक भाषा की सहज विकसित शब्द सम्पदा विरासत के रूप में प्राप्त हुई है और समय-समय पर समाजैतिहासिक प्रभाव भी बुन्देली पर पड़ता रहा है। एक ओर भाषा विकास की यह स्वाभाविक प्रक्रिया चल रही थी, तो दूसरी ओर पाँचवीं शताब्दी ई. पूर्व वैदिक भाषा को अधिक विकसित होते हुए देख महर्षि पाणिनि ने उसके लौकिक रूप को परिमार्जित करके उसे विकास क्रम से हटाकर उसके स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करने के लिए 'अष्टाध्यायी' की रचना की और उसे व्याकरण के सूत्रों में बाँध दिया। इसी परिमार्जन और परिनिष्ठीकरण के कारण वैदिक भाषा के इस पुष्ट व्याकरणबद्ध रूप का नाम संस्कार की हुई भाषा अर्थात् संस्कृत पड़ा। समीचीनता और व्यावहारिकता की दृष्टि से महर्षि पतंजलि ने अपने महान ग्रंथ 'महाभाष्य' और कात्यायन ने 'प्रमाण वार्तिक' में इसका और अधिक परिमार्जन किया। यह साहित्यिक भाषा के रूप में पण्डितों में सर्वमान्य होकर प्रतिष्ठित हो गई। अतएव उच्च कोटि के साहित्य और शास्त्रीय विषयों की रचना का माध्यम अपभ्रंश काल तक तथा अंशतः हिन्दी के उद्भव से लेकर आज तक संस्कृत का रचना के क्षेत्र में प्रयोग हो रहा है।

एक ओर वैदिक भाषा की शब्दावली अपने स्वाभाविक प्रवाह या विकास क्रम में प्राकृत और अपभ्रंशों को पार करती हुई मध्यप्रदेश की बोलियों सहित आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई। इस अन्तःसूत्र के, मध्य देश की सभी बोलियों में विद्यमान रहते हुये भी ध्वनि, रूप, अर्थ प्राणत्व के अपसरण और तान (TONE) सम्बन्धी कुछ बोलीगत विभिन्नताएं उत्पन्न हो गई हैं। इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर बुन्देली, बघेली, अवधी, बृज, कन्नौजी आदि नाम पड़ गये। ये बोलियाँ लोक के वाणी व्यवहार के वर्तमान काल में प्रचलित हैं।

दूसरी ओर साहित्य, कर्मकाण्ड, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि के अतिरिक्त जीवन को सुसंस्कृत किये जाने वाले षोड़स संस्कारों की भाषा संस्कृत ही रही है। इस कारण जन साध ारण से इसका सदैव परिचय एवं निकट सम्पर्क बना रहा है। धार्मिक कृत्यों, कर्मकाण्ड तथा संस्कारों से सामान्य जन में, कम से कम समाज के उच्च वर्गों में तो समय-समय पर उसकी उच्च शब्दावली का परिनिष्ठित रूप सुनाई पड़ता ही रहा है। पूर्व काल में शास्त्रीय शिक्षा का माध्यम ही संस्कृत होने के कारण उच्च वर्गों में न्यूनाधिक संस्कृत शब्दों का व्यवहार होता रहा है। ऐसे शब्दों में कम विकास हुआ क्योंकि समय-समय पर उनके परिनिष्ठित रूपों का परिचय लोगों को मिलता रहा है। इस शब्दावली में एक ओर विकास की सहज प्रक्रिया का बल लगता रहा तो दूसरी ओर परिनिष्ठित प्रयोगों की बारम्बारता का बल, उनके रूपों को सुरक्षित रखने की दिशा में लगता रहा। इस कारण इस माध्यम से बोलियों में आगत संस्कृत शब्दावली की ध्वनियों में अधिक विकास नहीं हुआ है।

इस विकास क्रम में कठिन और दो-तीन से अधिक ध्वनियों वाले शब्दों में अधिक अन्तर आ गया है। जैसे मातृस्वसा से मोंसी, पितृस्वसा से फुआ, अनध्याय से अंझा या अंजा, मत्सेन्द्रनाथ से मछन्दर नाथ। छोटे शब्द अधिकांश तत्सम ही बने रहे जैसे जल, फल, मन, पाप, धूप, जन, लीन, मूल, बोध, अंत, आशा, कन्या, इच्छा, कला, कोप, काल, गदा, हट, जाप, चित्त, चिंता, चिता, तप, ताप, तुष, देश, धन, दीप, धूप, नाश, पानी, पूजा, महां, मान, माता, पिता, माला, मूल, रस, लीला, वर्ष, वन, वास (गंध), वास (रहना), सेवा, स्वाहा, माया, अमर, कलंक, सूतक, तुषार, रचना, ममता, धनुष, विकट, अनाथ अन्तस, चन्दन, तर्पण, कुण्डल, महान, हवन, कुसर (ल), कपट आदि। इस तरह के मैंने लगभग छः दर्जन शब्द छाँटे हैं। उपर्युक्त उदाहरणों

में सामान्य बुन्देली भाषियों की ध्वनि प्रवृत्ति के अनुसार तालव्य और मूर्धन्य श, ष के स्थान पर दन्त स तथा व के लिए ब का प्रयोग होता है। शिक्षित लोगों में इन प्रवृत्तियों के विपरीत तत्सम् ध्वनियों का प्रयोग भी पाया जाता है।

धातुएँ भी पर्याप्त संख्या में ऐसी हैं, जो बुन्देली शब्दों में अपने तत्सम रूप में उपलब्ध हैं। लक्षणा, व्यंजना आदि के आधार पर कहीं-कहीं इनके अर्थ और ध्वनियों में किंचित विकास भी हो गया है और उनसे निर्मित शब्दों में किंचित ध्वनि परिवर्तन भी हो गया है।

मैंने मोरेश्वर रामचंद्र कृत हायर संस्कृत ग्रामर के धातु पाठ से पंचानबे ऐसी धातुओं का चयन किया है जैसे अम्, अक्ष्, उठ, ऊन, ऋच्छ, कच, किल, कल, कील, कुच, कूड़, खट्ट, खण्ड, खन, खेल, गर्ज, गल, गुण, गुप, गुफ, गे, घण्ट, घ्रू, चण्ड, चर्च (निन्दा करना), चर्च (संदेह करना), हन्, खल्, गर्व, घुट, गु, गुंज, चल, चित, चिंत, चिल, चुर, चेष्ट, छिद, छो, जंज, जट, जन, जप जूट, झूल, तन (फैलाना), तन् (विश्वास करना), तप, तर्क, तर्ज, तिल, तुल, तल, सूर, तेज, तृप (तृप्त होना), तृप (प्रसन्न होना), रिग, मग, मिश, दम, दय, दुःख, सव, रिच, रै, लग, लंग, लच्छ, लज, लप, लल, लिख, लिप, लुभ, विध, बीज वीर, सिच, हंस, हिल आदि।

विस्तार भय से उपर्युक्त सभी धातुओं से निर्मित बुन्देली शब्दों के उदाहरण और उनके अर्थ विकास तथा विश्लेषण को प्रस्तुत करना यहां सम्भव नहीं है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

अम् - रोग उत्पन्न होना - बुन्देली प्रयोग - आमबौ - चोट लगने के कुछ घण्टे बाद उसमें सूजन तथा पीड़ा होती है तब यह कहा जाता है कि 'चोट आम गई'।

उठ् - नष्ट होना - बुन्देली प्रयोग - उठ गये - मर गये, वस्तुओं के अर्थ में समाप्त होना।

कील - बांधना - बुन्देली प्रयोग - कीलबौ - प्रेतों या सर्पों को मंत्रबद्ध करना।

मिश - हल्ला करना, क्रोध करना - बुन्देली प्रयोग - मिसमिसाबौ - क्रोध में दांत पीसना।

हन् - मारना, अड़ाना - बुन्देली में इन्हीं दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है।

आचार्य दुर्गा चरण शुक्ल ने अपने एक लेख 'सिंहासन से उतारे राजकुमार' (बुन्देली भाषा वैज्ञानिक अध्ययन) में कात्सकृत्स्न, क्षीर स्वामी तथा चन्न वीर के धातु पाठों के आधार पर पच्चीस-तीस धातुओं का उल्लेख किया है, जो आज भी बुन्देली के यथा रूप प्रचलित हैं। इन्हें वे संस्कृत की मूल धातुयें मानते हैं जैसे खट्ट, सण्डा, पक्क, घर, जुंग, खोट, भाव (वस्तु का मौद्रिक मूल्य), तुर्त, मच्छ, गार (ईंटें खापरे बर्तन आदि के लिए तैयार की गई मिट्टी की खांची), गार-गारबौ (क्रि.) - पानी डालकर चंदन आदि घिसना, जनी, चील, खल्ल, चपू, बी, चुटपुट, धीड़, गू, हूरछा, तुज आदि।

ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनी के काल से ही मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में पृथक रूप ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया था। उपर्युक्त धातुयें प्रथम प्राकृत के उत्तर काल की होंगी। भाषाओं को विकसित होते-होते और अपनी पहचान बनाने में सौ दो सौ वर्ष तो लग ही जाते हैं। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि कात्सकृत्स्न व्याकरण ऐंद्र सम्प्रदाय का व्याकरण है। ऐंद्र वैयाकरण लोक भाषा के वैयाकरण थे। संस्कार युक्तभाषा अर्थात् संस्कृत के वैयाकरण माहेश्वर सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ भी हो परिनिष्ठित भाषा संस्कृत की न सही लौकिक आर्य भाषा की ही सही बुन्देली में आज भी अपनी ध्वनि और अर्थ के साथ धातुयें विद्यमान हैं। इस प्रकार भाषा के सहज प्रवाह से प्राप्त तथा संस्कृत से प्राप्त दोनों प्रकार की शब्दावली बुन्देली को विरासत के रूप में प्राप्त हुई। इसके साथ ही सामाजिक और ऐतिहासिक कारणों से भी विदेशी शब्दावली प्राप्त होती रही। उदाहरणार्थ दिल्ली के शासकों का दक्षिण विजय का मार्ग बुन्देली के पश्चिमी क्षेत्र में होकर रहा है। इस कारण वहाँ की बोली में अरबी, फारसी, तुर्की का उर्दू के माध्यम से तथा दिल्ली, मेरठ के आसपास की कौरवी अर्थात् खड़ी बोली आदि का समावेश होता रहा। इस कारण पश्चिमी बुन्देली जो कि सम्पूर्ण बुन्देली का लगभग एक तिहाई भाग है। उसमें तथा पूर्वी भाग में कुछ बोलीगत अंतर आ गया है, जिससे कुछ विद्वानों मे इस क्षेत्र की बोली से खड़ी बोली का भ्रम होने लगा है।

बुन्देली भाषी क्षेत्र कई अन्य बोलियों से घिरा होने के कारण भी बुन्देली शब्द समूह अंशतः प्रभावित हुआ है। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति तथा देश में अंग्रेजी राज्य हो जाने पर बुन्देली में अंग्रेजी के भी बहुत से शब्दों का प्रचलन हो गया है। इस कारणों के अतिरिक्त बुन्देली क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार है कि उसका सम्पूर्ण क्षेत्र नदी, नालों, जंगलों और पहाड़ों आदि प्राकृतिक अवरोधों से भरा हुआ है। इस कारण इसके कुछ क्षेत्रीय रूप विकसित हो गये हैं। जैसे लुधांती, बनाफरी, खटोला, पँवारी, भदौरी आदि। लेकिन बुन्देली की सभी उपबोलियों की सामान्यतः प्रकृति एक ही है। बुन्देली के लोक साहित्य की सभी विधाओं में बुन्देली शब्द भण्डार पर्याप्त मात्रा में आज भी प्रचलित हैं।

अन्य भाषाओं एवं बोलियों के बुन्देली में आगत शब्दों का संक्षेप में वर्गीकृत विवरण निम्नानुसार है - संस्कृत से बुन्देली में आगत शब्दों का विवेचन ऊपर किया जा चुका है। बुन्देली शब्द भण्डार में आगत अन्य भाषाओं और बोलियों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है - १. फारसी तथा अन्य विदेशी अरबी, तुर्की आदि तत्सम्, २. फारसी तथा अन्य विदेशी तुर्की, अरबी आदि तद्भव, ३. क्षेत्रीय भाषायें, ४. वर्गीय बोलियों के शब्द, ५. ध्वन्यात्मक तथा अनुरणात्मक शब्द, ६. डच, पुर्तगीस, फ्रेंच के शब्द, ७. अंग्रेजी।

१. फारसी तथा अन्य विदेशी अरबी, तुर्की आदि - तत्सम - बुन्देली में प्रशासन सम्बन्धी अधिकांश शब्द फारसी के प्रयोग होते रहे हैं। अंग्रेजी राज्य में भी फारसी के ही प्रशासनिक शब्द चलते रहे, किन्तु कुछ अंग्रेजी शब्द भी व्यवहार में आने लगे थे।

२. फारसी तथा अन्य विदेशी तुर्की, अरबी आदि - तद्भव - फारसी तथा उसी के माध्यम से अरबी आदि के शब्द आये और बुन्देली ने भी अपनी प्रकृति के अनुकूल करउनको ग्रहण कर लिया। इस प्रक्रिया में लगभग सभी शब्द तद्भव हो गये हैं, सभी में कुछ न कुछ परिवर्तन हो गया है, चाहे वह शीन काफ का हो अन्तर क्यों न हो जैसे किताब शब्द तत्सम् लगता है किन्तु 'क' के कण्ठ उच्चारण का नुक्ता तो उड़ ही गया है।

तद्भव होने के साथ अधिकांश विदेशी शब्दों का अर्थ परिवर्तन भी हो गया है। उदाहरणार्थ -

कौर्निश - झुककर विशेष ढंग से आदाब करना से विकसित शब्द कुन्नस का अर्थ हर प्रकार से हीन होकर प्रार्थना करना और गिड़गिड़ाना हो गया है।

मुल्क (देश) > मुलक = देश, बहुत, तमाम

ग़म (दुःख)>गम्म = शान्ति धारण करना, क्रोध को वश में करना।

हैरान (आश्चर्यचकित) > हैरान = परेशान

बुनियाद (नीव) > मुन्नयात = सम्पत्ति, धन दौलत

मंजिल (लक्ष्य) > मज़ल = यात्रा सम्बन्धी दूरी, थकाने वाली दूरी।

राजनैतिक वर्चस्व तथा मुसलमानों के पूरे क्षेत्र में फैलकर बस जाने के कारण भाषा का आदान-प्रदान होता रहा। उन्होंने बुन्देली को अपनी भाषा के रूप में ग्रहण कर लिया तथा बुन्देली ने उनके बुत से शब्दों को अपनी प्रकृति के अनुसार ढालकर अंगीकार कर आत्मसात कर लिया। ऐसे शब्द न केवल बुन्देली व्याकरण से अनुशासित होते हैं, बल्कि बुन्देली प्रकृति के अनुसार उनकी ध्वनि और अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है।

प्रशासनिक शब्द जो प्रशासन की सीमा से बाहर नहीं निकल सके, वे प्रशासन के साथ ही समाप्त हो गये। जो इस सीमा से बाहर निकल सके वे जहां जिस रूप एवं अर्थ में खप सके, खप गये।

मुस्लिम संघात से जन व्यवहार का शब्द भण्डार भी काफी प्रभावित हुआ है। कुछ उर्दू फारसी शब्दों का यह सांस्कृतिक आक्रमण इतना प्रबल था कि उन्होंने बुन्देली के अपने शब्दों को उखाड़ कर फेंक दिया और उनके स्थान पर स्वयं जम गये। उदाहरण -

मातहत>मातैत - अधीनस्थ जैसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं होता।

दिमाग >दिमाक - मस्तिष्क जैसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं होता।

मजदूर > मजूर - श्रमिक जैसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं होता।

मेहनत>मैन्त, मेहनत -श्रम, परिश्रम और व्यायाम का प्रयोग नहीं होता।

गरीब > निर्धन - जैसे किसी शब्द का प्रयोग नहीं होता।

इस प्रकार के सैकड़ों प्रयोग फारसी आदि के कुछ शब्द बुन्देली में अपना पूर्ण अधिकार स्थापित नहीं कर सके, किन्तु बुन्देली शब्दों के साथ ही व्यवहृत होने लगे। उदाहरण -

खुशामद > खुसामद के साथ ही **सेवा सुश्रुखा** भी पाया जाता है।

महकता > माकात के साथ ही **बसात** भी पाया जाता है।

वक्त > वखत के साथ ही समय भी पाया जाता है।

होशियार > हुसयार के साथ ही **चतुर, बड़ा** भी पाया जाता है।

दवा > दबाई के साथ ही **ओखद** भी पाया जाता है।

मुलायम>मुलाम के साथ ही **कोमर, कोमल, कोंरौ** भी पाया जाता है।

सयान > सियानों के साथ ही **चतुर, बड़ा** भी पाया जाता है।

२. अरबी तुर्की के शब्द उर्दू के माध्यम से ही बुन्देली में आये हैं।

३. क्षेत्रीय भाषाओं से लबैया, खुरिया, बठिया, बर्हेड़ौ, दुरवा आदि आये हैं। कुछ कहावतें बुन्देली में ऐसी आ गई हैं कि जिनमें बघेली के शब्द हैं किन्तु वही वे एकान्तिक रूप से रूढ़ हैं। उनका प्रयोग बोलचाल में नहीं पाया जाता, जैसे एक कहावत है "मरै न माचौ देय"। इस कहावत में माचा (पलंग) शब्द का प्रयोग हुआ है, जो बघेली का है और बुन्देली प्रवृत्ति के अनुसार ओकारात्मक हो गया है। दूसरी कहावत है - पांय जब मुटरयायें मुटरयायें (पोटली बांधना) शब्द बघेली का है।

४. वर्गीय बोलियों के शब्द - इस वर्ग में कृषि तथा अन्य उद्योग धन्धों से सम्बन्धित शब्दावली है। इन शब्दों पर यहाँ विचार नहीं किया जा रहा है, किन्तु जो सामान्य जन-जीवन के साथ रहते हुये भी कुछ अपनी विशिष्ट भाषाई पहचान बनाये रहते हैं उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। जैसे जैनियों में निम्न शब्दावली प्रचलित है जिसका अन्य सामान्य प्रयोग नहीं करते जैसे -

तेउन - संग (रोटी के साथ खाने के लिए दाल आदि)

पंजारबौ - जलाना (केवल दीपावली के दीपक जलाना)

बिनैकाबार या बिनैकया - अकुलीन जैन

गनाउनौ - शादी में वधू को आभूषण चढ़ाना (चड़ाव)

दाजिनी - बारात में आने वाली स्त्रियाँ जो दहेज ग्रहण करती हैं।

बबरा - चीला

थरा - थाली

बिंयां - सिवैंया

मोंदरा - भोजन करते समय थाली रखने की मूढ़ा

इकात - उपवास

अनथऊ - संध्याकालीन भोजन

पड़गाबौ - जैन मुनियों से अपने घर भोजन करने के आग्रह की विशेष रीति।

साव जू - समधी, सान जू - समधिन

भऊआ - बहिनोई

उपर्युक्त शब्दों में कुछ ही शब्द विशिष्ट हैं। सावजू, सानजू तथा भऊआ शब्दों का प्रयोग कुछ वैश्यों में भी चलने लगा है। बुन्देला क्षत्रियों तथा उनसे सम्बन्धित अन्य लोगों (नौकर-चाकर आदि) में कुछ विशिष्ट लक्षणामूलक शब्दों का प्रयोग होता है। क्रियाओं का भी कुछ विशिष्ट ढंग से प्रयोग होता है, उनमें कुछ इस प्रकार के प्रयोग होते हैं जैसे क्रियायें स्वतः सम्पन्न हो रही हों। आज्ञावाची प्रयोग न के बराबर ही होते हैं जैसे -

असास हो रये - (सो रहे हैं) - सुख हो रहे हैं, भी चलता है।

धोतीं फट रईं - स्नान हो रहे हैं, भी चलता है।

महल हैं - राजा रानी के पास हैं।

फाजू साब (बुआ), मानजू (मामी), बायजू (ननद) आदि। क्रियाओं के प्रयोग कुछ इस प्रकार होते हैं जैसे भोजन करने के लिए भोजन कर लीजिए की बजाय भोजन हो जायें, चलने के लिए चलबौ होए आदि प्रयोग चलते हैं। यह बुन्देली का शिष्टतम रूप है।

इसी प्रकार शिशु वर्ग के लिए भी कुछ विशिष्ट प्रयोग सीमित हैं और वे इस प्रकार रूढ़ हो गये हैं कि बच्चे बच्चों से तथा बड़े लोग बच्चों से ही प्रयोग करते हैं बड़े बड़ों से उनका प्रयोग कभी नहीं करते हैं। जैसे -

चूं चूं	-	चिड़िया
म्याउं	-	बिल्ली
मन्नी	-	बछिया
हतुलियां	-	हाथ
दुद्दू	-	दूध
पप्पा	-	पानी
ती ती	-	मुर्गी
तत्ता	-	गरम
चैया	-	रोटी, पूड़ी
पैंयां	-	पांव
मुइयां	-	मुँह
अख्खू	-	आँखें आदि।

५. ध्वन्यात्मक तथा अनुरणात्मक शब्द - इस प्रकार के शब्दों का बुन्देली में अधिक प्रयोग होता है। जब एकदम आत्मीय एवं स्वाभाविक स्तर पर बोलचाल में भाव प्रवणता बढ़ती जाती है तब इस वर्ग के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग भी बढ़ता जाता है। ऐसी स्थिति में भाव को मूर्त करने में लगभग प्रत्येक क्रिया के साथ एक न एक ध्वन्यात्मक या अनुरणात्मक शब्दों का प्रयोग भी बढ़ता जाता है।

ध्वन्यात्मक शब्द - चटाक, फटाक, धड़ाम, चर्र-फर्र, आदि।

अनुरणात्मक शब्द (Jingles) - टनटनाबौ, घनघनाबौ, भनभनाबौ, सनसनाबौ आदि।

अनुकारी शब्द (Onometopoetico) - इन शब्दों को भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है, क्योंकि इससे भी अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता उत्पन्न होती है। उदाहरण - "बिजलिन की झिलर-मिलर से दिवारी सी लग रईती।।"

६. डच, पुर्तगीस, फ्रेंच के शब्द - ये शब्द भारत में अंग्रेजी से पहले प्रचलन में आ गये थे, और वे भारतीय भाषाओं और बोलियों में इस तरह रच-बस गये कि उन्हें अंग्रेजी की तुलना में लोग अपना ही समझने लगे हैं और उनका प्रयोग बुन्देली की ध्वनि प्रवृत्तियों और व्याकरण के अनुसार होता है।

पुर्तगीस तथा डच शब्द - अलमारी, अचार, इस्पात, कनस्तर (कंसरा), कमरा, काज, गमला, गिरजा, गोभी, तौलिया, लीलाम (नीलामी), परांत, पिस्तौल, पीपा, बाल्टी, मेज, सितार, बोतल।

फ्रेंच - कारतूस, कूपन, अंग्रेजी, डच, तुरुप

७. अंग्रेजी - भारत में अंग्रेजों के आने के बाद प्रशासनिक औद्योगिक, व्यापारिक तथा शिक्षा सम्बन्धी विपुल शब्दावली बुन्देली में आ गई है और ज्यों-ज्यों इन सभी क्षेत्रों में प्रगति होती गई और नवीन आविष्कार होते गये त्यों-त्यों यह शब्दावली बढ़ती ही गई। अंग्रेजी शब्दावली जितनी बुन्देली में घुसी है लगभग उतनी ही देश की अन्य भाषाओं और बोलियों में भी प्रचलित है अतः उसके उदाहरण देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इनका अनुभव हमारे दैनंदिन जीवन से जुड़ा है।

बुन्देली की एक और विशेष प्रवृत्ति यह है कि इसमें 'कृदन्त' और 'तद्धित' शब्द किसी भी भाषा के शब्दों से बना लिए जाते हैं। जैसे -

कृदन्त - काड़ना क्रिया से कड़वारौ, चुकाना से चुकावरौ, देना से दैनौ, लेना से लैनौ, उड़ना से उड़उअल, निपटना से निपटउअल, मिटना से मिटउअल आदि।

तद्धित - कच्चा से कचाँद, कचाँयदौ, हरा से हरवाँद, हरवाँयदौ, डड़ाँद से डड़ाँयदौ, छूत से छुआयँदौ, मौत से मौताँयदौ आदि।

बुन्देली की शब्द सम्पदा विपुल मात्रा में है। बुन्देली में लोक साहित्य अपनी सभी विधाओं में पर्याप्त शब्दावली समेटे हुए है, लेकिन खेद की बात यह है कि शिक्षा के प्रसार, यातायात के बढ़ते साधन, व्यक्तिगत हीन भावना तथा फैशन परस्ती, जीवन शैली में परिवर्तन आदि के कारण बुन्देली की शब्द सम्पदा का तेजी से ह्रास ऐसे हो रहा है और उसके कारण सूक्ष्म अभिव्यक्ति की क्षमता का ह्रास हो रहा है।

उपर्युक्त कारणों से तेजी से लुप्त होती हुई बुन्देली शब्दावली से आसन्न खतरा यह है कि बुन्देली अपनी पारम्परिक शब्द सम्पदा से इस तरह न कट जाये कि उसके प्राचीन साहित्य को समझना ही दुरूह हो जाये। महाकवि केशव के काव्य में प्रयुक्त बुंदेली शब्दों और मुहावरों को सही अर्थ में न समझने के कारण अनेक विद्वानों द्वारा की जाने पर भी केशव काव्य की ठीक से टीका नहीं हो सकी है। उदाहरणार्थ -

"चोली के से पान तेहिं करत समारबोई
मुकुट ज्यों तोही मांह मूरति समानी है।'

उपर्युक्त पंक्तियों में 'चोली के से पान' बुंदेली मुहावरे का अर्थ ठीक न समझ पाने के कारण हिन्दी के एक शीर्ष विद्वान ने चोली का अर्थ कंचुकी बताया था। यदि वे इन पंक्तियों का पूरा अर्थ करते तो 'पान' शब्द की न जाने क्या गति करते। इसी तरह एक विद्वान ने लेरुआ (सद्य प्रसत बछड़ा या बछिया) का अर्थ को न समझकर छंद के अर्थ में इस शब्द का अर्थ ही गोल कर दिया है। महाकवि केशव को कठिन काव्य का प्रेत बनाने में केशव के काव्य में प्रयुक्त बुन्देली के शब्दों को न समझ कर टीका करने वालों का भी बहुत बड़ा हाथ है।

अतः इस स्थिति से बचने के लिए बुंदेली शब्दकोष की आवश्यकता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। बुन्देली शब्द सम्पदा को सुरक्षित करने के लिए इन पंक्तियों के लेखक ने सर्व प्रथम अपने सीमित साधनों से, बीस वर्ष परिश्रम करके बुंदेली शब्दकोष का निर्माण किया है। जो सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के बुंदेली पीठ की वार्षिक पत्रिका 'ईसुरी' में सन् ८७-८८ से धारावाहिक

रूप में प्रकाशित होता रहा था। सन् ६१-६२ तक 'म' के शब्द प्रकाशित हो चुके थे। इसके बाद ईसुरी का प्रकाशन बंद हो गया। सन् १६६८ में बुन्देली शब्दकोष प्रकाशित हो चुका था। 'बुन्देली कोष निर्माण, समस्यायें और समाधान' शीर्षक एक आलेख मैंने केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा में २२ मार्च २००७ को पढ़ा था। वहाँ लोक भाषा शब्द कोश का निर्माण कार्य चल रहा है।

बुंदेली भाषा के अतिरिक्त बुन्देली लोक साहित्य के संरक्षण की दिशा में भी मैंने 'बुन्देली लोक साहित्य में लोकोक्तियाँ और मुहावरे' के रूप में बुन्देली लोकोक्ति एवं मुहावरा कोष तैयार किया है, तथा उसमें भी प्रयुक्त बुन्देली शब्दकोष दिया है। यह पुस्तक भी प्रकाशित है।

बुन्देली की शब्द सम्पदा और लोक साहित्य के संरक्षण की दिशा में अभी भी तथ्यपरक और ठोस कार्य किये जाने की अत्यंत आवश्यकता है। शीघ्रता भी अपेक्षित है क्योंकि इस कार्य को करने के लिए सक्षम विद्वान लगभग साठोत्तरी वय के हैं।

संदर्भ ग्रंथ -

१. बुन्देली की शब्द सम्पदा : स्त्रोत एवं सामर्थ्य - डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी का पी.एच.डी. उपाधि हेतु स्वीकृत (अप्रकाशित) शोध प्रबन्ध, सन् १६८०, सर डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि. सागर म.प्र.

२. बुन्देली शब्दकोश - डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी, प्रकाशक - ३०, पुराना आल्हापुर, इलाहाबाद

३. बुन्देलखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति - प्रकाशक, आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल

४. बुन्देली : एक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पृ. ५५-६७, दुर्गा चरण शुक्ल, कैलाश बिहारी द्विवेदी, प्रकाशक - कला परिषद टीकमगढ़ म.प्र., सन् १६७६

५. बुन्देली की विलुप्त होती शब्दावली - डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी की १५-०-०८ को आकाशवाणी छतरपुर म.प्र. से प्रसारित वार्ता।

- पुरानी नजाई, टीकमगढ़

तीखे बोल बुन्देली के

- गोविन्द रघुवंशी

१. भ्रष्टाचार

कोई काउ की कही सुनेना, ना कोउ काउ खां माने
का कोउ से कांनें बैठे रओ चिमाने,
दफ्तर ऐसे लग रये, जैसें रिश्वत की खुली दुकानें
चोरन खां घर जैसे हो रये, कुतवाल ओ थाने,
साची कैहो डन्डा खैहो, लग जैहें होस ठिकाने
जैसे बने सो समय काटलो, एई बनो नइ रानें

२. पढ़े लिखे नामके

पढ़े लिखे से तो अच्छे हैं, सीधे सादे गाव गवइयाँ
सीधी गिनती गिन के जानत, इनने पढ़े पहाड़े नइया,
नातो नेह सबइ से मानत, अपनो जैसो सबखा जानत
महनत करके पेट चलाउत, घर कोउ को लूटत नइया
अपने हाथ ऊँचाई अपनी, अपने हाथ निचाई है
ऊचाई निचाई नाप वे की, बस मानत हात इकाई हैं।
अपने हातन सबइ एक से, छोटो बड़ो कोउ है नइया
पढ़े लिखे से तो अच्छे हैं, सीधे साधे गाव गवइयां।

३. महंगाई

मंहगाई दिन दूनी बढ़ रइ, मार के मारें हम तुम मर रये
बनिया चाकर हाल सुखी है, मंहगाई की मार बढ़ा रये
जिनके कोनउ धंधा नइआ, ऊँसें पूछो कैसे जी रये?
दालें आसमान खां छू रइ, नमक के संगें रोटी खा रये।

- राम मंदिर के पास, पन्ना

अहाने

- अजीत श्रीवास्तव

एक गुलई तेली हतो, ऊसें सबरौ गाँव ई बात पै हैरान रत तो। कै कोई कितनऊँ अच्छौ ऊ के लाने करै, वौ ऊमें कछु न कछु बींग (कमी) काड़इ देत तो, चायें तेरईं, न्यौतो होय, चाय ब्याव-बरात होय, भण्डारौ होय।

सो गांव वारन नै एक दिना लक्ष्मी जू सैं विनती करी कि "हे देवी माता, एक दिना गुलई तेली खौं अपुन तौ न्योत लो, अपुन नौ कौनऊ कमी नइयाँ, फिर देखत, वौ का कत?"

लक्ष्मी जू ने तेली खों न्योत दओ, पूरी पंगत निपट गई, ऊनैं कौनऊँ कमी नईं ढूंढ़ पाई। पै जाती बेरा लक्ष्मी जू नै पूंछी - "काय हो जिन्स में कौनऊँ कमी तौ नईं रई" गुलई बोलो - "अब जेई कमी हती, कि जियादा अच्छौ सोई अच्छौ नई होत।"

□□□

बरात में बराती गये औ उतै पंगत की परस में इतनौ टेम लगो कि सबरे भूखन के मारे हैरान हो गये, तबई एक बराती कन लगो "काहो टिरऊआ नई आओ, भूखन मरे जा रये।"

दूसरे बराती नै कई "हमाओ तौ टिरउआ आ.. .आरओ।" सबने चकित हो पूछौ "का हो तुमाऔ टिरऊआ कां सें आ..आ रओ?" सो ऊने कई "बिटिया वारन के इतै सें नईं आ रऔ, ऊपर वारे कै इतै सें आ टिरऊआ (बुलौवा) आर औ हमाऔ।"

- राजीव सदन, नायक मुहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली भाषा साहित्य और प्राकृत

- महाकवि अवधेश

साहित्य और शौर्य की दृष्टि से ही नहीं वरन सौन्दर्य की दृष्टि से भी बुन्देलखण्ड की महिमा सर्वोपरि रही है। यहाँ सतयुग, त्रेता, द्वापर की कथाओं के स्मारक सब से अधिक पाए जाते हैं। सनक सनन्दन सनतकुमार सनकुआ स्योंढ़ा से लेकर हिरण कश्यपों की क्रीड़ा भूमि एरच के भग्नावशेष अब भी उनकी स्मृति संजोये हुए हैं। वेदों की सृजना भी इसी बुन्देलखण्ड में हुई है, यह तथ्य मैं अपने लेखों में सप्रमाण कह चुका हूँ। आदि कवि वाल्मीक से लेकर वेदव्यास तक और वेदव्यास से लेकर तुलसी सूर, कबीर, बिहारी, केशव, पद्माकर, घनानंद, बोधा, रसखान तथा जगनिक, ईसुरी, गंगाधर आदि कवियों के साहित्य से सारा विश्व परिचित है। इन सबकी क्रीड़ा भूमि यह बुन्देलखण्ड ही रहा है। इनके साहित्य में ८० प्रतिशत बुन्देली शब्दों का समावेष है। सम्वत् १३०० के लगभग काशी नरेश के वरदानी पुत्र जो कि बुन्देलों के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। इसी क्षेत्र पर शासन करने लगे तभी से इसका नाम बुन्देलखण्ड पड़ो। यह जन श्रुति सही नहीं है। इस समय लगभग तीन करोड़ लोग यहाँ बुन्देली भाषा और संस्कृति का प्रयोग करते हैं। बुन्देलों के राज्य के पूर्व भी यहाँ जो बोली बोली जाती थी वही बुन्देली के नाम से प्रचलित हुई। क्योंकि क्षेत्र और क्षेत्रीय भाषा बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता हैं भाषा का नाम शासन से नहीं क्षेत्र से बनता है। किन्हीं विचारकों का मत है कि इसके पूर्व यहाँ चन्देलों का राज्य था, उस समय यहाँ प्राकृत अपभ्रंश बोली जाती थी। किन्हीं का विचार है कि यहाँ बारहवीं शताब्दी के पूर्व से ही जो भाषा बोली जाती थी, उसका नाम पुलिन्द था, जो अब बुन्देली कही जाने लगी है। यह तथ्य किसी सीमा तक मानने योग्य तथा तर्क संगत है कि इस सारे प्रदेश की भाषा शौर सैनी अपभ्रंश जिसे भाषा शास्त्री पश्चिमी हिन्दी कहते है, प्रचलित थी। मेरा विचार है कि भले ही इसका नाम चन्देली या पुलिन्द रहा हो और मुख सुख आदि कारणों से इसका नाम बुन्देली पड़ा हो किन्तु यह तथ्य अनुमान पर ही निर्भर है। ध्यान पूर्वक देखा जाये तो भाषाओं के नाम शासन पर नहीं वरन भौगोलिक आधार पर ही पड़ते हैं। जैसे हिन्द से हिन्दी, इंग्लैण्ड से इंगलिश, जर्मन से जर्मनी, बंगाल से बगैला, पंजाब से पंजाबी, तमिलनाडु से तमिल, असाम से असमियाँ इसलिए यह कहा जाना कि बुन्देलों के काल से इसका नाम बुन्देलखण्ड और यहां की भाषा का नाम बुन्देली पड़ा, तर्क संगत नहीं है।

बुन्देली क्षेत्र और भाषा का नामकरण व प्राचीनता के विषय में यह तथ्य अधिक उपयुक्त और प्रमाणिक सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र हिमालय के अग्रज विंध्याचल की पर्वत श्रेणियों से आच्छादित है, जिसकी अन्तिम श्रेणी गोवर्धन पर्वत है इससे यह क्षेत्र विन्ध्यखण्ड, विन्ध्यप्रदेश, विन्ध्याचल से समय-समय पर सम्बोधित होता रहा है। वाल्मीककृत रामायण में विन्ध्यखंड का उल्लेख है। विन्ध्य वासनी देवी का नाम भी इसी क्षेत्र के नाम से पड़ा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली का नाम पहिले बिन्ध्येली पड़ा। विन्ध्य का अर्थ है बिधेनवाले काटों का पहाड़, अचल का अर्थ है पहाड़ और इला का अर्थ है पृथ्वी। इस प्रकार दोनों की सन्धि से बनने वाली इस बोली का नाम बिधेली और बिधेली से बिंदेली बुंदेली पड़ा। बुन्देली में द को ध कहने की परम्परा है जैसे दूध को दूद, बधिया को बदिया, कैधा को कदा आदि। बोली जब शिक्षित एवं कवियों के प्रयोग में आ जाती है तो उसका नाम भाषा पड़ जाता है। बुन्देली की प्राचीनता की दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि ब्रज से बुन्देली अधिक प्राचीन है। मैंने तो ब्रज को बुन्देली की साहित्यिक भाषा ही सिद्ध किया है। अन्य लोक भाषाओं के अध्ययन से पता चलता है कि बुन्देली का अस्तित्व सबसे प्राचीन है। जिसका सीधा सम्बन्ध प्राकृत अपभ्रंश से है। विस्तार और सामर्थ्य की दृष्टि से बुन्देली अब प्रादेशिक भाषा का रूप ले चुकी है। यदि बुन्देलखण्ड प्रान्त बनता है तो निश्चय ही प्रान्त की भाषा बुन्देली बनने योग्य है। बुन्देली भाषा प्राकृत के अधिक निकट और साम्य रखती है। आगे इस तथ्य को तुलनात्मक ढंग से सिद्ध किया गया है। यहाँ यह कहना ही पर्याप्त होगा कि ब्रज बुन्देली का ही प्रारूप है। एक ही क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली दो भागों में कैसे बट गई, इसका विशेष कारण मेरी बुन्देल भारती कृति, पृ. १३ में देखा जा सकता है। चूँकि ब्रज और बुन्देली भाषाओं का वर्गीकरण करते समय बुन्देलखण्ड में कोई विश्वविद्यालय नहीं था और न यहाँ के साहित्यकारों ने इस ओर ध्यान दिया। अतः बुन्देली का सारा साहित्य ब्रज भाषा के खाते में डाल दिया गया। क्योंकि उस समय आगरा यूनिवर्सिटी ही थी। ब्रजपति और ब्रज के बारे में जितना भी साहित्य लिखा गया है उसके रचनाकार बुन्देखण्ड के ही रहे हैं। केशव की रामचन्द्रिका मूलतः बुन्देली में ही है। तुलसी के साहित्य में अवधी कम और बुन्देली अधिक है। बिहारी पद्माकर आदि सब कवि बुन्देलखण्ड के ही थे। परमाल रासो में मात्र २० प्रतिशत शब्द ही डिंगल के हैं, बाकी बुन्देली ही अधिक दिखाई पड़ती है बुन्देली का आल्हखण्ड बुन्देली का ही प्रथम महाकाव्य है। जो ११वीं शताब्दी में रचा गया था। उस समय ब्रज का कोई अस्तित्व नहीं था। ब्रज का साहित्य तो सूर आदि अष्ट छाप के कवियों द्वारा प्रकाश में आया है, जो पन्द्रहवीं शताब्दी की देन है। इतना ही नहीं अगर ध्यान से देखा जाये तो अन्य लोक भाषाओं पर भी बुन्देली का प्रभाव दिखाई पड़ता है, उसका कारण है कि बुन्देलखण्ड देश के मध्य में स्थित है, इसलिये पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण के लोगों का आना जाना इसी क्षेत्र से हुआ। अतः भाषा हिल मिल गई। ऐसी कोई भी क्षेत्रीय भाषा नहीं, जिसमें बुन्देली भाषा और संस्कृति के दर्शन नहीं दिखाई देते हों। कारण कि राम और कृष्ण की क्रीड़ा

भूमि यही बुन्देलखण्ड रहा है। रामायण और महाभारत के रचयिता भी इसी बुन्देलखण्ड के थे। दूसरा बुन्देली के प्रचार प्रसार में जगनिक कृत आल्हखंड ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, यह आल्हखंड सारे देश में प्रचलित हो चुका है। आल्हखण्ड मूलतः बुन्देली का ही है, किन्तु देश की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में इसका परिवर्तन कर लिया गया है। इसीलिए बुन्देली भाषा और संस्कृति सर्वदेशीय हो चुकी है। बुन्देली भाषा और संस्कृति का विस्तार इसी कारण हुआ है।

बुन्देलभारती के पृष्ठ २२ पर एक सूची दी गई है उसमें मैंने यह सिद्ध किया है कि ब्रज की उपेक्षा बुन्देली प्राकृत के अधिक निकट है, उपरोक्त इन तथ्यों के आधार पर मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि बुन्देली बोली का सीधा सम्बन्ध प्राकृत से है। जून ६ व १० को बुन्देली समारोह भोपाल में मुख्य वक्ता के रूप में मैंने यही कहा था कि बुन्देली प्राकृत की पुत्री और ब्रज की जुड़वा बड़ी बहिन है। वहाँ मैंने एक रचना पढ़ी थी -

लिखतन बुन्देली अखरी सी बोलत में मिसरी सी,
संस्कृत की बौ बड़ी बहिन सी प्राकृत की छुकरी सी,
बचपन सूर जवानी तुलसी के हातन सँवरी सी,
प्रौढ़ भई केशव के अँगना बिहरी कें बिहरी सी,
आल्हा के तन मन में रम गई डिंगल में सपरी सी,
जेठी बैन लोक भाषन की सबइ गुनन अगरी सी,
कोट कोट हिरदे में बसकें अधरन पै बगरी सी,
कएँ 'अबधेश' मका की रोटी नेंनूं सें चिपरी सी।।

इन तथ्यों को सभी ने एक स्वर में सराहा और वास्तविकता की अनुभूति की थी। इस विषय में प्राकृत और बुन्देली के सम्बन्ध में कुछ तथ्य अवलोकनीय हैं। प्राकृत पाली में दस स्वर हैं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ एवं व्यंजन भी समान हैं। पाली में अं का अनुस्वार ही प्रयोग होता है, हलन्त और दन्ती 'स' एवं 'ब' का प्रयोग होता है। ऐसा ही बुन्देली में है, कुछ शब्दों के उदाहरण दे रहा हूँ - (प्राकृत-बुंदेली) अच्छरिज-अचरज, अड्ढान-उठान, इस्सर-ईसुर, उपसयो-उपासौ, इडंग-आँग, इत्तक-इतेक, ओकास-उकास, कातब्बो-कातब्ब, किरिया-किरिया, खरा-खरौ, गब्बौ-गियाब, गोचरो-गोचर, अट्ठान-थान, छत्त-छत्त, चीवरो-वीवर, थम्म-थमा, छट्टय-छटॅव, धीता-धिया, धीतरं-धेवता, धीता-धी, पत्ती-परती, पलकेन-पलका, पसीदियो-पसीजियो, भत्त-भात, भारिया-भारजा, बयल-बैल, संवच्छर-संमूबत्सर, सुत्त-सूत, सौभागबत्तौ-सौभागबती, हेटल-हेटा आदि आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राकृत और बुन्देली में पूर्णतः सामंजस्य है। अब जरा देखें कि प्राकृत के ब्रज अधिक निकट हैं कि बुन्देली। बुन्देल भारती में मैंने विस्तार से तुलना की है यहाँ उदाहरण के लिए कुछ शब्द दे रहा हूँ - (अपभ्रंश-बुन्देली-ब्रज) जो-जो-जे, सो-सो-ते, मारिया-मारौ-मारयरे, बिआइल-बिआये, गबिया-गइया-गउ, एतना-इत्तो-एतना, सोइ-सोइ-बाइ, नाहिं-नाहि-नाय, करू-कर-करि, मोइ-मोय-मोकूँ, लबए-लए-लयो, काढ़ब-काढ़ौ-काढ़यो, बहइ-बये-बहयबेह, भल्ला-भलौ-भल्यो, महारा-हमारो-महारोहा, काइ-काए-काहे, तइयाह-तइदिन-बइदिन, एउ-एउ-यौउ,, गिउ-गऔ-गयो, लग्गु-लगौ-लगयो। आदि शब्दों से लगता है कि बुन्देली अपभ्रंश के अधिक निकट है, और ब्रज बुन्देली की उप भाषा है। क्योंकि बुन्देली के मुख-सुख आदि करणों से शब्दों के रूपों में परिवर्तन हुआ, जिससे ब्रज का रूप बना। अपभ्रंश और बुन्देली में कहीं कहीं स्वर मात्र का ही अन्तर है। ब्रज में स्वर की अपेक्षा व्यंजनों का भी बदलाव हुआ है, जो बुन्देली से ही बदल कर बना है। देखिए गिउ से गऔ और गऔ से गयो, मारिया से मारौ मारयौ तोइ से सोइ तथा सोइ से मोइ, मोय से मोय तथा मोकूँ आदि। अपभ्रंश से कुछ तो बुन्देली के ज्यों के त्यों आ गये हैं, जैसे जो जो सो सो बिअइल बिहाइ गबिया गइया एतना से इतना सोइ सोइ करू से कर एउ से एउ गिउ से गओ काइ से काए आदि। ध्यान रहे यहाँ मात्र नमूने के तौर पर ही शब्द दिये हैं। यदि इस पर अधिक खोज बीन की जाये तो पर्याप्त प्रमाण मिल सकते हैं।

उपरोक्त तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि बुन्देली का सीधा सम्बन्ध प्राकृत से है तथा उसके स्वरूप में भी साम्य है। इसी प्राकृत से संस्कारित होकर संस्कृत का स्वरूप सँवरा है। इसीलिए मैंने बुन्देली को संस्कृत की बड़ी बहन कहा है। बहुत से लोगों को यह मालूम नहीं है कि ऋग्वेद की भाषा ईरान की अवेस्ता से बहुत कुछ मिलती है, इससे यह सिद्ध होता है कि ऋग्वेद का सृजन ईरान से पंजाब (पंजार्णव) तक के मध्य हुआ है। बाद में जब आर्य लोग आगे बढ़े तो यमुना के किनारे किनारे दक्षिण की ओर आये तो प्राकृत उनके प्रयोग में आई। प्राकृत से संस्कारित होकर वर्तमान संस्कृत का जन्म हुआ। वर्तमान में बुन्देली का प्रयोग अब भाषा के रूप में होने लगा है। मैंने भी हर विधा में बुन्देली का प्रयोग किया है। अब बुन्देली पूर्णतया समर्थ और धनी बन चुकी है। बुन्देली और प्राकृत का सम्बन्ध परस्पर माँ-बेटी का ही है। इति शुभम्।

- ४२५, श्रमण सदन, नई बस्ती, झाँसी

२००९ में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण पोथियाँ

- **बुन्देली वार्ता (गद्य ग्रंथ)** - डॉ. रामनारायण शर्मा,
  प्रकाशक - बुन्देली साहित्य समिति, झाँसी
- **जयराष्ट्र (बुन्देली उपन्यास)** - डॉ. रामनारायण शर्मा,
  प्रकाशक - बुन्देली साहित्य समिति, झाँसी
- **यात्रा कथा (बुन्देली संस्मरण)** - डॉ. रामनारायण शर्मा,
  प्रकाशक - बुन्देली साहित्य समिति, झाँसी
- **गौतम बुद्ध का बुनियादी चिन्तन** - डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही'
  प्रकाशक - म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
- **दोहा से बोली गजल** - डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही'
  प्रकाशक - प्रमोद प्रकाशन
- **कै रए हैं रामधई (बुन्देली जनगीत)** - किशन तिवारी
- **काव्यामृत** - (झाँसी के कवियों का काव्य संग्रह)
  प्रकाशक - श्री सरस्वती काव्य कला संगम, नगरा (झाँसी)

ईसुरी : एक कवि, एक पत्रिका, एक पत्र

- कान्ति कुमार जैन

{डॉ. कान्तिकुमार जैन हिन्दी व बुन्देली के सशक्त व चर्चित रचनाकार हैं। उन्होंने डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर की बुन्देली पीठ से 'ईसुरी' का प्रकाशन कर देश में बुन्देली को स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उनके द्वारा ईसुरी पर लिखा गया लेख तथा 'ईसुरी' पत्रिका की प्रथम संपादकीय व ईसुरी पर प्राप्त एक सुधी पाठक का पत्र आप सभी की सेवा में प्रस्तुत है - सम्पादक}

१. एक सिद्धवाक् कवि -

ईसुरी बुन्देली के सिद्ध वाक् कवि हैं और बुन्देली काव्य-परम्परा और जनजीवन में उन्हें वैसा ही स्थान प्राप्त है, जैसा विद्यापति को मैथिली और मिथला में प्राप्त है। ईसुरी बुन्देलखण्ड के सच्चे पृथ्वी पुत्र हैं। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रज भाषा को छोड़कर बुन्देली में काव्य-रचना करने का साहस दिखाया था। विगत शताब्दी के अन्तिम वर्षों तक काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा की अप्रतिहत प्रतिष्ठा थी और हिन्दी की विभिन्न बोलियों के कवि अपनी बोली को छोड़कर उस समय की मानक काव्य-भाषा ब्रज में ही कविता करते थे। कवि यदि समर्थ हो तो ऐसा करने से ख्याति और प्रतिष्ठा स्वयं चलकर उनके दरवाजे तक पहुँच जाती थी। ईसुरी चाहते तो वे भी वैसा कर सकते थे, पर उन्हें अपनी बोली बुन्देली और अपनी धरती बुन्देलखण्ड से, उसके उत्सवों, पर्वों, नदियों, पहाड़ों और सामान्य जन से गहरा प्यार था। बुन्देलखण्ड के आदमी और उनकी जिन्दगी को ईसुरी ने जितने पास से और जितनी संवेदना से देखा है, उतना बुन्देलखण्ड के किसी अन्य कवि ने नहीं। हमें यह कहने में संकोच नहीं है कि आल्हखण्ड के साथ ईसुरी का काव्य बुन्देलखण्ड के जनजीवन और संस्कृति की पहचान बनाता है। यह असंदिग्ध स्वरों में कहा जा सकता है कि ईसुरी बुन्देली के जन कवि हैं, परिस्थितियों ने उन्हें चमत्कारिक फगवारा बना दिया है। उनकी चौकड़ियां अर्थात् चतुष्पदी की रसिकता से उनके समकालीन राई गायक धीरे पण्डा इतने प्रभावित हुये कि उनकी साहित्यिक रचनाओं को लोकरंग में डुबो कर उन्हें राई के लोकगीत के सीमित घेरे में बांध दिया। वही उनकी प्रसिद्धि का कारण बना। अतः अब तक ईसुरी की रचनाओं के जितने भी संकलन हुये हैं वे मात्र चौकड़िया फागों तक ही सीमित रहे किन्तु अब उनकी ऐसी रचनाएँ भी मिली हैं जिनमें छंदों एवं भावों की विविधता ईसुरी को जन कवि सिद्ध करती है।

अभी तक माना जाता था कि ईसुरी प्रेम और सौन्दर्य के भोक्ता कवि हैं, उनके श्रृंगार में किसी प्रकार की आध्यात्मिकता नहीं है, उनके प्रेम का केन्द्र शरीर है और श्रृंगार भी उसी शरीर पर सोहता है। नर-नारी का प्रेम ईसुरी के लिए किसी संकोच का कारण नहीं है, वे खुले खजाने प्रेम करते हैं, प्रेम के सामने आने वाली सभी दीवारों को लांघने या ध्वस्त करने का भी दुर्निवार साहस उनमें है। ईसुरी का प्रेम अदम्य शारीरिक आकर्षण को जन्म देता है। इस प्रेम की विशेषता यह है कि वह अपने उद्घाटन के लिए न तो यमुना का चंद्रिका चर्चित तीर खोजता है और न ही सुरभि पूरित मल्लिका वितान। यह प्रेम तो हाट-बाजार, घर-आँगन, नदी-पोखर और सुबह-शाम अव्यक्त होने वाला स्त्री और पुरुष का सहज जैविक आकर्षण है। हिन्दी में इस जैविक आकर्षण को झुठला कर या तो उसे लोकोत्तर बना दिया गया है कर्म से विमुख करने वाला वासना का कर्दम। हिन्दी में छायावाद के उपरांत बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, सुमन आदि कवियों में प्रेम का जो स्वरूप मिलता है, उसकी चपल पगचापें हमें ईसुरी में सुनाई पड़ती है।

ईसुरी और बच्चन की ऐंद्रिक प्रवृत्तियों को समझने के लिए यहां बच्चन जी का एक पत्र उद्धृत करना आवश्यक है -

सोपान, गुलमोहर पार्क

२७-७-८५

नई दिल्ली

सम्मान्य, कान्ति कुमार जी,

जब मैंने यह रुबाई लिखी/मेरे शव पर वह रोये, हो/ जिसके आंसू में हाला,/ आह भरे वह जो हो सुरभित/ मदिरा पीकर मतवाला।/ दे मुझको वे कंधा जिनके/ पद मद डगमग होते हों,/ और जलूं उस ठौर जहां पर/ कभी रही हो मधुशाला।/तब /यारों इतनों जस कर लीजो/चिता अंत न दीजो...,

लिखने वाले ईसुरी की छाया मेरे/ऊपर पड़ रही होगी

विनीत - बच्चन

बच्चन जी के इस पत्र से हिन्दी की उस कविता के इतिहास पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता आन पड़ी है जिसे वैयक्तिक कविता कहा जाता है और जिसके संबंध में यह धारणा प्रचलित है कि वह क्षयिष्णु काव्य है, कि वह छायावाद की वायवीयता की प्रतिक्रिया स्वरूप उभरी, कि वह छायावाद की लाक्षणिक दुरूहता के विरोध स्वरूप लिखी गयी, कि वह पश्चिम की भोगवादी संस्कृति से प्रभावित है, आदि-आदि।

वास्तव में 'ईसुरी' उन कवियों में है जो मौखिक गीतों की परम्परा में आते हैं, जो जन साधारण की भावमयी वाग्धारा से संसक्त हैं, फलतः अधिक सजीव और अधिक स्वच्छन्द हैं ईसुरी की फागों में अनुभूति की स्वछंदता का जैसा उद्घाटन हुआ है और काव्य की मौखिक परम्परा का जो उत्कर्ष प्राप्त हुआ है, उसको हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनदेखा कर दिया गया है। प्रकृति पद्धति पर आगे बढ़ने वाले ईसुरी अकेले कवि नहीं है। ईसुरी का जन्म सन् १८४१ में हुआ था। यह वह समय था जब हिन्दी के रीति-काव्य का पतन हो रहा था, और पुनर्जागरण की नई प्रवृत्तियां उभर रही थी। ईसुरी से सौ साल पहले नजीर अकबरावादी हुये जो रीतिबद्धता के घटाटोप काल में रीति से सर्वथा मुक्त होकर अनुभूति की स्वच्छंदता से भरी हुई और जनसाधारण की वाग्धारा में काव्य रचना कर चुके थे। पर नजीर से भी पहले १८२२ ई.

में उर्दू और रेख्ता के प्रसिद्ध शायर मीर तकी मीर हो चुके थे। वास्तव में साहित्य के इतिहासकारों ने सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी की हिन्दी कविता को केवल 'शिष्ट' भाषा में लिखी कविता का पर्याय मान लिया है और श्रेष्ठ काव्य को शब्द शिल्प तक ही सीमित कर दिया है। उन्होंने उस समस्त काव्य की उपेक्षा कर दी है जो रूढ़ परम्परा से मुक्त होकर, अपने मन और अपने समय के ताप का बखान कर रहा था और अधिक सजीव और अधिक स्वच्छंद था। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में जिस अपनी ही काव्य परम्परा की ओर संकेत किया है वह वही काव्य परम्परा थी जिसके शीर्ष कवि-मीर, नज़ीर और ईसुरी है। इनमें से एक रेख्ता का कवि है, एक खड़ी बोली का और एक बुन्देली का। इसे मात्र संयोग नहीं समझना चाहिये कि ये ब्रजभाषा के कवि नहीं है। जब भी कविता में कोई नया उन्मेष प्रारम्भ होता है, तो सबसे पहले परम्परागत और स्वीकृत काव्य भाषा में जो रूढ़ियाँ बन चुकी होती है और सिद्ध कवि जिस उत्कर्ष तक उसे पहुंचा चुके होते हैं, उसमें निजता की पहचान बनाना और स्वच्छन्दता का व्यवहार करना अभिनवता के आकांक्षी कवि के लिए संभव नहीं होता। इसीलिये ऐसे कवि भाषा का गढ़ तोड़ते हैं और अभिव्यक्ति के नितांत नये पथों का संधान करते हैं। हमने ऊपर अपनी ही काव्य परम्परा के जिन तीन कवियों का उल्लेख किया है वे तीनों कवि मुफलिस हैं।

इनका जन्म गरीबी में हुआ, जीवन भर उन्हें हालातों के थपेड़े खाने पड़े। न इनका बचपन आराम से बीता और न इनका यौवन। यौवन के दिनों में भी सौन्दर्य और प्रेम की गलियों में चक्कर लगाने की तुलना में इन्हें रोजगार पाने के लिये यहाँ-वहाँ भटकना पड़ा। कोई किसी का मीर मुन्शी बना तो कोई किसी का कारकुन, किसी को दो रुपल्ली महीने की ट्यूशन करके अपने परिवार का पेट पालना पड़ा। इन कवियों ने प्रेम तो किया पर प्रेम में ये सभी असफल हुये और बदनाम भी। इनका कू-ए-जाना, कूच-ए-कातिल में तब्दील हो गया और इन्हें अपना शहर छोड़ना पड़ा। इन कवियों की कविताओं में इसीलिए गमे-जानां के साथ-साथ गमे-दौरां भी दिखाई पड़ता है। ये तीनों कवि जीवन से और जीवन के दर्द से अपनी शक्ति एकत्र करते हैं। इनकी कविता 'सेकंड-हैंड' अनुभवों की कविता नहीं है। इन्होंने जीवन में जो भोगा है, उसे कविता में व्यक्त किया है। यदि हिन्दी में संस्कृत प्राकृत और अप्रभ्रंश की काव्य परम्परा का आतंक न होता और यदि पिछली शताब्दी के अंतिम चरण में पश्चिम के काव्यादर्श का आयात न कर लिया जाता तो हमारी अपनी काव्य परम्परा वहीं होती जिसका संकेत आचार्य शुक्ल कर रहे हैं। दिनकर जी ने बहुत पहले यह कहा था कि घनानन्द के काव्य में छायावाद की आरम्भिक पदचाप सुनाई पड़ती है। अब बच्चन जी अपनी मधुशाला पर 'ईसुरी' की आत्मा की छाया स्वीकार करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दी का जो भी कवि प्रकृत अनुभूतियों का जो आयातित, आरोपित अथवा प्रक्षिप्त नहीं है, कवि होगा और मीर की तरह, नजीर की तरह और ईसुरी की तरह हिन्दी की कविता को अपनी ही काव्य परम्परा का विकास करेगा। बच्चन जी की उपर्युक्त स्वीकारोक्ति के सन्दर्भ में ईसुरी की महत्ता का पुनराविष्कार करने की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही आवश्यकता उत्तर छायावादी काव्य परम्परा के पुनर्मूल्यांकन की भी है।

ईसुरी ने अपने जीवन का अधिकांश और फलतः काव्य को भी अधिकांश रजऊ को समर्पित कर दिया। रजऊ है तो वह उनके जीवन में उल्लास भरती है और काव्य में आप्लावन-कारी सौन्दर्य के चित्र अंकित करती है। यदि वह नहीं है तो ईसुरी को लगता है कि जीवन बेमानी है और वे अपनी कविता को दिग-दिगन्तव्यापी हाहाकार में डूबा हुआ पाते हैं। मोहब्बत का रंग ईसुरी की कविता का सबसे गाढ़ा और सबसे चटक रंग है। मीर और नजीर की तरह ईसुरी अपनी धरती को पहचानते हैं और उस धरती पर रहने वाले लोगों के दुखःदर्द और अभाव-संताप से विचलित होते हैं। उनका जीवन बहुत नाटकीय था और उन्होंने जीवन में बहुतेरे-चढ़ाव देखे थे। उनकी कविता अपनी ऐन्द्रिक मांसलता, उद्दाम श्रृंगार और जीवन के भौतिक स्वादों में सीधे-सीधे बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल की कविता से जुड़ जाती है। हिन्दी कविता के इतिहास में बुन्देली को वह दर्जा नहीं मिला जो खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, या मैथिल को मिला। ईसुरी को लेकर बुन्देली किसी भी काव्य दीर्घा में सिर उठा कर और पूरे आत्म विश्वास के साथ जिस पाण्डित्यपूर्ण काव्य का समारम्भ हुआ था वह ईसुरी के सहज लोकधर्मी काव्य में अपना चक्र पूरा करता है।

२. 'ईसुरी' पत्रिका का प्रथम संपादकीय -

'ईसुरी' क्यों?

'ईसुरी' डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी-विभाग के अंतर्गत क्रियाशील बुंदेली-पीठ की पत्रिका है। यह पत्रिका का पहला अंक है। ईसुरी बुंदेली के सिद्धवाक् कवि हैं और बुन्देली काव्य-परम्परा और जनजीवन में उन्हें वैसा ही स्थान प्राप्त है, जैसा विद्यापति को मैथिली और मिथिला में प्राप्त है। ईसुरी बुन्देलखण्ड के बच्चे पृथ्वीपुत्र हैं। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रजभाषा को छोड़कर बुन्देली में काव्य-रचना करने का साहस दिखाया था। विगत शताब्दी के अंतिम वर्षों तक काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा की अप्रतिहत प्रतिष्ठा थी और हिन्दी की विभिन्न बोलियों के कवि अपनी बोली को छोड़कर उस समय की मानक काव्य-भाषा ब्रज में ही कविता करते थे। कवि यदि समर्थ हो तो ऐसा करने से ख्याति और प्रतिष्ठा एवं चलकर उनके दरवाजे तक पहुँच जाती है। ईसुरी चाहते तो वे भी वैसा कर सकते थे, पर उन्हें अपनी बोली बुन्देली और अपनी धरती बुन्देलखण्ड से उसके उत्सवों, पर्वों, नदियों, पहाड़ों और सामान्य जन से गहरा प्यार था। बुन्देलखण्ड के आदमी और उनकी जिन्दगी को ईसुरी ने जितने पास से और जितनी संवेदना से देखा है, उतना बुन्देलखण्ड के किसी अन्य कवि ने नहीं। हमें यह कहने में संकोच नहीं है कि आल्हा-खण्ड के साथ मिलकर ईसुरी का काव्य बुन्देलखण्ड के जनजीवन और संस्कृति की पहचान बनाता है। जब बुन्देली-पीठ के तत्वावधान में बुन्देली क्षेत्र के साहित्य, बोली और संस्कृति पर केन्द्रित पत्रिका प्रकाशित करने का विचार

मन में उठा तो उसके लिए 'ईसुरी' नाम जैसे स्वयमेव तय हो गया।

बुन्देली-पीठ डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी-विभाग के अन्तर्गत पिछले अनेक वर्षों से सक्रिय है। बुन्देली बोली और संस्कृति पर शोध और इस क्षेत्र के अप्रकाशित साहित्य का अनुसन्धान और प्रकाशन इसका लक्ष्य है। विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राण-प्रतिष्ठापक आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की मातृभाषा बुन्देली नहीं थी, किन्तु उनकी मान्यता थी कि बुन्देली-साहित्य भी हिन्दी की वैसी ही विभूति है, जैसा कि हिन्दी की अन्य बोलियों का। एक मनीषी और द्रष्टा की तरह भारत के हृदयेश में स्थित और बुन्देलखण्ड के शिराकेन्द्र सागर में स्थापित विश्वविद्यालय में सन् १६५६ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनुशंसा पर उन्होंने बुन्देली शोध-केन्द्र की स्थापना की थी। इस शोध केन्द्र को अपने शैशवकाल में जिन विद्वानों का मार्गदर्शन और संरक्षण प्राप्त हुआ, उनमें प्रसिद्ध कवि और चिंतक पण्डित ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी और प्रतिष्ठित वैयाकरण और इतिहासकार पं. लोकनाथ सिलाकारी अन्यतम हैं। आचार्य बाजपेयी द्वारा स्थापित यह बुन्देली शोध-केन्द्र अपने अनुसन्धान-कार्य और प्रकाशन-योजना द्वारा अब देश के शोध और अनसन्धान केन्द्रों में दूर-दूर तक जाना जाता है। १६६४ में आचार्य बाजपेयी की अध्यक्षता में सम्पन्न पद्‌माकर-समारोह इस केन्द्र की विशेष उपलब्धि थी। आचार्य भगीरथ मिश्र के अध्यक्षता-काल में आचार्य वाजपेयी द्वारा स्थापित बुन्देली शोध-केन्द्र सन् ६६ में बुन्देली पीठ के रूप में परिवर्तित हुआ और बुन्देली पीठ में दुर्लभ पाण्डुलिपियों का अत्यन्त समृद्ध संग्रह किया गया और अनेक पाण्डुलिपियाँ प्रकाशित भी हुई। वास्तव में आचार्य वाजपेयी और आचार्य भगीरथ मिश्र का कार्यकाल बुन्देली-पीठ का उन्मेष काल था। अब हम पुनः बुन्देली-पीठ को बुन्देली साहित्य, बोली और संस्कृति के अनुसन्धान और अध्ययन पर एकाग्र करना चाहते हैं और इसी निमित्त 'ईसुरी' का प्रकाशन बुन्देली-पीठ द्वारा आयोजित किया गया है।

'ईसुरी' के प्रथम अंक के लिये जब हमने विद्वानों, शोधकर्त्ताओं और बुन्देलखण्ड के प्रेमियों से रचनायें आमन्त्रित की तो हम बहुत आश्वस्त नहीं थे। किन्तु धीरे-धीरे हमें इतनी रचनायें प्राप्त हुईं कि उन सबको पहले अंक में देना सम्भव नहीं हो सका है। ऐसी रचनाओं का उपयोग हम भविष्य में करेंगे। 'ईसुरी' के इस अंक को हमने पाँच खण्डों में विभक्त किया है। पहला खण्ड साहित्य-रचना और शोध से सम्बन्धित है। सागर विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति सागर के रत्न थे और उन्हें गर्व था कि उनकी रगों में कृषक-रक्त बहता है। उनके बचपन के दिनों का सागर कितने अभावों और कठिनाइयों से भरा था, इसका विवरण उन्होंने अपनी प्रसिद्ध आत्मकथा 'सात जीवन' में किया है। प्रस्तुत रचना इसी पुस्तक के एक अंश का हिन्दी रूपान्तरण है। 'ईसुरी' के प्रवेशांक में अपने आद्य कुलपति की यह गाथा हमारी विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत है। जहूर बख्श सागर के उन साहित्यकारों में हैं, जिनकी रचनाओं में द्विवेदी युगीन-प्रवृत्तियों का श्रेष्ठ निदर्शन हुआ था। इस शताब्दी के प्राथमिक दशकों का साहित्यिक परिवेश क्या था और उदीयमान लेखकों को प्रकाशन की क्या सुविधायें प्राप्त थीं, यह जानना आज बड़ा रोचक, किन्तु उपयोगी है। छायावाद को 'धमा-चौकड़ी' मानने वाले युग से हम कितना आगे बढ़े आये हैं, यह दिव्य दर्शन नामक ऐतिहासिक महत्व के लेख से सिद्ध है। आगामी अंकों में भी बुन्देली क्षेत्र के साहित्यकारों द्वारा विगत दशकों की साहित्यिक गतिविधियों का लेखा प्रस्तुत करना हमारा संकल्प होगा। इसी विचार की कड़ी के रूप में मीर और उनका मण्डल शीर्षक लेख है, जो यहाँ वहाँ बिखरी सामग्री के आधार पर पुनर्रचित किया गया है। हमारी योजना है कि हिन्दी विभाग के अन्तर्गत ऐसे रचनाकारों पर शोध-कार्य हो, जो बुन्देलखण्ड में रचित साहित्य और यहाँ की बोली के सन्दर्भ में इतिहास का निर्माण कर चुके हैं।

बुन्देलखण्ड के साहित्यकार की यह विशेषता रही है कि वह जातीय एवम् राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से कभी पृथक या विलग नहीं रहा। उसने जिस शिद्दत से राष्ट्र की परतन्त्रता की पीड़ा का और सामाजिक विषमता का अनुभव किया, उसी शिद्दत और संवेदना से साहित्य की रचना की। सैयद अमीर अली मीर ने १६०२ में बंग-भंग के विरोध में स्वदेशी अनुराग शीर्षक कविता लिखी थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने १६१३ में महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका संग्राम में कांटों वाला सत्य स्वीकार करने के लिए अपना उत्साह व्यक्त किया था। बालकृष्ण शर्मा नवीन की आज खड्ग की धार कुंठिता, है खाली तूणीर हुआ। असहयोग आन्दोलन के अचानक बन्द कर दिये जाने पर बलिदानियों के आहत-अभिमान और राष्ट्र की हताशा पर लिखी गई ऐतिहासिक महत्व की कविता है। जलियाँ वाला बाग की नृशंसता पर सुभद्रा कुमारी चौहान ने जैसी कविताएँ लिखीं, वैसी हिन्दी के किसी दूसरे कवि ने नहीं। जून १६३४ में ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी की 'बन्दियों का प्यार' शीर्षक कविता हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव पर लिखी गयी प्राथमिक कविताओं में है। भाई-भाई का क्या झगड़ा की आवाज लगाने वालों में ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी हिन्दी कवियों में अग्रणी सिद्ध होते हैं। ये सारे साहित्यकार जो कविताएँ लिख रहे थे, वे हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास के फुटनोट हैं। ये साहित्यकार जीवन से परांगमुख होकर कल्पना के आकाश महल में बैठकर या केवल कागज पर जागरण के सन्देश नहीं दे रहे थे।

हमें लगता है कि इस क्षेत्र के कवियों के काव्यात्मक और सांस्कृतिक अवदान का अभी पूरा-पूरा और समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। 'ईसुरी' के आयोजनों में हम बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों के इतिवृत्त एवं उनके साहित्य के महत्व को रेखांकित करने वाली रचनाएँ प्रकाशित करने का विचार रखते हैं। ऐसी कुछ रचनाएँ इस अंक में प्रकाशित की जा रही हैं।

इसी खण्ड में बुन्देलखण्ड के विविधधर्मी काव्य-रूपों, साहित्यिक संप्रदायों एवं कारयित्री प्रतिभाओं का भी लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड की सामग्री से बुन्देली-क्षेत्र की रचनाशीलता और साहित्यिक उत्कर्ष का ज्ञान हो सकेगा। इसी खण्ड में हमने 'ईसुरी' की बारह फागों का हिन्दी रूपान्तरण भी

प्रस्तुत किया है। बुन्देली खड़ी बोली की सगी बहिन है, अतः बुन्देली-काव्य का खड़ी बोली रूपान्तरण उतना दुष्कर नहीं है, जितना दुष्कर 'निराला' को रामचरित मानस के अवधी छन्दों का हिन्दी रूपान्तरण लगा था। फिर भी अभिव्यक्ति और शब्दों की जो अपनी गन्ध होती है, वह तो प्रत्येक बोली की अपनी ही होती है। ईसुरी की सारी फागों को खड़ी बोली में रूपान्तरित करने का विचार हमें बहुत आकर्षक लग रहा है।

खण्ड दो में बुन्देली पीठ में संग्रहीत पाण्डुलिपि छत्र-विलास प्रस्तुत है। यह लाल कवि की रचना है। लाल को बुन्देली क्षेत्र का भूषण कह सकते हैं। 'छत्र-विलास' का संपादन बुन्देली-पीठ के सचिव डॉ. बलभद्र तिवारी ने किया है कि भूमिका में लाल कवि के युग, व्यक्तित्व और काव्य का विस्तृत विवेचन किया है। भविष्य में भी इस प्रकार की अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का संपादन-प्रकाशन 'ईसुरी' का अविभाज्य अंग रहेगा।

खण्ड तीन बुन्देली बोली से संबद्ध है। अभी तक बुन्देली बोली का कोई शब्दकोश नहीं बन सका है।' बुन्देली-पीठ के तत्वावधान में हम इस दीर्घ प्रतीक्षित एवं गुरुत्तर कार्य को सम्पन्न करने के लिए कृत-संकल्प है। प्रस्तुत अंक में बुन्देली शब्दों के संकलन के माध्यम से बुन्देली जनजीवन की विविधता और उसकी सांस्कृतिक समृद्धि का संकेत मात्र किया गया है। बुन्देली क्षेत्र के विभिन्न आंचलिक भागों से बुन्देली की शब्दावली का संकलन भी प्रस्तावित है, जो बुन्देली की भाषिक विविधता को प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक है। संक्रमण क्षेत्र की शब्दावली के माध्यम से हिन्दी की विभिन्न बोलियों की आत्मीयता का परिचय प्राप्त करना भी इस प्रकार के संकलन का उद्देश्य है। बुन्देली की व्याकरणिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने के लिए उसके सर्वनामों, उनके भाषा वैज्ञानिक रूपों तथा समाजभाषा वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को समझने के लिये यह अनिवार्य है कि आधुनिक भाषाविज्ञान की उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में बुन्देली के सर्वनामों का अध्ययन किया जाये, साथ ही बुन्देली के अबुन्देली क्षेत्र के परिसीमन और निर्धारण का भी प्रयास किया जाये। बुन्देली क्षेत्र पहेलियों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की लोकजीवन से जुड़ी जीवन्त पहेलियों का विश्लेषण बुन्देली-मानस और संस्कृति को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण होगा। बुन्देली एक लम्बे-चौड़े भू-भाग की बोली है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि उसके अनेक क्षेत्र-उपक्षेत्र हों। बुन्देली के इस तरह के उपक्षेत्रों में प्रचलित उसके संकर रूपों एवं उपक्षेत्रों का नयी दृष्टि से अध्ययन एक अलग विषय होगा। ग्रियर्सन ने ऐसी संकर बोलियों को 'खिचड़ी बोली' कहा था। कोश-विज्ञान की दृष्टि से बुन्देलखण्ड की वानस्पतिक, भूगर्भशास्त्रीय, भौगोलिक एवं प्राणिशास्त्रीय संपदा का भी संकलन एवं अध्ययन अभीप्सित हैं प्रस्तुत खंड में इन दृष्टियों से भी अध्ययन के प्रयास किये गये हैं।

लोक और संस्कृति को केन्द्र में रखकर खण्ड चार में सामग्री एकत्र की गई है। बुन्देली संस्कृति सामासिक संस्कृति का श्रेष्ठ उदाहरण है। मिली-जुली संस्कृति के जिस रूप की कल्पना रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत को 'महामानवों का समुद्र' कहकर की थी, उसी की अत्यंत निर्मल और आत्मीय स्वरूप 'सागरःमेरा सागर' में वर्णित है। 'सागरःदर्दों का सागर' के साथ मिलकर यह लेख बुन्देलखण्ड की आर्थिक विपन्नता, किन्तु सांस्कृतिक समृद्धि का पूरक आख्यान है। लोकसंगीत एवं लोक-चित्रकला, की परम्परा, स्वरूप और स्थिति पर भी विभिन्न पक्षों से विवेचन करना हमें अभीष्ट लगा है, ताकि बुन्देलखण्ड की मिट्टी और आकाश : दोनों के स्पंदनों से हम परिचित हो सकें। बुन्देलखण्ड में भारतीय इतिहास के कई फैसले हुये हैं। न जाने कितने मुकुट यहाँ धूल-धूसरित हुए हैं और न जाने कितनी भुजायें यहाँ अन्याय और आतंक के विरोध में उठी हैं। 'इतिहास और पुरातत्व' शीर्षक अन्तिम खण्ड मं इसके संकेत उपलब्ध हैं।

अन्त में बुन्देली-पीठ की कार्य-परिषद् के सदस्यों को धन्यवाद देना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। पिछले अनेक वर्षों से इस योजना को चाहकर भी आकार देना सम्भव नहीं हुआ था, किन्तु बुन्देली-पीठ की कार्य परिषद के सम्मुख जब मैंने 'ईसुरी' की रूपरेखा प्रस्तुत की तो विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध काव्यशास्त्री डॉ. भगीरथ मिश्र एवं विख्यात कवि तथा विचारक श्री शिवकुमार श्रीवास्तव ने न केवल इस का स्वागत किया, बल्कि इसे दीर्घ अवधि से लंबित एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति बताया। 'ईसुरी' बुन्देली-पीठ की ही नहीं, विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के तत्वावधान में प्रकाशित होने वाली पहिली पत्रिका है। यह स्थिति एक ओर हमें उत्साहित करती है दूसरी ओर आयोजन की गुरुता की ओर संकेत करती है। हम उत्साह की निरन्तरता और आयोजन की महत्ता को बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प है और 'ईसुरी' के शब्दों में केवल यह कहना चाहते हैं : कहत ईसुरी बांदे रहयो जबर गाँठ को घोंटा।'

'ईसुरी' के इस बिन्दु पर खड़े होकर जब हम बुन्देली शोध-केन्द्र एवं बुन्देली पीठ की उपलब्धियों का आकलन करते हैं, तो हमारी प्रतिक्रिया सन्तोष मिश्रित हर्ष की होती है। अभी तक पीठ के तत्वावधान में शिष्ट-काव्य-परम्परा के प्राचीन काल सन् १५३५ से लेकर अद्यतन काल के कवियों के प्रतिनिधि काव्य को एक श्रृंखला में प्रस्तुत किया गया है। मौखिक काव्य-परम्परा के जगनिक कृत प्रसिद्ध ग्रन्थ आल्हा को भी एक कृति के रूप में प्रकाशित किया गया है। लोक काव्य परम्परा के तीन भागों में बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों से संकलित बुन्देली लोकगीतों एवं अन्य साहित्य रूपों का भी प्रकाशन हो चुका है। बख्शी हंसराज कृत 'सनेह सागर' तथा 'चिन्तामणि' एवं कवि रघुनाथ की 'दूषण उल्लास' आदि रचनायें भी बुन्देल-पीठ के अन्तर्गत पाठकों के सम्मुख आ चुकी है। इन सब का विवरण परिशिष्ट में उपलब्ध है।

ईसुरी के आगामी अंकों की हमारी योजना में - १. बुन्देली शब्दों का संकलन, २. बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों का परिचय एवं उनकी रचनाओं का विवेचन, सम्मिलित है। इन योजनाओं की पूर्ति में हमें जिस क्षेत्र से जो भी सुझाव, सहयोग अथवा सामग्री प्राप्त होगी, उसका हम सहर्ष स्वागत करेंगे।

'ईसुरी' के साथ-साथ हम इसी वर्ष से कारे बेग, सैयद

अमीर अली 'मीर', केशव पाठक, उषादेवी मिश्रा, जानकी प्रसाद द्विवेदी, लोकनाथ सिलाकारी, ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी जैसे ऐतिहासिक महत्व के साहित्यकारों पर पुस्तक श्रृंखला की योजना का क्रियान्वयन प्रारम्भ कर रहे हैं। इस श्रृंखला में उन सभी साहित्यकारों पर पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना है, जो अपने समय के महत्वपूर्ण रचनाकार रहे हैं और जिन का साहित्य किसी न किसी कारणवश अभी तक या तो अप्रकाशित है अथवा जिसका अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है।

३. एक अनन्य पत्र : बुन्देली और बुंदेलखण्ड का सारस्वत तैल चित्र -

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी — ई-२२, विश्वविद्यालय परिसर,
आचार्य भाषिकी विभाग — कुरुक्षेत्र-१३२११६
दिनांक ४-४-९०

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला, व्याख्यान-माला का समाचार जिस रूप में आपने प्रकाशित किया-कराया है, वह विकसित देशों का स्मरण कराता है। भारत में भी ऐसा माहौल कहीं है, यह जानकर सन्तोष होता है।

अस्वस्थता अभी चल रही है। ऐण्टी-बायोटिक्स न लेने के कारण इस बार वैसी दुर्बलता नहीं आ पाई है जैसी पहले आ जाया करती थी। यहाँ वापस आने पर लगा था कि इस बार सुरक्षित रह जाऊँगा, इस कारण कुछ खान-पान का प्रमाद भी हो गया। प्रमाद न होता तो क्या परिणाम निकलता, वह तो अब कल्पना की ही बात है।

'ईसुरी' के अंक नहीं देख पाया था। देखना आरंभ किया तो धीरे-धीरे निरन्तर प्रभावित होता गया। अब प्रभावित भी हूँ और हर्षित भी हूँ। पहले यह सुन रखा था कि आपका विभाग 'ईसुरी' नाम की पत्रिका प्रकाशित करता है। इस समाचार से यह धारणा बनी थी कि स्थानीय लोक-साहित्य को प्रोत्साहन देने वाली कोई छोटी-मोटी पत्रिका निकल रही होगी। ये पाँचों अंक देखकर अभिभूत हूँ। इतने व्यापक फलक पर इतनी समृद्ध सामग्री का इतना प्रबुद्ध संकलन प्रस्तुत किया जा रहा होगा, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। यह पत्रिका तो बुन्देलखण्ड के समग्र सारस्वत स्वरूप की अद्वितीय प्रतिनिधि है। किसी विश्वविद्यालय के एक विभाग के एक पीठ की पत्रिका ऐसी हो सकती है, इसकी मुझे सपने में भी आशा न थी।

बुन्देलखंड का कौन सा पक्ष है जो अछूता है अथवा जिस पर संकलित सामग्री स्तरीय नहीं है? साहित्य का रचनात्मक और शोधात्मक पक्ष समान रूप से संग्रहीत है। प्राचीन और नवीन कृतियाँ समान रूप से प्रकाशित हैं। पूर्व प्रकाशित किन्तु दुर्लभ कृतियों का पुनर्मुद्रण है तो अप्रकाशित पांडुलिपियों का प्रकाशन भी है। अप्रमाणिक प्रस्तुति के बजाय संपादन और पाठ निर्धारण का निकष सक्रिय है। इतिहास, पुरातत्व भी इसमें सम्मिलित हैं तो समसामयिक संस्कृति की परिचायिका भाषा-साहित्य-विषयक सामग्री भी इसमें है।

मैं अभिभूत हूँ, मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार करें। इन अंकों के लिए अत्यन्त आभारी हूँ। आपकी साधना का यह शिखर देखकर मैं विस्मित पुलकित हूँ।

झाँसी की रानी के दुर्लभ पत्र प्रकाशित करके आपने भारतीय इतिहास का एक पृष्ठ अकाट्य रूप से ज्योतिर्मय कर दिया है। अनेक विभूतियाँ और कृतियाँ 'ईसुरी' के पृष्ठों में सुरक्षित हो गई है। निश्चय ही बुन्देली और बुन्देलखण्ड का सारस्वत तैलचित्र देखने का इच्छुक व्यक्ति 'ईसुरी' पर दृष्टिपात करने को विवश होगा, क्योंकि उसे जो और जितना यहाँ मिलेगा, अन्यत्र नहीं मिल पाएगा।

मैं आपसे इस बात में पूरी तरह सहमत हूँ कि किसी अंचल के वैभव की समृद्धि का आकलन उस अंचल को देश या संसार के सन्दर्भों से पृथक नहीं करता। अंचलों और उपांचलों की समृद्धि के ऐसे सर्वांगीण, प्रामाणिक और स्तरीय संकलन सब ओर से होते होंगे तो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ धरती की गन्ध लेकर स्वयं सामने आ जाएँगे, ऊपर से आदर्शवादी कल्पनाओं के परिधान में आरोपित नहीं होंगे।

अनुवादवाली बात भी आपने सही कही है। अनुवाद-कार्य सदैव कठिन होता है - चाहे दो भाषाओं के बीच हो, चाहे एक ही भाषा की दो बोलियों के बीच। लेकिन अनुवाद असंभव कहीं नहीं होता क्योंकि वह सिद्धान्ततः एक ही स्थिति को दूसरे माध्यम में व्यक्त करने का उपक्रम है और कोई भाषा या बोली माध्यम के रूप में अक्षम नहीं होती। यह कहना भी सही नहीं है कि हिन्दी की बोलियों में परस्पर अनुवाद की बात इसलिए भी नहीं उठती कि वे अन्ततः 'हिन्दी' ही हैं। हिन्दी में भी भेद हैं। यही नहीं, प्रयोग-क्षेत्र के विस्तार-भेद भी उल्लेखनीय होते हैं। उदाहरणार्थ, अवधी के 'मैं' और 'हम' मानक हिन्दी के 'मैं' और 'हम' का अर्थ देते हैं, लेकिन केवल व्याकरण के धरातल पर। प्रयोग-क्षेत्र का विस्तार अवधी तथा मानक हिन्दी में भिन्न-भिन्न हैं 'मैं तुम्हें गोली मार दूँगा' के बुन्देली अनुवाद के प्रसंग में जो, दो संभावनाएँ आपने प्रस्तुत की हैं ('हम तुम्हें गोली मार देहें' तथा 'हम तुमाइ घींच काट लेहें') उनमें भी मुहावरे के व्याप्ति-विस्तार का प्रश्न समाहित है और कदाचित् 'मैं-हम' की अवधी वाली स्थिति भी विद्यमान है। मानक हिन्दी की कृतियाँ बुन्देली भाषी अवश्य पढ़ और समझ लेते होंगे, इस दृष्टि से उनका बुन्देली अनुवाद अनावश्यक जान पड़ सकता है, लेकिन प्रयोग-क्षेत्र के स्तर-भेद की सूक्ष्म समीक्षा में इससे भी सहायता मिलती है। बुन्देली में रचित गद्य-पद्य उसकी अपनी सूक्ष्म उक्ति-क्षमताओं का उद्घाटन करता है, जिसका आकलन हिन्दी की अन्य बोलियों तथा मानक हिन्दी की पृष्ठभूमि में करना सार्थक परिणामों की ओर से जाने वाला उपक्रम होगा।

अमिताभ - व्याख्यान के व्यय की राशि आपके पास पहुँची की नहीं।

- दे.शं. द्विवेदी

संदर्भ -

१. अब डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी का शब्द कोश उपलब्ध है। यह शब्द कोश 'ईसुरी' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होता रहा है।

- ९, विद्यापुरम्, मकरोनिया कैम्प, सागर

डब्ल्यू.एच. स्लीमैन के यात्रा-वृत्तान्त में टीकमगढ़

(रैम्बिल्स एण्ड रिकलैक्शंस ऑव एन इंडियन ऑफीशियल' के आधार पर)

- के.बी.एल. पाण्डेय

{प्रस्तुत पुस्तक के लेखक बंगाल आर्मी के लेफ्टीनेंट कर्नल (बाद में मेजर जनरल, के.सी.बी., सर) स्लीमैन भारत में ब्रिटिश शासन के महत्त्वपूर्ण सिविल प्रशासन के पदों पर कार्यरत रहे हैं। नरसिंहपुर, जबलपुर और सागर के कलेक्टर रहने के अलावा उन्हें ठगी के उन्मूलन के लिये जबलपुर में सुपरिण्टेण्डेंट भी बनाया गया था। स्लीमैन झाँसी, ग्वालियर और लखनऊ में भी पदस्थ रहे हैं

विलियम हेनरी स्लीमैन स्वास्थ्य-लाभ के लिये १८३५ ई. में अवकाश लेकर शिमला गये। इस यात्रा में वह जबलपुर, दमोह, सागर, टीकमगढ़, झाँसी, दतिया, ग्वालियर, आगरा, भरतपुर, दिल्ली, मेरठ होते हुए शिमला पहुँचे। इस यात्रा में विभिन्न स्थानों पर रुकते हुए स्लीमैन ने उनका जैसा भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और लोक जीवन सम्बन्धी वर्णन किया है वह लेखक की जिज्ञासा और निरीक्षण-क्षमता का परिचायक है। यात्रा के दौरान लिखे गये संस्मरणों में बाद में कुछ संवाद और साक्षात्कार जोड़कर स्लीमैन ने यह पुस्तक तैयार की।

स्लीमैन इस यात्रा में ८ दिसम्बर १८३५ ई. से १२ दिसम्बर तक टीकमगढ़ राज्य के अतिथि रहे। प्रस्तुत पुस्तक के बाईसवें से छब्बीसवें अध्याय तक टीकमगढ़ प्रवास का वर्णन है। इन कुछ दिनों में ही स्लीमैन ने जितने विविध रूपों में अपने अनुभव व्यक्त किये हैं वे रोचक भी हैं और सूचनापरक भी। कहीं-कहीं लोगों से सुनी जानकारी के कारण अथवा लेखक के आत्मपरक विश्लेषण के कारण तथ्य सम्बन्धी भूलें हो सकती हैं। फिर भी पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व हैं।

टीकमगढ़ में प्रवास के अध्यायों में वह केवल टीकमगढ़ का वर्णन नहीं करते बल्कि सन्दर्भानुसार वह सागर, नर्मदा क्षेत्र, मालवा की कृषि, बुन्देलखण्ड के राजपूतों, लोक विश्वासों, हरदौल, सूखा, अकाल आदि का वर्णन भी करते हैं। लेखक की कुछ टिप्पणियाँ कठोर भी हैं और कहीं कहीं उसका औपनिवेशिक दृष्टिकोण भी झलकता है। प्रस्तुत संस्करण पहला है और १८४४ ई. का है।

यहाँ प्रस्तुत पुस्तक के टीकमगढ़ से सम्बन्धित पाठ के कुछ अंशों का अनुवाद दिया गया है। यह पूरे पाठ का अविकल अनुवाद नहीं है। - सम्पादक}

८ दिसम्बर १८३५ ई. को १२ मील की यात्रा के बाद ओरछा के राजा की वर्तमान राजधानी टेहरी पहुँचे। अपने पिछले स्थान से लगभग तीन मील दूर हमने ओरछा राज्य के सीमावर्ती गाँव अस्तौन में प्रवेश किया,, जहाँ घास के खुले मैदान के बीच में एक टीले पर बहुत सुन्दर छोटा सा किला है। मुझे सागर और नर्मदा क्षेत्रों के लोगों तथा इस क्षेत्र के लोगों की मानसिकता और आचार-विस्तार में काफी अन्तर दिखायी दिया।

राजा को हमारे आगमन की सूचना हमारे पहुँचने के एक दिन पहले ही लिधौरा में मिली। वह वहाँ 'शालिग्राम' और 'तुलसी' के विवाह-समारोह के आयोजन के बाद विश्राम कर रहे थे और लोगों को विदा कर रहे थे। लिधौरा टेहरी के उत्तर पश्चिम में २७ मील की दूरी पर स्थित है। राजा ने दो ऊँट सवारों (सांड़नी) के द्वारा हमारे पास एक खरीता' (पत्र) भिजवाया, जिसमें उन्होंने निवेदन किया कि मैं उन्हें अपनी यात्रा की गतिविधियों की जानकारी दूँ और उनके साथ अपनी मुलाकात इस तरह निर्धारित करूँ कि उनके आदर सत्कार में कोई कमी न लगे अर्थात् बहुत ही विनम्र और स्पष्ट शब्दों में उनका अभिप्राय था कि मैं उनकी राजधानी से एक पड़ाव पहले ही रुके रहने की सहमति दे दूँ ताकि राजा (लिधौरा से लौटकर) पूरी उचित शान और औपचारिकता से आधे रास्ते में मेरा स्वागत कर सकें। ये संदेश वाहक मुझसे लगभग ३१ मील की दूरी पर शाम को बम्हौरी में मिले। मैंने उन संदेशवाहकों से वापस एक खरीता भिजवाया जो राजा के पास ऊँट सवारों के क्रमिक अभिचालन से आधी रात में पहुँचा।

राजा मेरा स्वागत करने के लिए राजधानी को रवाना हुए और चूँकि मैं आधे रास्ते में उनसे मिलने के लिए नहीं रुका रहना चाहता था, अतः एक ही समय वह अपने महल में और हम अपने तम्बू में पहुँचे। उसी समय उनकी पीतल की दो मैदानी तोपों ने सलामी दी।

हम लोग ९ दिसम्बर को टेहरीं में रुके और लगभग ११ बजे राजा भव्य रूप से सुसज्जित हाथियों, ऊँटों और घोड़ों के शानदार जुलूस के साथ बधाई देने मेरे पास आये। उनके साथ चल रहे वाद्य यंत्रों की ध्वनि बहुत तेज थी। मेरे दोनों तम्बू लग चुके थे। उनमें से एक हमेशा की तरह ऐसी मुलाकातों के प्रयोजन के लिए सजा दिया गया था। राजा तम्बू के प्रवेश-द्वार से बीस कदम पहले तक अपने हाथी पर आये। वहाँ हाथी को बिठाया गया। तब राजा हाथी से उतर कर जमीन पर पैर रखे बिना अपने शानदार तामझाम में बैठ गये। वह इस तरह मेरे तम्बू तक आये, जहाँ मैंने उनका स्वागत किया और सहज रूप से गले मिलने के बाद मैं उन्हें बैठने के लिए कुर्सियों तक लाया। कुछ कुर्सियाँ हमारे और राजा के विशिष्ट लोगों के बैठने के लिये रखी गयी थीं। हम लोगों ने लगभग उन सभी विषयों पर बात की जिन पर ऐसे अवसरों पर प्रायः की जाती है। विशेष रूप से शालिग्राम और तुलसी के विवाह के शुभ समारोह पर बात हुई जिसमें हिज हाइनेस लिधौरा में इतनी धार्मिकता के साथ व्यस्त रहे। डेढ़ घंटे की मुलाकात के बाद मैं उन्हें दरवाजे तक विदा करने गया जहाँ से वह तामझाम में बैठे और फिर जमीन पर उतरे बिना हाथी पर बैठ गये।

इस तामझाम को नालकी कहा जाता है। यह उन तीन सम्मान प्रतीकों में से एक है जो मुगल बादशाहों ने भारत के प्रथम श्रेणी के स्वतंत्र राजाओं को प्रदान किये थे। उनका उपयोग केवल वही कर सकता था जिसे स्वयं अथवा उसके पूर्व राजा को यह सम्मान मिला हो। ये तीन मरातिब थे - नालकी, मत्स्य चिन्ह या

माही परातिब और मयूर पंखों से बना पंखा। मत्स्य-चिन्ह अथवा माही मरातिब प्रसिद्ध नौ शेरवां ए- आदिल के पौत्र और फारस के राजा खुसरो परवेज ने आरंभ किया था। बाद में भारत में तैमूर वंश के बादशाह यह मरातिब अपनी मर्जी से बिना धार्मिक भेदभाव के भारत के बड़े देशी राजाओं को प्रदान करने लगे।

मैं दूसरे दिन की प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। अतः राजा के पास मिलने के लिये मेरा अपरान्ह में जाना तय हुआ। लेफ्टीनेंट टॉमस, श्रीमंत[२] और मैं लगभग ४ बजे हाथियों पर रवाना हुए। हमारे साथ हमारे और श्रीमंत के सैनिक थे। छड़ीबरदार भी हमारे साथ थे लेकिन राजा के भव्य जुलूस की तुलना में हमारा प्रदर्शन बहुत ही साधारण था। हम लोग राजा के दरबार हॉल तक जाने वाली सीढ़ियों के पास उतरे। वहाँ से दो प्रमुख अधिकारी हमें हॉल में प्रवेश द्वार तक ले गये। जहाँ राजा ने स्वयं हमारा स्वागत किया। हमारी बातचीत बहुत अच्छी तरह चली।

हम लोग स्वर्गीय राजा और उनके लड़के की समाधियाँ देखने को उत्सुक थे। इसलिए हम राजा के पास आधा घंटा ही रुके। ये समाधियाँ नगर की प्राचीर के बाहर बहुत सुन्दर बगीचे में बन रही थीं। हमें विदा करने राजा हमें सीढ़ियों के ऊपर तक लाये और वही दो अधिकारी हमें नीचे तक लाये और हमारे साथ घोड़ों पर समाधियों तक गये। हमारे स्वागत के लिए एकत्र भीड़ से उठी नगर की धूल और दिन भर के दरवारी समारोहों के बाद सुन्दर बगीचे में घूमना बहुत सुखद लगा और मैं अँधेरा होने तक वहीं घूमता रहा। राजा ने मेरे वहाँ जाने के पूर्वानुमान से पानी के सभी हौज भरवा दिये थे और जैसे ही हम वहाँ पहुँचे तो अलंकृत फव्वारों के सैकड़ों मुखों से हवा में पानी की वर्षा होने लगी। हमारे पुरातत्व प्रदर्शक ने हमें बताया था कि अगर हम पुरानी राजधानी ओरछा जायें तो वहाँ हमें यह चीज अपनी पूर्णता में दिखायी देगी और 'सावन' तथा 'भादों' के जल प्रवाह में हमें बिजली का प्रकाश भी दिखेगा और उसकी गरज भी सुनायी देगी।

बुन्देलखण्ड की इस प्राचीनतम रियासत के सभी राजाओं का अन्तिम संस्कार ओरछा में ही होता रहा है, भले ही राजधानी ओरछा से हट कर टेहरी हो गयी। विगत राजा (विक्रमाजीत) इनकी रानी और उनके पुत्र की ये समाधियाँ टेहरी में पहली बार बनी हैं। वर्तमान राजा मथुरादास[३] १८३४ ई. में अपने भाई विक्रमाजीत के निधन के बाद गद्दी पर बैठे। विक्रमाजीत ने अपने सामने ही अपने इकलौते प्रिय पुत्र राजा बहादुर[४] को शासन सौंप दिया था लेकिन राजा बहादुर की मृत्यु पिता की मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व ही हो गयी। इसलिए विक्रमाजीत ने पुनः राज्य संभाला और अपनी मृत्युपर्यन्त वह राजा रहे। वह काफी समर्थ व्यक्ति थे, लेकिन उनका स्वभाव कठोर और नीतिविहीन था। उनका पुत्र भी उन्हीं की तरह था। वर्तमान राजा का स्वभाव और व्यवहार कोमल है यद्यपि वह बौद्धिक रूप से कमजोर हैं।

'शालिग्राम' और 'तुलसी' के विवाह पर प्रति वर्ष राज्य के कम से कम दो लाख रुपये अथवा राज्य की वार्षिक आय का एक तिहाई धन खर्च हो जाता है। राज्य के सर्वोच्च अधिकारियों को बहुत कम, मुश्किल से भरण पोषण लायक वेतन मिलता है और अप्रत्यक्ष रूप से अर्जित धन वे इस डर से खर्च नहीं कर पाते कि कहीं वह प्रकट हो जाने पर उन्हें अपनी जान से हाथ न धोना पड़े। राजा के सभी जागीरदार उनके ही समुदाय के अर्थात् राजपूत हैं। वे तीन कुलों बुन्देला, पमार (परमार) और धँधेरे-में बँटे हैं। कोई बुन्देला अपनी ही कुरी की लड़की से विवाह नहीं कर सकता। उसे पमार या धँधेरे में विवाह करना पड़ता है। यही नियम दूसरे दो कुलों पर भी लागू होता है। ये राजपूत आपस में भले ही लड़ते रहें लेकिन किसी तीसरे के विरुद्ध वे एक हो जाते हैं। मेरा विश्वास है कि बुन्देलखण्ड के राजपूतों से अधिक बहादुर लोग कहीं नहीं हैं जो शैशव से ही तलवार लेकर चलते हैं।

टेहरी के पास हमने लोगों को एक तालाब से एक डोंगी (ढेंकुली) द्वारा गेहूँ के खेत की सिंचाई करते देखा। यह पद्धति मेरे लिये नयी थी। पानी की सतह खेत से तीन फीट नीचे थी। डोंगी का भीतरी खुला सिरा खेत की नाली के मुहाने पर स्थित था। उसका बाहरी सिरा एक रस्से द्वारा एक बल्ली के बाहरी सिरे से लटका था। वह स्वयं आड़ी लकड़ियों से लटका था। इस बल्ली के भीतरी सिरे पर भारी पत्थर बँधे थे। बाहरी सिरे पर पाँच आदमी डोंगी को पानी में डुबाते थे और नाली में खाली करते थे। नगर के चारों तरफ प्रायः रहँट से सिंचाई होती है।

१० दिसम्बर को हम १२ मील दूर बिलगाँय गाँव पहुँचे। टेहरी की धूल और वहाँ के दरवारी समारोहों की थकान के बाद कुछ सुन्दर पेड़ों की छाया के नीचे एकान्त स्थल पर बितायी वह सुबह मुझे बहुत सुखद लगी। पेड़ पर चिड़िया गा रही थी, मेरा बेटा खेल रहा था और मेरी पत्नी सफर की थकान के बाद सो रही थी। जबलपुर से चलते समय हेनरी (पुत्र) बहुत अस्वस्थ था लेकिन वायु परिवर्तन और सफर से जुड़े अनेक परिवर्तनों ने उसे पुनः स्वस्थ कर दिया था।

१८३३ ई. के अकाल में अकेले इस गाँव (बिलगाँय) में भूख से २०० लोग मर गये थे। उन्हें एक बड़े कुएँ में फेंक दिया गया था जो तभी से बन्द है। यहाँ प्रमुख रूप से खरीफ की फसल की जाती है और वर्षा ही पानी का प्रमुख स्त्रोत है। गाँव के निर्धन लोग पूरे साल एक ही मौसम की पैदावार पर निर्भर हैं। प्रत्येक परिवार को राजा से मिली आर्थिक सहायता इतनी कम है कि उससे सिर्फ उनकी और अधिक पाने की अतृप्ति बढ़ती रहती है और उनके कष्ट और लम्बे होते जाते हैं। गाँव के पास दो पहाड़ियों को जोड़ कर बनायी गयी लम्बी दीवार एक तालाब के बाँध का काम करती है, लेकिन यह दीवार सीमेंट के उपयोग के बिना गैरिक चट्टान के बोल्डरों से बनी होने के कारण पानी का संधारण नहीं कर पाती। तालाब के भराव की जमीन पर खेती हो रही है। इस जमीन के किसान से बात करने पर उसने बताया कि यह बाँध पुण्य के पैसे से नहीं बना। ऐसे अवसरों पर ब्राह्मणों और दूसरे योग्य व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है और वस्त्र दिये जाते हैं। तब इस तरह के काम पवित्र माने जाते हैं। यहाँ ऐसा नहीं हुआ। इसलिए इस निर्माण का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। लोग इसके निर्माता का नाम तक भूल गये हैं। साल दो साल पहले यह

गाँव बड़ा था और यहाँ की आबादी काफी थी। आज यहाँ केवल दो साधारण झोपड़ियाँ हैं जिनमें दो दयनीय परिवार रहते हैं।

११ दिसम्बर को हम लोग १२ मील दूर बम्हौरी कस्बे में आये। यहाँ से दक्षिण पश्चिम की ओर स्फटिक पहाड़ियों की श्रृंखला फैली है। अन्य पहाड़ियों से ऊँची लहरदार शिखर वाली और फेन जैसी यह श्रृंखला ऐसी लगती है जैसे किसी बिखरती हुई लहर को अचानक सर्वशक्तिमान ने हाथ बढ़ा कर रोक लिया हो और श्वेत पाषाण में बदल दिया हो। एक सुन्दर तालाब के तट पर स्थित बम्हौरी एक अच्छा छोटा कस्बा है। पिछले अकाल के समय इसके पानी ने बम्हौरी और आस-पास के हैं अन्य कस्बों के लोगों को जीवित रखा था। सम्पूर्ण अवर्षा के मौसम में भी इस तालाब का पानी इन सभी कस्बों और गाँवों के लिए पर्याप्त होता है। यह तालाब दक्षिण पूर्व में एक कृत्रिम बाँध या दीवार से बना है, जिसका एक सिरा स्फटिक चट्टानों से जुड़ा है।

इस सुन्दर गाँव से लिधौरा केवल चार मील दूर दिखाई दे रहा था। मुझे बताया गया कि अपने भाई के बाद गद्दी पर बैठने से पहले वर्तमान राजा यहीं रहते थे। बहुत से लोग 'शालिग्राम' और 'तुलसी' के विवाह समारोह के बाद लौट रहे थे। उन्होंने बताया कि वहाँ बहुत भीड़ थी - कम से कम एक लाख पचास हजार। राजा की ओर से सबको चार दिन तक भोजन कराया गया। यात्रा का किराया केवल विशेष आमंत्रितों को ही दिया गया जैसे कि सागर के मेरे मित्र पुजारी जानकी सेवक को। लोग इस समारोह को धनुष यज्ञ कहते हैं।

शाम को हम तालाब में नौका विहार करने के इरादे से गये लेकिन स्फटिक की पर्वत श्रेणी पर पहुँच कर हमने नौका विहार की अपेक्षा पहाड़ी पर चढ़ना ज्यादा पसन्द किया। पहाड़ी श्रृंखला के दोनों ओर का दृश्य सचमुच सुन्दर था। दायीं तरफ लगभग ४ मील लम्बी और २ मील चौड़ी स्वच्छ पानी की भव्य चादर और बायीं ओर गेहूँ की फसल का उतना ही भव्य विस्तार। फसलों की समृद्ध चादर पर बीच-बीच में गन्ने के खेत और आम्रकुंज जड़े हुए से लगते थे। वह तालाब आकार में सागर के तालाब से लगभग दो गुना होगा और सिंचाई के लिये उसकी महती आवश्यकता के विचार से मुझे वह और भी सुन्दर लगा।

चन्देलराजा केवल वर्मन द्वारा निर्मित होने के कारण इस तालाब को केवलस कहते हैं। पहाड़ी की चोटी पर से देखने पर पश्चिम में लगभग ८ मील दूर हमें इससे भी बड़ा तालाब दिखायी दिया जिसे नँदनवारा ताल कहते हैं। यहं तालाब भी उसी तरह की स्फटिक पहाड़ियों की तलहटी में बना है। इस तालाब से सूखे के भीषण प्रभाव से सुरक्षा और सिंचाई का उद्देश्य और भी बड़े स्तर पर पूरा होता है।

जैसे जैसे हम बुन्देलखण्ड में आगे बढ़ते गये, हमें स्वरूप, व्यवहार और बुद्धिमत्ता की दृष्टि से बेहतर लोग दिखायी दिये। बुन्देलों का स्वभाव और व्यवहार निर्भीक होता है। इसे शुरू में उनकी धृष्टता और अभद्रता समझने का भ्रम हो जाता है लेकिन बाद में समझ में आता है कि ऐसा नहीं है। मुझे हर जगह राजा के कर्मचारी सावधान, स्पष्टवादी और विनम्र दिखायी दिये और यहाँ के किसान भी हमारे सागर और नर्मदा क्षेत्र के किसानों से हीन नहीं थे। जिन गाँवों से हम गुजरे उनमें से अधिकतर गाँवों की स्त्रियाँ हमारे स्वागत में कलश लेकर निकलीं। एक स्त्री अपने सिर पर पानी से भरा पीतल का चमकदार घड़ा लेकर चलती थी और अन्य स्त्रियाँ उसके साथ चलती थीं। वे सब मिलकर लोकगीत गाती हैं। यह गीत आगन्तुक के दृष्टिगत होने से शुरू होकर उसके ओझल होने तक चलता रहता है। आगन्तुक कलश में एक रुपया डालता है। स्त्रियाँ उससे गुड़ खरीदकर आपस में बाँट लेती हैं। पुरुष इसे नहीं खाते। जब स्त्रियाँ गीत गाती हैं उस समय पुरुष अलग आदरपूर्वक शान्त खड़े रहते हैं। यह प्रथा पूरे भारत में प्रचलित है या कम से कम उन भागों में तो है ही जो मैंने देखे हैं। मैंने देखा कि भारत के एक गवर्नर जनरल अपने पूरे दल के साथ इस तरह के समूह के पास से गुजरे लेकिन न तो उन्हें मालूम था और न उन्होंने जानना चाहा कि यह क्या है? मैं थोड़ा पीछे रह गया और मैंने चुपचाप कलश में चाँदी का सिक्का डाल दिया मानो वह गवर्नर जनरल की ओर से हो।

इन सात गाँवों के दीवानी, फौजदारी और आर्थिक मामलों के प्रशासक को दो सौ रुपये वार्षिक वेतन मिलता है। वह राजा की ओर से राजस्व वसूल करता है और गाँव के बुजुर्गों और मुखियाओं की मदद से दीवानी और फौजदारी के छोटे मोटे मामले निबटाता है। गंभीर मामले राजा और उनके मंत्रियों के पास भेजे जाते हैं। इन गाँवों का प्रशासक लगभग तीस वर्षीय राजपूत है। उसकी सात पूर्व पीढ़ियाँ इसी पद पर ओरछा राज्य की सेवा कर चुकी हैं और उसे विश्वास है कि अगर अक्षमता या निष्ठाहीनता के कारण उन्हें हटाया नहीं गया तो उसकी अगली नई पीढ़ियाँ भी इसी तरह कार्य करती रहेंगी।

राजा का जो चोबदार हमारे साथ है उसका वेतन पन्द्रह रुपये मासिक है। दीवान को एक हजार रुपये वार्षिक मिलते हैं और फौज का वेतन बाँटने वाले बख्शी को यही वेतन मिलता है। राज्य के यही दो सबसे बड़े अधिकारी हैं और हालाँकि उन्हें परोक्ष रूप से अच्छी आय हो जाती है पर वे उसका प्रकट रूप से उपयोग नहीं कर सकते कि कहीं राजा या उनके उत्तराधिकारी उनके साथ भी वही व्यवहार न करें जो ऐसी स्थिति में उनके पूर्व अधिकारियों के साथ हुआ है।

टेहरी में जब राजा हमसे भेंट करने आये उस समय की एक घटना उल्लेखनीय है। लेफ्टीनेंट टॉमस ने अपने बगल में बैठे श्रीमंत से उनकी सोने की मूठ वाली तलवार देखनी चाही। श्रीमंत उसे पकड़े रहे और उन्होंने कहा कि मैं दिन में स्वयं आपके पास आकर तलवार दिखा दूँगा और उसका इतिहास भी बताऊँगा। टॉमस ने मुझे यह बात बतायी और कहा कि उन्हें श्रीमंत का व्यवहार बहुत अशिष्ट लगा। दिन में श्रीमंत ने आकर स्पष्ट किया कि अगर आप वहाँ देखने के लिए म्यान में से मेरी तलवार निकालते तो वहाँ राजा के सैनिकों और सेवकों की उपस्थिति में इसके गंभीर परिणाम हो सकते थे। अगर बाहर खड़ा कोई व्यक्ति तलवार की चमक देख लेता तो सोच सकता था कि भीतर राजा

के साथ विश्वासघात हो रहा है और वह रक्षा के लिये चिल्ला पड़ता हैं तब श्रीमती स्लीमैन और बच्चे सहित हम सबके टुकड़े टुकड़े कर दिये गये होते। टॉमस इस बुद्धिमत्तापूर्ण स्पष्टीकरण से संतुष्ट ही नहीं हुए बल्कि बहुत प्रसन्न भी हुए। उन्होंने बताया कि वह वास्तव में तलवार खोलकर देखना चाहते थे।

एक गरीब अधनंगा व्यक्ति जिसकी हालत पिछले अकाल के कारण भिखारी जैसी हो गयी थी, मुझे रास्ता बताने मेरे घोड़े के साथ साथ दौड़ रहा था। उसने कहा कि मुझे ऐसा लगता रहता है जैसे मैं ठंडे पानी के कुए में पड़ा हूँ। जाड़े का मौसम तो उनके लिये हैं जिनके पास कपड़े हो।। हम जैसों को तो गर्मी का मौसम ही अच्छा है। उस व्यक्ति ने यह भी कहा कि विगत राजा कठोर थे पर न्यायी थे। उन्होंने अपनी सद्‌भावना और अपने इकबाल से इस राज्य को सुरक्षित रखा। अब वर्तमान कमजोर बुद्धि वाले राजा के अन्तर्गत इस रियासत को भगवान और कम्पनी की सहिष्णुता ही बचा सकती है। उस व्यक्ति को यह सोचते हुए दुःख था कि वह बुन्देलखण्ड की इस प्राचीनतम रियासत को परतंत्र होते देखने को जीवित है। इस गरीब, वस्त्रहीन और भूखे आदमी तक के मन में अपने राज्य के प्रति भक्ति और अभिमान था।

हमें इन देशी रियासतों को उन्ही के राजाओं के अन्तर्गत रहने देना चाहिए, भले ही उनके उत्तराधिकारी का दावा कमजोर या दोषपूर्ण हो। इसके दो कारण है। पहला, इससे अन्य देशी राजाओं के मन में पहले से ही व्याप्त यह आशंका दूर होगी कि हम धीरे-धीरे उन सभी के राज्य हड़प जाना चाहते हैं। दूसरे, भारत के लोगों को अपने राज्यों की हमारे शासन से तुलना करके यह देखने का अवसर मिलेगा कि हमारे शासन में बेहतर लाभ है। १३ दिसम्बर को हम बरुआसागर पहुँचे।

टिप्पणी -

१. खरीता नफीस मलमल की थैली के भीतर बढ़िया जरीदार कपड़े की थैली में रखा पत्र होता है। थैली का मुँह रेशम की डोरी से बँधा होता है और डोरी के सिरे पर दोनों ओर चपड़े पर राजमुद्रा अंकित होती है।

२. देवरी के जागीरदार रामचन्द्र राव। इनके पूर्वज धुंधू दत्तात्रेय को १७६७ ई. में पेशवा ने यह जागीर दी थी।

३. तेज सिंह (१८३४ ई.-१८४१ ई.)

४. धर्मपाल सिंह (१८१७ ई. १८३४ ई.)

- ७०, हाथी खाना, दतिया म.प्र.

बुन्देली बसन्त बहार

(महाकवि कालिदास कृत ऋतुसंहार का बुन्देली अनुवाद) **- प्रभुदयाल श्रीवास्तव 'पीयूष'**

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं, स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखा प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये! चारुतरं वसन्ते।।

फूले फूल बिरछ मुसका रए, जल में कमल सुहारए,
बैरइ बैर बसंती, चंदन, और अगर माकारए
रैनें भइँ सुख दैन और दिन, रमन जोग मन भारए
प्यारी! का कयँ ई बसन्त में, बांके सबइ दिखारए"

कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैनितम्ब बिम्बानि विलासिनीनाम्।
तन्वंशुकैः कुंकुम रागगौरैर्लकिंयन्त स्तनमण्डलानि।।

जोवन के मद में मतवारीं, भई कामनी नारी
लंकदार कम्मर सँग भुम रयें-कूले भौतइ भारी
उनके ऊपर लेत लहरिया, रँगी कुसुम रँगसारी
केसर में रँग अँगिया झीनी, छतियाँ ढाँकें प्यारी।।

तनूनि पाण्डूनि मदालसानि, मुहुर्मुहुर्जम्भण तत्पराणि।
अंगान्यनंगः प्रमदो जनस्य, करोति लावण्य ससम्भ्रमाणि।।

गोरौ तन पियरौ सौ परगऔ, मन मस्ती सें भर गऔ
बेर बेर बे लेत जिमाई, हियँ आलस घर कर गऔ।
चकवानी भूलीं सीं हेरें, नोंनों रूप निखर गऔ।
मतवारी के अंगन, डेरा, कामदेव कौ डर गऔ।।"

नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु।
मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः, स्त्रीणामनंगने वृहुधास्थितोऽद्य।

तिरियन तन अब काम बिलमरए, अंग अंग में रम रए
नैनन में चंचल हो, गलुअन, पियरे पर कें थम रए
भए कठोर अँगिया के भीतर, आलस मद में भम रए
जंगियन में भारी भए जा रए, कम्मर में कछु कम रए।"

अंगानिनिद्रालस विभ्रमाणि, वाक्यानि किंचिन्मदलालसानि।
भ्रूक्षेप जिहमानि च वीक्षितानि, चकार कामः प्रमदा जनानाम्।।

आलस अंग अंग खों घेरें, मस्ती मदन कुड़ेरें
ऊ रस में सन वानी कँप रइ, सैनन भाव उकेरें
चंचल चपल भोंय भइँ उनकीं, तनक तरीछी हेरें
देखौ जे मतवारी नारें, परीं काम के फेरें।।

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन मचं प्रियां चुम्बति राग हृष्टः।
कूजद्द्विरेकोऽप्ययमम्बुजस्थः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटुः।।

पीकें पिक मस्ती में भर रए, आम मौर रस झररए
चूम लेत कोयलिया कौ मों, मतवारे मन हर रए
कमल फूल पै भोंरा भुमरए, लैन पराग उतर रए
भोंरी के मन भारइ, ऐसी, लल्लो चप्पो कर रए।।

कुन्दैःसविभ्रम वधू हसितावदातै रुद्योतितान्युपवनानि मनोहराणि।
चित्तं मुनेरपि हरन्ति निवृतरागं, प्रागेवरागमलिनानि मनांसियूनाम्।।

जे फूले मुचकुन्द चिलग रए, उपवन नीके लग रए।
मानों हँस रइ नार नवेली, अंग अनंग उमगरए
बैरागन के साफ सुद्ध मन, इनें देख कें डग रए
उन छैलन की का कयँ? जिनके मन फैलउँ सें रँग रए"

कान्तामुखद्युतिजुषाम चिरोदगतानां, शोभां परां कुरबक द्रुममंजरीणाम।
दृष्ट्वाप्रिये सहृदयस्य भवेन्न कस्य कन्दर्पबाण निकरै व्यथितं हि चेतः।।

"कामिन के मुख सी मन भा रइँ तन मन झलक दिखा रइँ
बिरछ कुरैया के जे जिनकीं, मंजनियां मुस्का रईं
हैं बांकी, सो मन वारन के, मन में अगन लगा रइँ
ऐसी को? जे के जी की जे, विथा न और बड़ा रइँ"

-चित्रांश कॉलोनी, मऊ रोड, टीकमगढ़

बुन्देली लोक साहित्य में वाद्य-यन्त्र

- डॉ. (श्रीमती) गायत्री बाजपेयी

साहित्य, संगीत एवं कला मानव जीवन के लिए आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। इनके अभाव में मनुष्य पशुतुल्य है। कहा भी गया है साहित्य संगीत कला विहीनः। साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।।

साहित्य, संगीत एवं कला के द्वारा ही मानवीय सम्वेदनाएँ परिपुष्ट होती हैं तथा सामाजिकता का विकास होता है। साथ ही सांसारिक कष्टों, चिन्ताओं एवं यन्त्रणाओं को भूलकर मनुष्य इनमें लीन हो शीतलता व शान्ति का अनुभव करता है। साहित्य, संगीत एवं कला की यह अमृत-स्त्रोतस्विनी मनुष्य मात्र के लिए आनन्द की अनुपम वस्तु है। किसी भी समाज की संस्कृति उस समाज के साहित्य संगीत एवं कलाओं में प्रतिबिम्बित होती है। बुन्देली संस्कृति का दिग्दर्शन भी बुन्देली साहित्य, संगीत एवं कलाओं में प्रतिबिम्बित है। यहाँ साहित्य, संगीत एवं कलाएँ विशेष समृद्ध व समुन्नत रही हैं और उन्होंने बुन्देली लोक संस्कृति को सजाने संवारने में महती भूमिका निभाई है। वास्तव में यदि विचार किया जाए तो जीवन के नैसर्गिक सम्बन्धों का जितना स्वाभाविक दिग्दर्शन लोक संगीत में होता है, उतना किसी अन्य विधा में नहीं। लोक संगीत जीवन के अत्यधिक निकट होता है वह जीवन की सुखात्मक दुःखात्मक अनुभूतियों के प्रकटीकरण का सशक्त माध्यम है। जीवन के प्रत्येक अवसर पर चाहे वह जन्म का हो, सगाई का हो, विवाह का हो या कोई मांगलिक अवसर हो कोई न कोई गीत अवश्य गाया जाता है, वाद्य अवश्य बजाया जाता है। यहां तक कि मृत्यु के अवसर पर भी अवसाद गीत गाये जाते हैं और उल्टे शोक ध्वनि करते हुये वाद्य बजाये जाते हैं।

लोक संगीत और लोकवाद्य एक दूसरे के पूरक हैं एक के अभाव में दूसरे की कलात्मक हृदयाकर्षक प्रस्तुति असम्भव है। वास्तव में वाद्ययंत्र संगीत एवं संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। प्राचीनकाल से ही वाद्यों का न केवल संगीत के कलात्मक रूप से लगाव रहा है, वरन् उनका प्रतीकात्मक एवं अभिव्यंजनात्मक रूप जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करता दृष्टिगत होता है। वाद्यों के महत्व को रेखांकित करता यह कथन विशेष उल्लेखनीय है "वाद्य एक ऐसा उपकरण है जो संगीतात्मक ध्वनि तथा उसकी गति का हमें बोध कराता है।"

संगीत की तीन विधाएँ हैं - गायन, वादन और नृत्य। तीनों परस्पर एक दूसरे पर आश्रित हैं, एक के अभाव में दूसरा पूर्णतः को प्राप्त नहीं होता। संगीत को चित्ताकर्षक एवं आनन्दमय बनाने में वाद्ययन्त्र महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। लोकसंस्कृति के अध्येता वसन्त निरगुणे के मतानुसार "लोक संगीत के उद्भव और स्वरूप निर्माण में वाद्यों की प्रमुख भूमिका रही है। जिस जगह अधिक से अधिक वाद्य होते हैं वहां का संगीत उतना ही वैविध्यपूर्ण और समृद्ध होता है। जहाँ जहाँ वाद्य जाते हैं वहां वहां वे अपनी संस्कृति को ले जाते हैं। लोक वाद्यों के आकार-प्रकार, निर्माण प्रक्रिया, वादन शैलियाँ तथा उनकी ध्वनियाँ वहां की संगीत परम्परा और संस्कृति की परिचायक होती हैं।"[1]

बुन्देली संस्कृति लोकवाद्यों की दृष्टि से धनी है। यहाँ कई प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं और विभिन्न अवसरों पर इन लोक वाद्यों का उपयोग किया जाता है। बुन्देली जन जीवन में ये लोकवाद्य इस तरह आत्मसात हो गए हैं जैसे नीर और क्षीर। यहाँ प्रत्येक अवसर पर लोकवाद्यों की महती भूमिका होती है। जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, पर्व, उत्सव, तीज, त्यौहार आदि सुअवसरों पर वाद्य बजाये जाते हैं। मृत्युपर्यन्त शव यात्रा में भी वाद्य बजाये जाने का प्रचलन है। बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होता है। जिन्हें सुविधा की दृष्टि से इस प्रकार विश्लेषित कर सकते हैं -

तत या तंत्री वाद्य - तत वाद्यों के अन्तर्गत वे वाद्य आते हैं जिनमें तार या तंतुओं का उपयोग किया जाता है।"[2] तत या तंत्री दो प्रकार के होते हैं एक तत् वाद्य और दूसरा वितत् वाद्य। तत वाद्यों के अन्तर्गत तानपूरा व इकतारा आते हैं और वितत् वाद्यों में सारंगी आता है इसे किंगरी भी कहा जाता है।

सुषिर वाद्य - सुषिरवाद्य प्रायः लोकवाद्य हैं, इन वाद्यों को फूँक कर बजाया जाता है। "लोक में निर्धनता अधिक है अतः सस्ते एवं सर्वसुलभ सुषिर वाद्यों को निर्धन एवं निम्नवर्ग के लोगों ने अपनाया है, हाँ वंशी इसका अपवाद है। चरवाहा से लेकर अट्टालिका पर रहने वाले प्रेमीबन्धु भी वंशी की स्वरावलि का आनन्द लेते है।"[3] बुन्देलखण्ड में सुषिर वाद्ययन्त्रों में शंख, बाँसुरी, मुरली, तुरही, रमतूला आदि का प्रयोग किया जाता है।

अवनद्ध वाद्य - अवनद्ध का शाब्दिक अर्थ है चारों ओर से मढ़ा हुआ। जो वाद्य भीतर से पोले तथा चर्म से मढ़े हुये होते हैं तथा हाथ या अन्य किसी वस्तु के माध्यम से बजाये जाते हैं उन्हें अवनद्ध या आनद्ध कहा जाता है। इन वाद्यों में कुछ ऐसे होते हैं जिनमें एक ही ओर चमड़ा मढ़ा होता है जैसे नगड़िया, नगाड़, हुड़क, ढप (चंग), खँजरी, ढाक आदि इसी प्रकार के वाद्य हैं और कुछ वाद्य ऐसे होते हैं जिनके दो मुख होते हैं और दोनों मुखों पर चमढ़ा मढ़ा होता है। इसके अन्तर्गत डमरू, ढोलक, मृदंग, पखावज आदि आते हैं।

घन वाद्य - घनवाद्य प्रायः चोट या आघात द्वारा बजाये जाते हैं ये वाद्य पीतल, ताँबा एवं कास्य आदि धातुओं से निर्मित होते हैं इसमें मंजीरा, करताल, झांझ, घुंघरू, झालर, घंटा, चमीटा, कसावरी, रेकड़िया, झींका, लोटा आदि प्रमुख हैं।

बुन्देलखण्ड में प्रचलित इन लोकवाद्यों का उल्लेख बुन्देली लोक साहित्य में प्रचुरता से प्राप्त होता है। कृष्णभक्ति काव्य में मुरली (बांसुरी) को लेकर असंख्य पद लिखे गये हैं। गोपियों का श्रीकृष्ण की बांसुरी की तान सुन अपनी सुधबुध खो देना, बाँसुरी के जादू से जड़ और चेतन सभी का मोहित हो जाना, कृष्ण अनुरागिनी गोपियों का मुरली से सौतिया डाह रखना आदि विषयों पर कृष्ण भक्त कवियों ने भावानुपूरित अनेकानेक पद लिखे हैं।

उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं, जिसमें मोहन की मुरली की मधुरता गोपियों को अपने वशीभूत कर लेती है -

दोहा - श्रवन झनक जब से परी, रहो न तन में चेत।
मनमोहन की बाँसुरी, बरबस बस कर लेत।।

सैर - मन मोहन की बीन रही, अन्तस गँसरी।
न परत चैन नैनन, भर आये अँसुरी।
घर हार व सुहात सखी कीजै कस री।
बँसुरी बजाय कान्ह कीन्ह अपने बस री।।१।।
दिनरात रही मोहन के अधरन लस री।
मैं छलिया के छल में गई नाहक फँस री।
मुरझाय रही ओठन पर आई मस री।
बाँसुरी बजाय कान्ह कीन्ह अपने बस री।।२।।
मन चाहत मैं कैसे कै जाऊँ निकस री।
घर सास ननद देवरा की लगत अकस री।
ना परत चैन कसक रही अन्तस गँस री।
बँसरी बजाय कान्ह कीन्ह अपने बस री।।३।।
कोउ छीन लेव बंसी जौ लैलेउ जस री।
गा गा के तान मोह लेत पंछी पसु री।
कहै गंगाधर बाल रही नग नग कस री।
बंसुरी बजाय कान्ह कीन्ह अपने बस री।।४।।[४]

गोपियों का मुरली से सौतिया डाह रहा है। मुरली श्याम के जीवन में एक रस हो गई है। यह तथ्य कृष्णानुरागिनी गोपबालाओं को अत्यन्त कष्ट पहुँचाता है। वे कह उठती हैं -

दोहा - नन्द नन्दन कौ ऐ सखी लखो निरालौ ढंग।
संग बाँसुरी कौ करी तजौ हमारी संग।।

सोरठा -कौन जोग जप साध मोहन को बस में करौ।
तजत न पल भर साथ ब्रजपत के कर में लसै।।

सैर - जा बंसी पौर जब सै प्रभु अधर धरी है।
तब सै यह सौति बाजत धुनि मान भरी है।
ब्रज बनितन के जान बूझ बैर परी है।
बंसी ने कछू मुहनी मोहन पै करी है।[५]

बुन्देलखण्ड अंचल में मांगलिक अवसरों पर ढोलक की थाप के साथ ढपली, नगड़िया, शहनाई, नौबत आदि वाद्य बजाये जाते हैं। एक गीत दृष्टव्य है राजा दशरथ के यहाँ पुत्र जन्मोत्सव का हर्षोल्लास छाया हुआ है मन को हरण करने वाली बधाई बज रही है-

मन हरन बधाई बजे।
मन हरन बधाई बाजे भूप भवन सुख साजे।
सरस राग बजे शहनाई नौबत धन मन लाजे।
मन हरन बधाई बाजे।[६]

अयोध्या में जहाँ प्रभु श्रीराम का अंशों सहित प्राकट्य हुआ है। वहीं महाराज निमि के घर की जगत जननी जानकी का अवतरण हुआ है। इस मांगलिक अवसर पर देवताओं द्वारा हर्षाभिभूत हो दुन्दुभी बजाये जाने का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है-

अली निमिराज को बधाई है। बाजे सुर दुन्दुभी सुहाई है।
चली गजगामिनी पुर भामिनी सज।
उमग जनु सिन्धु को नदी धाई है।"[७]

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव पर भी गोकुल एवं मथुरा में बधाई बजने का उल्लेख लोक रचनाकारों के द्वारा हुआ है। चहुँ ओर आनन्द छाया हुआ है, मंगलवाद्य बज रहे हैं पुर जन एवं परिजन हर्षित हो मंगलगान गा रहे हैं -

बधैया बाज रैया हो।
बधैयां बाज रैया हो गोकुल में हरि जनम लियो।
मथुरा बजती बधैया चल री सखी सब देखन चलियो।।[८]

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव का एक गीत और दृष्टव्य है, जिसमें शंख, शहनाई आदि वाद्य यन्त्रों के बजाये जाने का उल्लेख मिलता है-

कृष्ण जन्म सुधि पाई है ब्रज में बजत बधाई है।
ग्राम ग्राम ते विविध बधूटीं नख शिख ते बन आई है।
नन्दरानी सुन्दर सुत जायो घन सम श्याम शरीर है।
लावन्यता आनन में अनुपम तेज पुन्ज यदुवीर है।
जाचक करत बड़ाई है, ब्रज में बजत बधाई है।
हिय हरषत बरसत में आए गोपी वृन्द नन्द द्वारे।
दरश परस कर प्रेम तृषित वो त्रिपत भये लोचन तारे।
भेरि शंख सहनाई है, ब्रज में बजत बधाई है।
तोरन मरकत चौक सीपमणि कनक कलश भरि नीरा।
विप्र रूप धर आये अमरगण, सिंह पौर पर भीरा है।
सुरन सुमन बरसाई है, ब्रज में बजत बधाई है।
धारन जनम उधारन अधमन पतितन पावन करुणाकर।
गावत मिश्र बिहारी मण्डत दीन दशा देखे आकर।
तेरी आश लगाई है, ब्रज में बजत बधाई है।।[९]

कुछ लोकगीत ढ़प नामक वाद्य के साथ गाये जाते हैं कृष्ण भक्त कवियों ने ढप नामक वाद्य का उल्लेख होती विषयक पदों एवं गीतों में किया है। होली से सम्बन्धित गीत में सह 'ढप' नामक वाद्य जब बजता है तो समस्त वातावरण मदमस्त हो उठता है, श्रीकृष्ण का मतवालापन तो 'ढप' की ताल के बजते ही सजीव हो उठता है-

ढप बाजौ है, स्याम मतवारे कौ ढप बाजौ है।[१०]

विवाह एक धार्मिक संस्कार है तथा गृहस्थ जीवन की आवश्यकता है। विवाहोपरान्त ही मानव जीवन पूर्णतः को प्राप्त होता है। जीवन में अनुशासनबद्धता, कर्तव्यपरायणता आदि का बोध व्यक्ति को विवाह के पश्चात् ही होता है। विवाह समाज की अनिवार्य प्रक्रिया है। बुन्देलखण्ड में विवाह के अवसर पर विभिन्न रस्मों में वाद्य बजते हैं जैसे ढपली, ढोल, ढोलक, मंजीरा, नगाड़े, शहनाई आदि। यद्यपि इनका स्थान अब आधुनिक बैण्डों ने ले लिया है, परन्तु लोकांचलों में अभी भी ये लोकवाद्य बजाये जाते हैं। विवाह के अवसर पर विधिवत बाजे वालों को बुलाया जाता है उनके आने पर ढोल, नगाड़े, ढोलक आदि लोकवाद्यों की पूजा होती है। तत्पश्चात् विधिवत वैवाहिक कार्यक्रम प्रारम्भ होते हैं जिसकी अभिव्यक्ति विवाह गीतों में होती है - यथा -

बाजत आवें सजन जू के बाजे।
सो धूमत आवें निशान भले जू।।[११]

या फिर -

कलश भरो दियला धरो दुल्हा टीका खाँ आये।
नाचत है घुड़ला पातुरा बाजन धूम मचाये।
गोला घलत बारुद है तन अरु मन हरसाये।
ठाँड़े बराती चौतरन सखियन मंगल गाये।।[१२]

मृत्यु के उपरांत यद्यपि शोक का वातावरण रहता है, लेकिन किसी वयोवृद्ध व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसकी शवयात्रा में लोकवाद्य बजाये जाते हैं जिन्हें उल्टे बाजे कहते हैं। ढोल, नगाड़े, शहनाई, शंख, झालर आदि वाद्यों की शोकात्मक ध्वनि के साथ मृत व्यक्ति की अन्तिम यात्रा प्रारम्भ होती है, जो अन्त्येष्टी स्थल तक चलती है।

इन अवसरों के अतिरिक्त विशेष पर्वो, उत्सवों, तीज-त्यौहारों, मेले आदि के सुअवसर पर लोक वाद्य बजते हैं। होली और दीवाली ऐसे विशेष पर्व हैं जिन्हें छोटे और बड़े सभी जाति वर्ग के लोग मिल-जुल कर मनाते हैं। इस अवसर पर मानवीय भावनाएँ एवं सम्वेदनाएँ प्रकट होती है तथा सामाजिक एकता, प्रेमभाव एवं मेलजोल आदि को बढ़ावा मिलता है। सभी जन वर्ष भर के दुःख चिन्ताओं एवं द्वेष आदि से मुक्त हो आनन्द के सागर में डूब जाते हैं। होली के उमंगमय वातावरण को लोकवाद्य और भी जीवंत बना लेते हैं यथा -

लए सखा टेर प्रभु के कर लए बंग में।
बाजत ढोल नगाड़ा कई अजब ढंग में।
झांझे बजाय गावें ताने उमंग में।
नंद नंदन फाग खेलत राधे के संग में।।१।।
दई पिचक घाल मोहन प्यारी के अंग में।
कर दयो चोर बोर केशर के रंग में।
काबे कबीर मनमुख अति ही उमंग में।।२।।
कोई पिये प्रेम प्याला कोई छके भंग में।
सुध बुध गई घर की विहृवल अनंग में।
तानन में तान छेड़े नाचे मृदंग में।।३।।
अब परो आन मौका फागुन के जंग में।
दिल खोल कहो सैरे चित करो चंग में।
सैरन में फाग कहते गिरधर अनन्द में।।४।।[१३]

दीवारी नृत्य में भी विविध लोकवाद्य बजाये जाते हैं जिसमें ढोलक, टिमबी, बांसुरी, कसावरी एवं लोहे की झाल आदि मुख्य होते हैं। यथा -

मोरन मड़वा छाए ते ढेक नगरिया ल्याते ते।
कौआ ढोल बजाये ते गेंगा रब्बी ल्याते ते।
गलगल चाँवर पसाए ते हँस बराती आएते।
खरहा कहै कि दादा मोहिं झिगुलियाँ तुम सिमाय देव।
तो मैऊँ बराते जाँव।
हरी करौदीं हरी करौदी हरो हतौ मृदंग।
बजौ टकोरा प्रेम को उठे काठ के रंग।।[१४]

फड़ गायकी, लोकनृत्य, नौटंकी, लोकस्वाँग, देवी पूजन एवं सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण के पश्चात् दान माँगते समय भी लोक वाद्य बजाए जाते हैं। रास लीला विषयक एक पद दृष्टव्य है जिसमें विविध वाद्यों का उल्लेख है -

बाजत बीना मृदंग बाँसुरी उपंग चंग।
मदन भेरि डफ झाँझ झल्लरी मँजीर।।[१५]

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकवाद्यों के माध्यम से विविध अवसरों पर मानव मन के सहज भावों की अभिव्यक्ति होती है। यहाँ के लोकवाद्य, लोकनृत्य एवं लोकसंगीत निश्चित रूप से बुन्देली लोक संस्कृति की समृद्धता एवं सुसम्पन्नता का संकेत देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

१. लोक संस्कृति - वसंत निरगुणे, पृ. ८४
२. संगीत वाद्य वादन - अंक डॉ. विश्वनाथ शुक्ल, पृ. २१
३. भारतीय सुषिरवाद्यों का इतिहास - डॉ. राधेश्याम जयसवाल पृ. १५०
४. बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य - डॉ. गनेशी लाल बुधोलिया पृ. १२६
५. वही, पृ. ६४
६. बुन्देली लोक काव्य - डॉ. बलभद्र तिवारी पृ. २४
७. वही, पृ. २५
८. बुन्देली लोककाव्य - डॉ. बलभद्र तिवारी, पृ. २६
६. बुन्देलीखण्डी फड़ साहित्य - डॉ. गनेशी लाल बुधोलिया, पृ. ७८
१०. लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग : श्रीराम शर्मा, पृ. ७२
११., १२., १३. निजी संग्रह
१४. बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य - डॉ. गनेशी लाल बुधौलिया, पृ. २७७
१५. बुन्देली लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. ११५

- श्रीकृपा निकेत, आदर्श नगर,
हायर सेकेण्ड्री स्कूल नं. १ के पीछे, छतरपुर

बुन्देली गीत

-पं. दीनदयाल तिवारी 'बेताल'

सोस विचार कें चलनें भैया, आगव बुरव समैया।
कजन चूक गए समर नें पाए, करनें हा हा दैया।।

जितै देखौ उतै है खतरा, कौनउ गैल न साजी।
लूटपाट सब जगाँ मची है, बचत न रोटी भाजी।
जी सें कव देखत बौ मौका, नैया कोउ सुनइया।
सोस विचार कें चलनें भैया, आगव बुरव समैया।

साँसी नौनी कछू न कानें, कई मान जा पुतरा
अपनी मूँड़ पे गिरवे फिर रव अपनो घर कौ उसरा
ऊ गेल खों छोड़ के चलियौ जो काटत गैल बिलैया
सोस विचार कें चलनें भैया, आगव बुरव समैया।

साँसे सों तो परत हैं फाके, लड्डुआ खा रए घबरा
ज्वान जवान घर में सो रए, काम करत हैं डुकरा
उजयारे में घरखों लोटौ, लग न जाय लौलइया
सोस विचार कें चलनें भैया, आगव बुरव समैया।

जी की आस करत बोउ काटत, की पै करत भरोसौ।
अपनौं रोंम अपन खाँ बैरी, तनक बैठके सोसौ।
नाय माय भए तनक बेताल, डाटन लगत लुगइया।
सोस विचार कें चलनें भैया, आगव बुरव समैया।

- कुम्हैड़ी कॉलोनी, ताल दरबाजा, टीकमगढ़

अतर्रा निवासी कवि मोहनदास रचित 'चित्रकूट माहात्म्य'

- उदय शंकर दुबे

यदि प्रयाग को तीर्थराज की संज्ञा से भूषित किया गया है तो ऋषियों ने चित्रकूट को तीर्थों का तीर्थ कहकर उसके वैशिष्ट्य की श्रीवृद्धि की है। चित्रकूट को तीर्थों का तीर्थ प्रदान करने का श्रेय स्वयं प्रकृति को है। समस्त अभिलाषाओं का प्रदाता कामदगिरि, पापों का प्रक्षालन करने वाली मंदाकिनी नदी, यहाँ के वन-पर्वत से शोभायमान चित्रकूट स्वयं अपनी महत्ता प्रकट करने में सक्षम है। गालव ऋषि, अत्रि मुनि, वाल्मीकि जैसे श्रेष्ठ ऋषियों की साधनास्थली चित्रकूट ही है, मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपने निर्वासित जीवन में भार्या जानकी और भाई लक्ष्मण के साथ आकर चित्रकूट में ही समय यापन किया था। इसी स्थान पर सबसे बड़ी धर्म सभा जुटी थी, जिसमें अयोध्या और विदेहराज की प्रजा सम्मिलित हुई थी। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदास को कहना पड़ा -

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते।
बिंध मुदित मन सुखु न समाई। स्रम बिनु विपुल बड़ाई पाई।।

चित्रकूट महात्म्य लेखन की परंपरा - रामकथा काव्य ग्रंथों में चित्रकूट का यश वर्णन मिलता है। महाभारत (वन पर्व) ८५ वें अध्याय में ऐसा वर्णन है कि "चित्रकूट में सब पापों का नाश करने वाली मंदाकिनी नदी है। इसमें स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल एवं परम पद प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पुराणों में भी चित्रकूट की गाथा का वर्णन मिलता है। रामकथा काव्य ग्रंथों, पुराणों में चित्रकूट का प्रसंगवश वर्णन हुआ है। स्वतंत्र रूप से चित्रकूट माहात्म्य लेखन की परंपरा का श्रीगणेश संस्कृत भाषा के वृहद् रामायण की देन है। विद्वानों ने वृहद रामायण से चित्रकूट माहात्म्य को अलग कर उसे एक स्वतंत्र ग्रंथ का रूप प्रदान किया। वृहद रामायण में प्राप्त चित्रकूट माहात्म्य १६ अध्यायों में विभक्त है। इसमें तीर्थ की महिमा चित्रकूट स्थित देव मंदिरों का विस्तारपूर्वक विवरण दिया गया। इसी वृहद् रामायण के अनुकरण पर हिन्दी भाषा में चित्रकूट माहात्म्य लेखन की परंपरा का विकास हुआ।

प्राचीन कई कवियों ने हिन्दी में चित्रकूट माहात्म्य की रचना की है, जिसमें हृदयराम, महीपाल, कृपाराम, रामनाथ प्रधान और मोहनदास जैसे कवियों की कृतियाँ उपलब्ध हैं।[१] अतर्रा निवासी कवि मोहन ने संवत् १८६८ वि. (सन् १८४१ ई.) में तुलसीदास कृत रामचरित मानस की शैली में चित्रकूट माहात्म्य ग्रंथ की रचना की। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी की खोज विवरणिकाओं में उनके द्वारा रचित इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियों[२] का विवरण मिलता है -चित्रकूट माहात्म्य (पद्य) - मोहन कृत। र.का.सं. १८६८

(क) प्रा. सरस्वती भंडार, लक्ष्मण कोट, अयोध्या- १७-१११ (लि. का संवत् १६०५ वि.)

(ख) प्रा.-महंत रामलखन लाल, लक्ष्मण किला, अयोध्या, २०-१०७

उपर्युक्त दो प्रतियों में से एक प्रथम (क प्रति) प्रति की छायाप्रति, मेरे मित्र डॉ. डी.पी. दुबे (प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उ.प्र.) को अयोध्या से प्राप्त हुई थी। डॉ. दुबे ने चित्रकूट माहात्म्य ग्रंथ की छाया प्रति को, अध्ययन हेतु मुझे प्रदान किया था।[३] इसी प्रति के आधार पर मोहनदास कवि और उनकी रचना चित्रकूट माहात्म्य का विवरण यहां प्रस्तुत है -

आदि - ।।श्री गणेशाय नमः।।
अथ लिष्यते चित्रकूट महात्म भाषा।।

सोरठाः सुमिरौं सिध्ध गनेस, विद्याधर श्रुति सारदा।।
पुनि बंदौं गिरिजेस, जिन्हैं राम जस पर्म प्रिय।।१।।
सेसहिं करौं प्रनाम, सहसानन हरि जस कहत।।
पुनि बंदौं सिय राम, गिरा प्रेरि कवि ह्दै (हृदय) जिन।।२।।

दोहा - पुनि निज गुर के चरन रज, बंदौं बारहि बार।।
जासु कृपा ते विमल मति, बरनौ चरित उदार।।३।।

चौपाई- पुनि संतन के चरन मनाऊँ। जिनकी कृपा विमल मति पाऊँ।।
पुनि विप्रन के चरन प्रनामा।। सकल भांति दायक विश्रामा।।
चारि खानि जग जीव घनेरे।। मन क्रम वचन राम के चेरे।।
बदौं तिनके चरन सोहाये।। जिन्हें सदा रघुपति मन भाये।।

OO OO OO

चौपाई- सुनौ भरत यह तीरथ पावन।। कलि कुचाल दल दारिद दावन।।
सहित समाज राम कर घाटा।। करि अस्नान सुधारहु बाटा।।
सीता राम चरन मा जाई।। माथ नवाय रजायसु पाई।।
यज्ञ वेदिका पर्म सोहाई।। कीन्ह प्रनाम माथ महि लाई।।
अत्रि कहा सुनु भरत सुजाना ।। ब्रह्मपुरी कर कहौं प्रमाना।।
धनुष पंच सत केर सो जाना।। पुरी प्रमान ताहि अनुमाना।।
तेहि के मध्य तीस धनु सोई।। जज्ञ वेदिका कहियत सोई।।

OO OO OO

दोहा- गिरि के अंतर जहां लगु, सप्त कोट परमान।।
तीनौं जात्रा जहां लगु, जानत सकल सुजान।।११५।।
चित्रकूट को जहां लगु, छेत्र कहो परमान।
ताते अपर विचारिये, और क्षेत्र को जान।।११६।
कुंभज, कागा, अत्रि मुनि, सिषि मुनि भर्त बुझाय।।
सो हों सारद की कृपा, कहि षोड्स अध्याय।।११७।।
अष्टादस अठांनबे, पर्मार्थी के साल।।
ज्येष्ठ सुक्ल राका बुध मूलरिछ सुभ काल।।११८।।
पूनिव दिन पूरन भयो बाचै सुनै जो कोइ।।
चित्रकूट की कृपा तो, सिद्ध मनोरथ होय।।११६।।
यह प्रति जुगुलानंद के हेत, लिखी निज हांथ।।
जिनके धन जीवन सदा, सिया सहित रघुनाथ।।१२०।।
फागुन कृष्ण त्रयोदसी, भौमवार सुभ काल।।
एक सहस नौ सत अधिक, पांच सो संमत हाल।।१२१।।

चित्रकूट चिंतत चितै, चलि जेहि-जेहि थल जाय।।
पाप दहत अरु लहत सुख, चारि पदारथ पाय।।१२२।।
राम नाम रसना रटत, रामधारा चलि जाय।।
राम रूप छवि देखि तहं, सुफल वचन मन काय।।१२३।।

इति चित्रकूट महात्मे कलि कलुष प्रधंसने सर्व काम प्रसिद्ध करने मति अनुसार उद्धरने जथा श्रुते तथा मोहनदास कृते भाषा छंद समाप्त सुभ मस्तु।। राम।।राम।।राम।।

कवि मोहन ने ग्रंथारंभ में ग्रंथ का रचना काल और अपने निवास स्थान का उल्लेख किया है -

दोहा - फाल्गुन शुक्ल एकादशी, बुधि दायक बुधवार।
श्लेषादि जोग धृति, कीन्हों ग्रंथ प्रचार।।
अष्टादस अठांनबे, पर धावी जेहि नाम।
तेहि संवत मोहन कथत, बसत अतर्रा ग्राम।।

छंद संख्या ६-७

चित्रकूट माहात्म्य की यह प्रति संवत् १९०५ वि. में महात्मा जुगुलानंद के लिये स्वयं कवि ने तैयार किया था। ग्रंथ रचना के सात वर्ष बाद की एक प्रति होने से प्रामाणिक है। ग्रंथ में मोहन और मोहनदास दोनों नाम लिखते हैं, कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

कवि ने चित्रकूट महात्म्य को प्रबंध काव्य का रूप दिया है। इसका आधार संस्कृत भाषा का चित्रकूट माहात्म्य है जो १६ अध्यायों में विभक्त है। कवि मोहन ने भी अपने ग्रंथ को सोलह अध्यायों में विभाजित किया है, किन्तु यह मात्र अनुवाद न होकर कवि की स्वतंत्र रचना है। ग्रंथ का शुभारंभ मंगलाचरण से हुआ है। तुलसी की भांति मोहन कवि ने विघ्नेश्वर गणेश, सरस्वती, शंकर, शेष भगवान राम-सीता का स्मरण कर अपने गुरु के चरणरज की वंदना की है। पुनः संतों, महात्माओं, ब्राह्मणों और जगत के समस्त जीव-जंतुओं की वंदना कर व्यास, जावालि, वाल्मीकि मुनि का स्मरण किया है। इसके उपरांत कवि ने कामदगिरि की वंदना कर चित्रकूट माहात्म्य का वर्णन प्रारंभ किया है। कवि के शब्दों में जो यह कथा सुनै अरु गावै। सुख सम्पत्ति नाना विधि पावै। मोहनदास ने कथा क्रम के बंधान हेतु श्रोता वक्ता के रूप में तीन संवाद की योजना की है - १. कागभुशुंडि-शांडिल्य मुनि, २. अगस्त-सुतरीक्षण, ३. अत्रि मुनि - भरत

शांडिल्य मुनि स्वयं नील गिरि पर कागभुशुंडि के पास जाते हैं और उनसे राम कथा के रहस्य को बताने का निवेदन करते हैं। इस संदर्भ में काग भुशुंडि चित्रकूट की महिमा का वर्णन करते हैं, सोलह अध्यायों में चित्रकूट के वन, पर्वत, नदी, देव मंदिरों का विशद वर्णन है, कवि ने चितरा और कामता गाँव का भी विवरण दिया है। ग्रंथ परिसमाप्ति के बाद कवि ने स्वरचित सात छंद रखा है, जिनमें चित्रकूट का यश वर्णन है। एक कवित्त छंद प्रस्तुत है -

परसै पैसुनी जल चारौ फल सुलभ होत, मंद बुधि छूटै मंदार वृक्ष ध्याये ते।
पारिजात ध्याये परमेश्वर पर प्रीत होत, पावन संतानि संतनति विनये ते।
कल्पवृक्ष कल्पे ते कल्पना अनेक देत, ध्यावत हरि चंदन हरि आपहू ते आये ते।
मोहन भजु चित्रकूट जानि कामदानि कूट, भक्ति को त्रिकूट ध्याय संत फल पाये ते।

(छंद सं. ५)

मोहनदास रचित चित्रकूट माहात्म्य सरल भाषा में है। हिन्दी में लिखा गया यह प्रथम ग्रंथ है, जिसमें चित्रकूट जैसे पवित्र तीर्थ में स्थित प्राचीन तीर्थ स्थानों की स्थिति का तथ्यमय विवरण प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इस का आधार संस्कृत भाषा में लिखा गया, चित्रकूट माहात्म्य ही है, किन्तु मोहनदास ने अपने ग्रंथ में चित्रकूट स्थित कुछ विलुप्त तीर्थों व गाँवों का भी वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि कवि मोहनदास ने स्वयं चित्रकूट के उन पवित्र स्थलों का दर्शन किया होगा। इस कथन की पुष्टि कवि द्वारा वर्णित पहरा गांव से होती है -

बाइब दिस रक्षक कहियज जहं। अजहू पहरा नाम ग्राम जहं।।
तेहि के निकट गंग पुनि जोई। मांडव्याश्रम गिरि ते सोई।।
तेहि कर वरुन गंग पुनि नामा। जल परसत परिपूरन कामा।।

मोहनदास स्वयं बुन्देलखण्ड के वासी थे। उनके गाँव अतर्रा से चित्रकूट विशेष दूर भी नहीं था। अतः उनके द्वारा चित्रकूट स्थित तीर्थ स्थलों का विवेचन अधिक प्रामाणिक है।

संदर्भ संकेत -

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण खण्ड-१, पृ. २६५-२६६, ना.प्र.सभा-वाराणसी, संवत् २०२१ वि.
२. वही
३. लेखक डॉ. डी.पी. दुबे के प्रति आभारी हैं, जिन्होंने चित्रकूट माहात्म्य ग्रंथ के हस्तलिखित प्रति की छायाप्रति अध्ययन हेतु प्रदाय की।

- ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया, जिला मिर्जापुर (उ.प्र.)

नागफनी हो गऔ गाँव

- संतोष सोनकिया 'नवरस'

नागफनी हो गऔ गाँव जौ हतौ कबउँ नन्दन
अपने अपने तन में रै गऔ अपनौ-अपनौ मन

अपनी-अपनी ढपली पै सब अपनौ राग भरें
कोउ काउ के आगे पाछें सिर पै आग धरें
लरकन नें पुरखन कौ मानो कर डारौ तरपन
नागफनी हो गऔ गाँव जौ हतौ कबउँ नन्दन

होय अठैन दूसरिन कों सो अपइँ आँख फोड़ें
और न सो पावै कोऊ सो अपइँ नींद छोड़ें
इत्ती ईरखा भरी तप रऔ आगी सौ तन मन
नागफनी हो गऔ गाँव जौ हतौ कबउँ नन्दन

ऐसो बिगड़ो चलन लकड़ियाँ सबरे सरकावें
एक दूसरे कंधन पै बंदूक धर चलावें
जान परै ना कबउँ कि को है हितू और दुसमन
नागफनी हो गऔ गाँव जौ हतौ कबउँ नन्दन

ऐसी फैली लूट, लुटेरे लूटें दिन दुफरें
धूरा झोंक और की आँखन अपनौ काम करें
जाकी लाठी ताकी भेंस बन गऔ चाल चलन
नागफनी हो गऔ गाँव जौ हतौ कबउँ नन्दन

- गणेश जी, जालौन, उ.प्र.

नीति दोहावली और प्रिया सखी की बानी में इतिहास बोध

- डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

दतिया के राजकीय संग्रहालय में, राजा को कैसा होना चाहिये, इस बात को बताने के लिये, ग्यारह दोहों की छोटी सी पाण्डुलिपि उपलब्ध है। इस लघु पुस्तिका को संग्रह के व्यवस्थापक ने 'नीति दोहावली' का नाम दिया है। इस दोहावली में लेखक या प्रतिलिपिकार का नाम नहीं दिया गया है। इसकी साफ-सुथरी लिखावट और प्रत्येक पद के उर्दू भाषा में अनुवादित होने के कारण अनुमान होता है, कि यह उन्नीसवीं सदी के अन्त या बीसवीं सदी के प्रारंभ की रचना होगी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि बुन्देलखण्ड के शासक व जागीरदार प्राचीनकाल की परिपाटी पर चल राज्य व राजा सम्बन्धी नैतिक नियमों के अनुसार चलने का प्रयास करते थे। राज्य के, राज्य प्रोहित और शुभचिंतकों द्वारा राजा को नीतियों पर चल प्रजा-गरीब के हित चिंतन की सलाह दी जाती थी। यद्यपि व्यवहार में राजा प्रायः नैतिक नियमों की अनदेखी करते थे। इन नीति सिद्धान्तों को हम ततुसमय के राजसिद्धान्त के रूप में देख सकते हैं। पर विशेष रूप में ये सारे नैतिक सिद्धान्त या नैतिक नियम आज भी अक्षुण्य है, शाश्वत हैं, आज के भी जीवनमूल्य हैं। मानवीय हितचिन्तन के रूप में हैं, वर्गविभेद और विषमताओं से परे हैं। आज की राजनीति की तरह विभाजन की नीति के खिलाड़ी न होकर उसके विरोधी हैं। बस केवल इस नीति दोहावली में राजा के स्थान पर, सरकार भर लिख देने से यह आज की सरकार के लिये पथ प्रदर्शक बन सकते हैं। इस प्रकार के ग्रन्थों को पुनः प्रकाशित करवा कर इन्हें पढ़ाये जाने एवं पाठकों को उपलब्ध कराये जाने की आवश्यकता है। यह हमारे इतिहासकाल की मूल विचारधारा के प्रतिपादन का मूलस्त्रोत है।

बुन्देलखण्ड के इतिहास में जीवन की मूलधारा के बीजों के भी दर्शन होते हैं। ये जीवन रूपी शाश्वत मूल्य प्रायः बुन्देलखण्ड के भक्तिपरक, नीतिपरक हिन्दी के मध्यकाल, आधुनिककाल और मध्यकाल के बीच के साहित्य के ग्रन्थों में मिलते हैं। इन ग्रंथों में इतिहास की तलाश के साथ मानवीय जीवन की समस्त क्रियाओं के इतिहास की भी खोज की जानी चाहिये। इतिहास के विकास एवं व्यापक दृष्टिकोण, मानवीय ज्ञान की खोज के संदर्भ में हिन्दी साहित्य के इतिहासकाल के ग्रन्थों को पुर्नव्याख्यित किये जाने की आवश्यकता है। इस नीति दोहावली के कुछ उदाहरण, ये हैं -

जो नरेन्द्र सेवहि सदां करुणा निधि गोविन्द।।
विपति मिटत संपत रहत तिन के सदां अनन्द।।१।।
छत्रपति समवृक्ष के प्रजा सुमूल समान।।
बिना मूल दृढ़ वृक्ष नहीं जानहु चतुर सुजान।।२।।
जो नरेन्द्र अपनी प्रजा राखत है सम पुत्र।।
ता दिन संकट परत है होत सवै सम मित्र।।८।।
विनय शील गुण लाज विनु नर शोभा नहि पाइ।।
विनु सुगंधि चन्दन शकल किमि मलयज कहिवाइ।।१०।।

जनमन की उक्त काव्यमय प्रस्तुति को इतिहास किसी भी तरह उपेक्षित नहीं कर सकता है। इस प्रकार का हिन्दी साहित्य, साहित्य की निधि के साथ, इतिहास के ज्ञान का बोध भी कराता है।

राजकीय संग्रहालय की दूसरी पांडुलिपि पुस्तिका, 'प्रिया सखी' की होली और उनकी बानी की है। इसमें कुछ अठारह पृष्ठ हैं, बताया जाता है कि प्रिया सखी ने बहुत सी बानियां रचीं थीं। और यह बानियां ब्रज के प्रसिद्ध संत महात्मा हितहरिवंश जी द्वारा रचित चतुराशीजी से पदसाम्य रखती हैं। ग्रन्थ के प्रारंभ में लिखा है - ''श्री राधावल्लभो जयति।। अथ श्री प्रिया सषी क्रतहो होरी लिष्यते।।'' इसी लघु पांडुलिपि पुस्तिका में ग्यारह होली के पदों के बाद, लिखा है। ''श्रीराधावल्लभो जयति।। श्री हरिवंश चंद्रो जयति।। अथ श्री महाराज कोमारि श्री महरानी वषत कुवरिजू देव्य कौं नाम महल कौं श्री प्रिया सषी जू हैं तिनि की वानी तौं बहुत हैं तामै एकु पद लिष्यते।।'' बानी के पद के बाद, इन पदों की भूमिका लिखी हुई है और पदों के पांच प्रकार से भावार्थ दिये गये हैं। ये भावार्थ,भक्त प्रियासखी की भक्तिभाव में पूरी तल्लीनता से निमग्न रहने के भाव को प्रकट करते हैं।

यह प्रिया सखी, जिनका नाम बखतकुंअरी था, दतिया के राजा शत्रुजीत बुन्देला (१७६२-१८०१) की रानी थीं। शत्रुजीत बुन्देला के कुल छः रानियां थीं, जिनमें रानी आनन्दकुंअर के मात्र एक पुत्र था, शेष रानियां निस्संतान थीं। रानी बखतकुंअरी, उपनाम प्रिया सखी करैरा-दिनारा परिक्षेत्र के परमार ठाकुरों की बेटी थी। अपने एकाकी जीवन और महल संस्कृति से ऊबकर के बृजभक्ति की ओर प्रेरित हुई थीं। उल्लेखनीय है कि दतिया राज्य का राजपरिवार ब्रज क्षेत्र के मथुरा-वृन्दावन के करीब होने के कारण अपने प्रारंभकाल से ही जुड़ा था। दतिया राज्य परिवार वृन्दावन के भक्त संतों को अपने राज्य में आमंत्रित करता था और उनके सारे संस्कार के कार्य भी बृजक्षेत्र में सम्पन्न होते थे। इससे संबंधित साहित्य और भित्ति चित्रावली दतिया राज्य में आज भी आसानी से देखी जा सकती है। दतिया को वर्तमान में लघु-वृन्दावन की संज्ञा दी गई है और अब तो लघु वृन्दावन की परिक्रमा भी पूरे जोर-शोर से की जाने लगी है। दतिया में राधाकृष्ण के अनेक मंदिर हैं और घर-घर में इनकी पूजा का प्रचलन है।

प्रिया सखी राधावल्लभी संप्रदाय के हित हरिवंश (१५०२-१५५२) को मानती थीं, हित हरिवंश वृन्दावन में १५३३-१५५२ उन्नीस वर्ष अपनी मृत्यु पर्यन्त वही रहे थे। विद्वान प्रभुदयाल मित्तल के अनुसार ''अपने निवास-काल में उन्होंने वृन्दावन को उस रस भक्ति का केन्द्र बना दिया, जो ब्रज के रसिक भक्तों की राधा-कृष्णोपासना का एक विशिष्ट अंग थी। हित जी का अनुशरण करते हुये और भी अनेक संत-महात्मा, आचार्य और भक्तजन वृन्दावन में आकर रहने लगे थे।'' हिन्दी साहित्य के बृहद इतिहास में सम्पादक देवेन्द्र शर्मा ने लिखा है, ''श्री हरिवंश जी गुरु रूप में श्रीराधा जी को ही स्वीकार किया है।

श्री नागरीदास ने अपने अष्टक में श्री राधा को ही हरिवंश जी का गुरु बताया है। "राधावल्लभी संप्रदाय का मूलाधार प्रेमतत्व है, इस सम्प्रदाय के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं, प्रथम हैं, भक्ति विधायक विचारधारा, द्वितीय है रसोपासना विचारधारा। हित हरिवंश जी के ज्येष्ठ पुत्र वनचंद्रजी का नाम दतिया के ब्रजभक्ति साहित्य में बहुत मिलता है। इस आशय के अनेक पद दतिया के मंदिरों में और यहां के समाज गायन में सुने जाते हैं। प्रिया सखी इसी विचारधारा और इन्हीं भक्ति संतों को मानती थी। प्रिया सखी के साहित्य में हित हरिवंश जी और वनचंद्र के नाम आये हैं।

प्रिया सखी रचित होली के उदाहरण -

जतिराग।। सषी ये दोई होरी षेलैं।।
रंगमहल मैं राधावल्लभ रूप परसपर झेलैं।।१।।
सनमुख रूष मुसकात झपटि झुकि लाड़िली लालहि पेलैं।।
प्रिया सषी हित यह छवि निरषति सुष की रासिस केलैं।।४।।
राग जति।। राधावल्लभ षेलत होरी।।
नव निकुंज सुष पुंज सषिनि विच अदभुत राजति जोरी।।१।।
दुहु दिसि ठाठी सहेली लषै सुष तिनकैं प्रीती न थोरी।।
हित सौं नित निरषत रहै यह छवि प्रिया सषी रस वोरी।।६।।

इन उदाहरणों में शब्दों को उसी रूप में लिखा गया है, जिस रूप में वह पांडुलिपि में लिखे हैं। इन पदों में राधाभाव के साथ कृष्ण और हित हरिवंश तथा भक्त प्रिया सखी के नाम आये हैं। इन पदों के माध्यम से तत्समय के भक्तिरस की मानवीय प्रवृत्ति का भान होता है। भक्तिरस में कभी विषमता के दर्शन नहीं होते, इस रस में डूबने के लिये दरबाजे सदैव सभी के लिये खुले हुये थे। यह जनचिंतन इतिहास के अध्ययन के लिए उपयोगी है। होली उत्सव वैसे ही मिलन का उत्सव सदियों से ही रहा है।

प्रिया सखी की बानी का एक पद इस प्रकार है -

राग की परी।। प्रीत महरि हिय वसत हमारे।।
जोड़ी कहूं सोड़ी करत रैंनि दिन छिन पल होतन जियतैं न्यारे।।
जित तित तन मन रौंम रौंम में व्है रहे मेरे नैंननि तारे।।
अति सुंदर वर अंतरजामी प्रिया सषी हित प्राननि प्यारे।।१।।

प्रिया सषी ने अपने इस पद की व्याख्या कई दृष्टिकोणों से गद्य रूप में की है। पहले उन्होंने इस पद का 'अर्थ सिद्धान्त' लिखा है। इस सिद्धान्त निरूपण में प्रिया सखी ने लिखा है, कि हरि अर्थात् हमारे इष्ट प्यारे हैं, प्रियतम हैं, विनती सुनते हैं, हमारे हृदय में हमेशा निवास करते हैं, रोम-रोम में बसते हैं और अति सुन्दर हैं तथा हम उनसे जो भी मांगते हैं, वह वे देते हैं। इस भावार्थ में भक्तिरस के स्वरूप में प्रिया सखी ने अपने इष्ट कृष्ण पर अतिविश्वास प्रकट किया है। आगे प्रिया सखी ने इस रस के अर्थ की भूमिका गद्य रूप में लिखी है। इस भूमिका में राधा-कृष्ण की सजीमूर्ति वनकुंज के बीच सुन्दर-अलंकृत सजे महल में विराजमान दिखाई है। अब आगे इसी एक पद के पांच अर्थ लिखे हैं। एक अर्थ में इष्ट के प्रति भक्त प्रिया सखी और हित सखी की इतनी तल्लीनता है कि वे एक दूसरे के पास बैठीं हुई एक दूसरे को नहीं दिख रही हैं और भक्तिभाव के भक्त सखियों के बीच इष्ट राधा-कृष्ण को लेकर अनेक संवाद हैं। इन संवादों के बीच यमुना नदी की शोभा, वृन्दावन की शोभा का वर्णन है। प्रिया सखी द्वारा अपने इष्ट को सुन्दर पोशाकें पहनाई जाती हैं। इन सब भक्तिभावों और भक्तिरसों के बीच और भक्त सखियों के संवादों के बीच उक्त प्रिया सखी की वानी के एक पद की गद्य व्याख्या घूमती रहती है।

इतिहास हमारी सांस्कृतिक यात्रा का दस्तावेज है, उसका अध्ययन हमें मनुष्य की गुजर चुकी गतिविधियों के विषय में परिचित कराता है और यह गतिविधियां हमें देश के भविष्य निर्माण में सहायक होती है। दूसरे देशों की प्रवृत्तियों के जानने में सहायक होती है, दूसरे देशों से हम नीतिनिर्धारण में किन सिद्धान्तों पर चलें यह बताती हैं। जहाँ तक प्रिया की भक्तिरस की काव्यमय विचारधारा का प्रश्न है, यह प्रश्न हमें इतिहास में वर्तमान सामाजिक परिवेश को सुधारने का कार्य करता है। भक्तिभाव समाज में समरसता पैदा करने का सबसे बड़ा मूलमंत्र है, इष्ट के प्रति प्रार्थना कर उस पर परिणाम छोड़ कर्मक्षेत्र में लगे रहना सबसे बड़ी सफलता है। जहाँ हमारा भक्ति साहित्य हमें भक्तिभाव देता है, वहीं इतिहास उसे ग्रहण कर समाज के निर्माण का भाव पैदा करता है। साहित्य के भक्तिभाव का इतिहास बोध से अटूट सम्बन्ध है। इस प्रकार का साहित्य इतिहास को बदलते दौर में बहुत कुछ सिखाता है।

-कुंजनपुरा, दतिया (म.प्र.)

आये बसन्त

- प्रेमनारायण पाठक 'अरुण'

आये बसन्त, सजकें महन्त, सँग में हैं सन्त, ज्ञानी ध्यानी।
आभा अनन्त, है दिक्दिगन्त, बगरी तुरन्त, कर मेहमानी।।

पुस्तक को धार, हंसा सबार, महिमा अपार, जिनकी भारी,
हैं कर हजार, बाँहें पसार, आई हैं द्वार, माँ अवतारी,
ना इन समान, जानत सुजान, विद्या की खान, वींणापाणी,
पूजत जहान, देतीं हैं दान, हम सबको ज्ञान, जनकल्याणी,

दसहूँ दिशन्त, ना आदि अन्त, सब विनयवन्त, हैं परिधानी।
आभा अनन्त, है दिक्दिगन्त, बगरी तुरन्त, कर मेहमानी।।

जे ऋतूराज, संगै समाज, लयें साजबाज, देशन-देशन,
आये हैं आज, ताजन के ताज, गये हैं विराज, खेतन-खेतन,
कोयल के छन्द, मकरन्द वृन्द, ना होबें बन्द, अमराई में,
बहै मन्द-मन्द, आनन्द कन्द, शीतल सुगन्ध, पुरवाई में,

कागा जयन्त, आते कजन्त, करते भिड़न्त, दोइ रँग सानी।
आभा अनन्त, है दिक्दिगन्त, बगरी तुरन्त, कर मेहमानी।।

रति मदन मार, गेरऊँ निहार, कर रही रार, कूलन-कूलन,
अमुवाँ की डार, बागन मँझार, छाई बहार, फूलन-फूलन,
हैं 'अरुण' दास, हेमन्त खास, सरसों की वास, क्यारी-क्यारी,
फूले पलाश, गुड़हल कपास, जा अमलताश प्यारी-प्यारी,

आ जाव कन्त, दै दो जड़न्त, कछु मनगढ़न्त, तुम लासानी।
आभा अनन्त, है दिक्दिगन्त, बगरी तुरन्त, कर मेहमानी।।

- सटई, जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली लोककथाओं में महाभारतकालीन प्रसंग

- डॉ. (सुश्री) शरद सिंह

बुन्देली लोक साहित्य गद्य और पद्य दोनों विधाओं में धनी है। बुन्देली में सामान्य जन जीवन से जुड़े संदर्भों के काव्य के साथ ही लोक गाथाएं भी सदियों से कही-सुनी जा रही हैं। इनमें भारतीय इतिहास के महाकाव्य कहे जाने वाले रामायण एवं महाभारत काल की कथाओं को भी गाथाओं के रूप में गाया जाता है। बुन्देलखण्ड में जगनिक के बाद विष्णुदास ने लगभग १४वीं सदी में महाभारत कथा और रामायण कथा लिखी। विष्णुदास की रचनाएं अनेक वर्षों तक अज्ञात रही किन्तु बुन्देली पीठ, सागर मध्यप्रदेश के प्रयास से इन रचनाओं को प्रकाश में आने का अवसर मिला तथा इनका काल निर्धारण हो सका। विष्णुदास की महाभारत कथा १४३५ ई. माना गया है। यह गाथा शैली में दोहा, सोरठा, चौपाई तथा छंदों से युक्त है।

बुन्देली की प्रसिद्ध महाभारतकाल संदर्भित लोकगाथाएं हैं - बैरायठा, कृष्ण-सुदामा, द्रोपदी चीरहरण तथा मेघासुर दानव आदि। इनके अतिरिक्त राजा जगदेव की लोकगाथा में भी पाण्डवों की चर्चा का समावेश है। महाभारतकालीन चरित्रों से जुड़ी गाथाओं का इस प्रकार बुन्देलखण्ड में रुचिपूर्वक गाया जाना इस बात का द्योतक है कि बुन्देली जन प्रकृति से जितने वीर होते हैं तथा मानवीय संबंधों के आकलन को लेकर उतने ही संवेदनशील होते हैं। उन्हें व्यक्ति के अच्छे अथवा बुरे होने की परख होती है तथा साहसी, वीर, उदार, दानी और सच्चा व्यक्ति अपना आदर्श प्रतीत होता है। इसीलिए जन-जन में गाए जाने वाली बैरायठा लोकगाथा में 'महाभारत' महाकाव्य की लगभग सम्पूर्ण कथा को जन-परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। जैसे धृतराष्ट्र और गांधारी के विवाह के प्रसंग को इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है -

जब आ गई है चिठिया महाराज रे कै,
जब गंधार में हो रये हैं ब्याव रे कै
जब गांधारी को हुइये नौने ब्याव रे कै,
जब खबरें तो मिल गई महराज रे कै
जब सज गए गंगंव महाराज रे कै,
जब फौजें कटीली सजवांय रे कै
जब गांधार की पकरी उनने गैल रे कै
जब गांधार तो पौंचे जांय रे कै
जब गंधारी के हो रये नौने ब्याव रे कै
जब देखे समर महराज रे कै

इसी गाथा में द्यूतक्रीड़ा तथा चीर-हरण का अत्यंत दृश्यात्मक वर्णन मिलता है -

जब सकुनी ने डारे दाव रे कै, जब पर गये अठारा दाव रे कै
फिर हारे धरम और राज रे कै, जब बोले जरजोधन महराज रे कै

oo oo oo

जब जबरन तो लैजा रव महराज रे कै, जब जूटे तो पकरो ओने आज रे कै
जब रानी खों लै गव अपने साथ रे कै, जब आ गई सभा के नोंने बीच रे कै
जब सबरो से करी है गुहार रे कै, जब कोऊ खों ने आई लाज रे कै
जब भरी कचेरो महराज रे कै, जब कोनऊ ने करे सहाय रे कै
जब पांच पती मौजूद रे कै, जब हर से लगा दई ओने टेर रे कै
जब कैसे तो रये हो नोने सोय रे कै

इस विवरण में जिन तथ्यों को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है वे ध्यान देने योग्य हैं कि जब व्यक्ति अनुचित कर्म करने लगता है तो 'धरम' और 'राज' दोनों गँवा बैठता है। इसी प्रकार जब 'पांच पती' अर्थात् सगे-सबंधी भी रक्षा नहीं कर पाते हैं उस समय 'हरि' अर्थात् ईश्वर सहायता करता है। यह मानव मन की वह अवस्था है जो राजनीतिक अस्थिरता एवं असुरक्षा के दौर में प्रभावी हो उठती है। यही भाव 'चीरहरण' लोक गाथा में मिलते हैं।

दुशासन द्वारा चीरहरण किए जाने पर द्रौपदी पतियों द्वारा निर्धारित नियति को चुपचाप स्वीकार करने के बदले सहायता के लिए कृष्ण को पुकारती है -

हे श्याम मेरी सुध लइयो, रे प्रभु मोरी लाज बचइयो रे
शकुनी दुर्योधन ने मिल के, कपट के पांसे डारे
जुआ खेल के पति हमारे, राजपात सब हारे
मोरी बिगड़ी आज बनइयो, रे प्रभु मोरी लाज बचइयो रे

इसी गाथा में द्रौपदी की पुकार सुन कर श्री कृष्ण के आने का वर्णन भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें इस बात का ध्यान रखा गया है कि श्रीकृष्ण द्रौपदी की लाज बचाने पहुंचे तो किन्तु किस साधन अथवा किस वाहन से?

बेगी चलो गरुड़ मोरे भाई, कारज बिगड़ो जाई
नौ सौ कोस हस्तिनापुर बसो है, जल्दी देव पहुँचाई
बेगी चलो गरुड़ मोरे भाई
नौ गज चलत हवा से आगें, दस गज की ऊँचाई
तीन लोक को भार जो लावे, और चाल प्रभु कहाँ से आई
बेगी चलो गरुड़ मोरे भाई

गरुड़ पर सवार होकर श्री कृष्ण सभा में पंहुचे जहां द्रौपदी के पांचों पति मूक दर्शक बने बैठ थे-

पांचई पति मौन हो बैठे, अर्जुन भीम सही
हरि से द्रौपति टेर करी
जब नन्दलाल आये सभा में, बढ़ गओ चीर सही
खेंचत चीर दुसासन हारे, चीर पे भीर भरी

बुन्देली लोकगाथाओं में महाभारत के विविध प्रसंगों के साथ ही विविध पात्रों एवं चरित्रों को भी स्थान दिया गया है। 'कृष्ण सुदामा' लोकगाथा में कृष्ण और सुदामा की मित्रता का सुन्दर वर्णन है -

दोई पढ़ें इक गुरुकुल में, नन्द नन्दन और सुदामा।
ईंधन की हुई महा तबाही, घर में से मिसरानी आई
जल्दी लकड़ी दो मंगवाई, अधकचरी है दाल
भोजन खों हो गई शामा, नन्द नन्दन और सुदामा।

जब गुरुकुल के लिए ईंधन हेतु लकड़ियां लाने कृष्ण और

सुदामा जंगल में गए उसी समय दोनों की मित्रता का अनुकरणीय भविष्य तय हो गया।

चने चबा तेने सब लीने, हमको तनक भी न दीने
पिटबे के लांछन कर लीने
यह सोच किया है कान्हा, नन्द नन्दन और सुदामा

वर्षों बाद अपनी पत्नी के कहने पर अपने मित्र से मदद मांगने सकुचाए हुए सुदामा की आवभगत मित्र कृष्ण ने की। अपने हाथों से सुदामा के चरण धोए तथा सिंहासन बैठने को दिया। मित्र कृष्ण की सम्पन्नता देखकर सुदामा भेंट में लाए चावल देने का साहस नहीं कर पा रहे थे जिसे कृष्ण ने ताड़ लिया।

कासीदास कृष्ण कांख से, तंदुल खेंच चबावे
सुदामा जी के तंदुल मोहन खावें
तंदुल खाय मुट्ठी भर कें, मन में बहुत सराहवें
कंचन महल बनाय मित्र के, संपति अमित भरावें
सुदामा जी के तंदुल मोहन खावें

'मेघासुर' लोकगाथा में पांडवों के साहस एवं कौशल का वर्णन मिलता है। मेघासुर संग्राम से पूर्व देवी भवानी पाण्डवों को एक मढ़िया बनाने का निर्देश देती है -

बोले भुवानी सुनो पांडवा, ले के गजा तुम जाय
गजा लाये जब अर्जुन डगरे, धरनी झोंका खाय
भरे समुंद समतल करे माया, मढ़ के करे विस्तार
कै गज की माई नींव डराऊं, दस गज के विस्तार
को तेरी ईंट जमाई जालपा, को देवे ईट गिलाव
अर्जुन तेरी ईट जमाई जालपा, भिम्मा देत गिलाव
वन मढ़िया समतल भई, माया मढ़ के करे विस्तार
बैठो-बैठो मोरी आदभुवानी, सोने छत्र धराय
बैठ के पाई आदभुमानी, मेघ भये तैयार

'राजा जगदेव' लोककथा में भी पाण्डवों का उल्लेख आया है। यह उल्लेख प्रश्नों के रूप में है। किसने पृथ्वी को रचा? किसने संसार को रचा? किसने पाण्डवों को बनाया? पाण्डवों को किस उद्देश्य से बनाया गया? इन प्रश्नों के उत्तर भी इन्हीं के साथ दिया गया है कि देवी ने पाण्डवों को बनाया। पृथ्वी से अन्याय और अधर्म का विनाश करने के लिए पाण्डवों की रचना की गई।

कौन रची पिरथवी रे दुनियां संसार, कौना रचे पंडवां उनई के दरबार
बिरमा रची पिरथवी रे दुनियां संसार, माई रचें पंडवां रे अपने दरबार
रैबे खों रची पिरथवी रे दुनियां संसार, रन खों रचे पंडवा रे अपने दरबार।

लोक गाथाएं लोक परम्पराओं के साथ चलती हैं। इनमें जन की आस्था, विश्वास और धारणाएं निहित होती हैं। लोग गाथाएं जन के चरित्र को समझने में मदद करती हैं। कुल मिलाकर ये सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं चारित्रिक परम्पराओं का प्रतिबिम्ब होती हैं। काल विशेष की कथाएं भी लोकं गाथाओं में संजोई जाती हैं जिनमें महाभारतकाल की कथाएं भी हैं।

भारतीय जनमानस को चरित्रों की विविधता से परिपूर्ण 'महाभारत' महाकाव्य 'रामायण' के बाद सबसे अधिक प्रभावित करता है। बुन्देली जनमानस इससे अलग नहीं है। अन्याय दासता के विरुद्ध युद्धघोष करने वाले बुन्देलों के लिए महाभारतकालीन प्रसंगों का विशेष महत्व होना स्वाभाविक है। यदि मुगलों अथवा अंग्रेजों के विरुद्ध बुन्देलों के संघर्ष का इतिहास पढ़ा जाए तो यही तथ्य सामने आता है कि बहुसंख्यक शत्रुओं से अल्पसंख्यक बुन्देलों ने सदैव डटकर संघर्ष किया। ठीक उसी तरह जिस प्रकार पाण्डवों ने कौरवों का सामना किया था। अतः इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ऐसे संघर्षपूर्ण अवसरों पर ये लोक गाथाएं आमजन में साहस का संचार करती रही होंगी। आज भी सुदूर ग्रामीण अंचलों में ये लोक गाथाएं गाई जाती हैं। यद्यपि आधुनिकता के आज के दौर में इन लोक गाथाओं के मूल स्वरूप के लुप्त होने का भय बढ़ चला है।

- एम-१११, शांतिविहार, रजाखेड़ी, सागर (म.प्र.)

नेता जू की होरी

- डॉ. ओमप्रकाश बरसैंया 'ऊँकार'

नेता जू के ढंग अजब हैं, बड़ी गजब की होली खेलें।
चमचन खों अफसर बनवा दें, बड़े-बड़े तौ पापर बेलें।।
बखत परै तो दल खों बदलें, जइं की हवा पीठ तइं खों दें।
सै दै-दै कें रार करा दें, भइयन में विष-बीजा बो दें।
पाँच साल कौं बने विधायक, भाग्य-विधाता भय जनता के।
पैसा पानू सौ बरसा कें, वोट लए ते घर-घर जाकें।।
सूखौ चेहरा भओ रँगीलौ, जनता पै बस भाषन पेलैं।
दौरा, उद्घाटन कौ वाहन-भत्ता, सत्ता सें फिर लै लैं।।
वे किचकिंदी मेल और पै, लोलन की टोलन में डोलैं।
चोलन बदल बनें बहुरूपिया, गाँव-गवइ की बोली बोलैं।।
खुद तौ रँग राग के रँग में, जनता है बदरंग अकेलें।
खुद की तो है लम्बी पोलैं, पै पराइ बे पोल टटोलैं।।
उठ भुंसारे सें पैला तौ, भटिया धोंक कलेउ करत ते।
चाकर ते मिठया के, दस ठौं काम-काजकर पाँव परत ते।।
पेट गाँठ दै, पैसा जोरो, फिर दुकान कर सेठ कहाये।
डाड़ी माल मिलावट करकें, बड़े बने, ढावे उठवाये।।
पैलें तो अपने ई पाँवन में, फटी बिवाईं सो पीर मनइं ती।
बैठ गरीबन अध पेटन सँग, घर की बिथा सबइ सें कइ ती।
बिसरे पीर पराई, परतइ पाँव न खालैं, रकम सकेलें।
हम खौं को दौं ज्वार जुरै ना, जे रस दूध मलाई ठेलें।।
सट्टा और घुटालन में अड्डा उठ गये, भए अनीगन चालें।
पाँव न धरती पै परतइ अब, पिछलग्गू सँग जाम उड़ेलें।।
बड़ी योजनायें कागज पै, तिनकी रकमें खाकें डकरें।
जौन संग सें बड़े भाग हैं, अब उन खों वे कैसें पकरें।।
आग पेट की कैसें जानें, जनता भूखी कैसे मानें।
जब से मेवा जूस जलेबी, ह्विस्की औ' ठंडाई छानें।।
उन कोई रंग पिचकाई लेवें, उनपै इ पै फिर रंग कड़ेलें।
हर्रा लगै न, लगै फटकरी, चोखौ रंग मुफ्त कौ मेलें।।
नेता जू के ढंग अजब हैं, बड़ी गजब की होली खेलें।

- १६, जवाहर चौक, झांसी (उ.प्र.)

कैबे भर खौं रय गई संकराँत

- डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

कोनऊ भी इलाके के परब, तीज, त्यौहार और बिरत ऊ इलाके की लोक चेतना कौ साक्षात् नमूनौ होत हैं। भारत देश के बींचाबीच में बसो बुन्देलखण्ड सोऊ अपने परबन कौ मनावें की परम्परा निभावें सें नई चूक सकत। बुन्देलखण्ड की होरी, दिवारी, दशैरी के संगे संकरात सोऊ एक लोक परब की नाईं मनाउत हैं। ई की बनी बनाई परम्परा में जोतिष के साथ लोक भावना मूल कारन है। संकरात की बेरा बने लडुवअन और गड़ियाँ घुल्लन की मिठास पूरे बरस भर बनी रत ती। आज के जुग में कछु तो मंहगाई की मार से और कछु आपुस के बैर भाव ने संकरात कौ सरूप मिटा दऔ। ई के साथ-साथ आदमी सोऊ आलसी हो गव। ई परब के रोजीना बदल रय अरथ क्रो समझवे की भौत जरूरत है।

मोय अपनें बालापन की कछु मीठी-मीठी संकरात की यादें मन में बनी हैं। जिने अपुन सें जरूर करवें की इच्छा हो रई। चालीसक बरस पैला संकरात के मईना पैंला से ई की तैय्यारी होन लगत ती। गाँव के किसान औरीला की तिली और गुड़ की परिया घरे दे जात ते। हमाई आजी और मताई दोई जनी मिलकें बड़ी सौ माटी कौ मटका फोर के ऊकी तैय्या बना लेत ती। ओई में चना, मका, ज्वार तथा तिली भुंजतती और पैला भर के लडुआ बनके रख जातते। संकरात के मौका पै उरदन की दाल के बने ठडूला, जिनमें सबसें जादा मजा देत ते। पपइयां और लुचई कोनऊ नदिया या नखा कें लिंगे बैठकें खावें कौ अलगई आनन्द आऊत तो। खुरमा और कसार की मिठास तौ पूरे साल भर तक नई भूलत ती। जे सब बातें तो लगत के अब कैवे भर कौ रय गईं। गाँव भरे के सबई जात के लोगन कौं संकरात के लडुवा बँटत ते।

गाँवन में संकरात सुनावें की परम्परा पंडत जी पूरी करत ते। हम जैसे छोटे-बच्चा की बाट देखत रत ते, कबै महाराज संकरात बाँचे। ऊ संकरात में पूरे साल भरे की अच्छी और बुरी बातें निकरततीं, ई की रास कौ संकरात कैसी आई है जा सोऊ बताबें सें नई चूकत ते। अब तौ जा परम्परा सोऊ दम तोड़ती दिखा रई। ना तो वे सुनावे वारे महाराज बचे हैं और न सुनबे बारे भोरे-भारे जजमान। पंडत जी बता देतते के इतनी बेंरा बुड़की लेने हैं। उतनी बेंरा आमघाट पे बुड़की लेबे गांव भरे के लोग-लुगाई अपनें-अपने बाल गोपालन के संगे पौंचवे सें नई चूकत ते। काय जा मन में भावना रत ती कि कऊं सई समय ना निकर जाय। बुड़की लेवे के बाद सबसें पैला महादेव जू पे जल चढ़ाउत ते। फिर मेला देखबे के लानें कड़ जात ते। मेला में बन्न-बन्न के सामान सोऊ बिकबे आऊत ते। मोड़ी-मोड़न कौं तौ हिड़ौला झूलबे कौं मिल जात तो। कछु असफेर भरे के भजन गावे वारन की टोलियां भगतें गाउत रत ते। ई के साथ-साथ मेला में एक दूसरें से मिल सोऊ लेत ते। अब मेला कौं सरूप तौ बढ़ गयौ पर ऊमें बसी पुरानी भावना लगत कऊँ बिला सी गई। न तो पैंला जैसो प्रेम भाव बचो है और न ही परब-त्योंहार की मन में बसी हुलास। सबई कछु दिखावटी बनके रै गवौ। अब न तौ गाँवन-गाँवन सें आबे वारी बैलगाड़ियाँ हैं और ना ही पैदल चलत भए गेलारे। जो अपने मीठे सुरन में 'रमटेरा' गाउत भए बुड़की लेवे जात ते।

"कड़ चलो हो टटियाँ देकें, गंगाजू के तीर हो।
अब ये सबई यादें तो बनकें रै भर गई हैं।।"

बुन्देलखण्ड के इन तीज त्यौहारन के ऊपरी सरूप में तौ कोनऊं खास अन्तर नईं दिखा परत हैं, काय के अबै सोऊ कछु जने ई ये पुरानें हिसाब सें मना रय हैं। पर जा कैवे में सोऊ संकोच नईयाँ कै इन परबन कौ भीतरी सरूप भौत कछु बदल गयौ है। कछु नये पढ़े-लिखे जा मानत हैं कै पुरानी सबई बातें खराब हतीं। वे जा काय भूल जात कै कभऊं कभऊं तौ जीर्ण-शीर्ण के गरभ से ही सिरजन के पीका फूटत हैं। आज दिना आदमी के मन में जौ बदलाव दिखा दे रव वौ कोनऊ अच्छौ नोई हो रव। हम अपनई पाँव पें कुल्हारी मार रये। तीज-त्योहारन में भौत तेजी से आ रये बदलावों को समझने परै और सतर्क सोऊ रने आय। हमाई पावन लोक संस्कृति में नई उपभोक्तावादी बीमारी कौ कीरा कऊं लग पायो तौ जा जाने रईयो कै फिर कोऊ बचैया नैया, ई सें हमाई संस्कृति कौ जौन निश्छल रूप है वौ तनकई देर में नाश हो जै है। 'लोक' कौ देबे वारो जीवनदायी रस कौ 'इमरित कुण्ड' सूखवै में देर न लगे। हमाय लिंगा भौतिक सुखन कौ तौ ढेर सौ लग गयौ परन्तु चेहरन सें खुसी कौ भाव कऊं बिला सा गयौ। गर हम सबई जनें सही समय पै नई चेत पाए तौ बुन्देली लोक संस्कृति कौ जौ विशाल बिरछा कुम्हलाने में तनकऊं देर न लगै। हमाय जौन पुरखन ने ई संस्कृति के बनावें में सैकरन साल लगा दये ते उये हमें मिटाबें कौ कलंक माथे पे तौ नई लेने है। अपने तरफ सें जितनौ बन सके उये बचावें के लाने तन मन और धन से कोसिस करवे की जरूरत है।

- प्राध्यापक, शास. महाविद्या., राघौगढ़ जिला गुना (म.प्र.)

मैंगाई की मार

- डॉ. लालजी सहाय श्रीवास्तव 'लाल'

मैंगाई की मार सें, त्राह-त्राह चहुँ ओर।
शासक ही जब मौंन है, की खां दैबी खोर।।
की खां दैबी खोर, मची है खा-खा खइया।
लाँच-घोंच की नोंच, मचा रयी हा-हा दइया।।
कहत 'लाल' किहिं भाँत, पटै जा गैरी खाई।
सुरसा सौ मौं बाँय, आज ठाँड़ी मैंगाई।।

- टीकमगढ़ (म.प्र.)

बिहारी सतसई के छन्दबद्धकर्त्ता- राममनोहर ब्रजपुरिया 'सम्राट'

- डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

प्रकाशन और प्रचार-प्रसार के अभाव में बड़ी-बड़ी प्रतिभायें भी अनजानी और अपरिचित रह जाती हैं। यदि कभी देर से कुछ प्रकाशन हुआ भी तो वह सामयिकता के प्रश्न का शिकार होकर उपेक्षित रह जाता है। यही स्थिति असाधारण प्रतिभा के धनी श्री राममनोहर ब्रजपुरिया 'सम्राट' के साथ भी हुई। जिन्होंने. सन् १६२६ से सन् १६२६ के मध्य बिहारी सतसई के दोहों को सवैया और कवित्तों में अपनी शैली में भावानुवाद किया, किन्तु उसका प्रकाशन अनुवाद के लगभग ८० (अस्सी) वर्ष बाद सन् २००८ में उनके सुपुत्र द्वारा कराया गया। प्रकाशन के बावजूद सुव्यवस्थित प्रचार-प्रसार न होने से हिन्दी गत में उसकी कोई चर्चा भी नहीं हुई। यही कृति यदि ८० वर्ष पूर्व प्रकाशित हो गई होती तो 'सम्राट' जी भी बड़ी प्रतिष्ठित साहित्यिक प्रतिभाओं में परिगणित किये जाते।

सम्राट जी का जन्म जून सन् १८६७ में मुड़वारा (कटनी) म.प्र. में हुआ था। उनकी निधन तिथि १७ अक्टूबर सन् १६७७ है। उनकी माता का नाम सीताबाई तथा पिता का नाम हीरालाल ब्रजपुरिया था। उनका प्रमुख व्यवसाय दलाली था। उन्होंने दूसरी अंग्रेजी तक शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु उनकी काव्य-कृतियों को देखकर कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि उनकी शिक्षा इतनी कम थी। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में की गई उनकी सेवायें अविस्मरणीय हैं। अपनी लगनशीलता, स्पष्टवादिता, न्यायप्रियता और व्यवहार कुशलता के कारण कटनी के अलावा दूर-दूर तक उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय भाग लिया था और तीन बार जेल-यात्रा भी की थी। आजीवन खादीधारी ब्रजपुरिया जी पर गाँधी तथा विनोबा भावे का अत्यधिक प्रभाव था। राष्ट्रप्रेम और मानवता की भावनायें उनमें कूट-कूट कर भरी थीं। वे अनेक सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं से जुड़े थे। उन्होंने कभी स्वतांत्रता संग्राम सेनानी की पेंशन स्वीकार नहीं की, जबकि आजकल नकली सेनानी बनकर लोग पेंशन पाने का जुगाड़ करते रहते हैं।

ब्रजपुरिया जी की अपने समय के साहित्यकारों में अच्छी प्रतिष्ठा थी। उन्हें हिन्दी के अलावा उर्दू, ब्रज और बुन्देली का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की जो इस प्रकार है - १. नमस्ते जी, २. मान का अपमान, ३. समय की पुकार, ४. उद्वेलित हृदय, ५. वंशीविहार, ६. कलामे हकीम, ७. उपालंभ शतक, ८. कारा के गीत, ६. किसान सैनिक, १०. सरला सुनीति, ११. मनोहर विलास। ये सभी ग्रंथ प्रकाशित हैं। इनके अलावा आन्दोलन की तरंगें, ब्रजेश विहार आदि अप्रकाशित कृतियाँ हैं। उनकी रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रही हैं। कुछ दिन पूर्व सम्राट जी के सुपुत्र श्री राधेश्याम ब्रजपुरिया ने मुझे उनकी तीन पुस्तकें उपलब्ध कराईं जो उनके साहित्य सामर्थ्य एवं कृतित्व का बखूबी परिचय कराती हैं। मैं यहाँ उनकी इन्हीं तीन पुस्तकों की संक्षिप्त चर्चा करूँगा।

'उपालंभ शतक' सशक्त छन्दबद्ध रचना है जो रत्नाकर के छंदों की परबस याद कराती है। श्री मद्भागवत से उद्भूत भ्रमरगीत की यह परम्परा हिन्दी में अद्यावधि विद्यमान है। अभी वर्ष २००६ में 'गोपी-गीता' शीर्षक से डॉ. अवधकिशोर जड़िया ने अपनी काव्यकृति प्रकाशित कराई है, जिसका विषय और छन्द रूप रत्नाकर से प्रभावित है, पर उनकी नवीन भाव-भाषा-शैली प्रशंसनीय है। यमक, श्लेष, अनुप्रास आदि का उन्होंने अनूठा प्रयोग किया है। सम्राट जी ने कूबरी को केन्द्र में रखकर उद्धव के समक्ष गोपियों तथा यशोदा और नंद आदि की मार्मिक व्यंजनापूर्ण समर्पित भावनाओं की अभिव्यक्ति उलाहना के रूप में की है। निश्चित रूप में उन छन्दों पर पूववर्ती कवियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। 'उपालंभ शतक' में कुल ६६ (निन्यान्नबे) छंद है और प्रत्येक छंद में कूबरी का किसी न किसी रूप में उल्लेख है। यह उनकी उल्लेखनीय विशिष्टता है। इतने छंदों में इतना निर्वाह सरल नहीं होता। छन्दों का प्रवाह शब्द चयन और अलंकार संयोजन आदि का सान्दर्य रचना की श्रेष्ठता का भली-भाँति बोध कराते हैं। इसमें बुन्देली शब्दावली का भी पर्याप्त प्रयोग है। क्षोभ और आक्रोश का एक छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

ऊधो एक बार कूबरी सों कहि दीजो जाय,
सांवरी सुनै तो बात चोखी बन आवेगी।
गावैं गीत मीत संग पै न उफनावैं अति,
दासी सी रहैं जू, नहिं खासी पछतावैंगी।
भोग की हुलासन में सासन जतायो चहैं,
जेती सहैंगी तेती और बरियावैंगी।
आवै मन पकर के लातन कचर वाको,
कूबरो मिटाऊँ तब चेरी चुपावैगी।

किसान सैनिक और सरला सुनीति' उनकी दूसरी काव्यकृति है जो खड़ी बोली में द्विवेदीकालीन काव्यरूप का बोध कराती है। ऐसा लगता है जैसे कवि मैथिलीशरण गुप्त से प्रभावित है। 'किसान सैनिक' में राष्ट्रप्रेम और मातृभूमि की रक्षा का भाव प्रमुख है। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान हर युवक और कवि इन्हीं भावनाओं से ओतप्रोत और उद्वेलित था। अमरसिंह राष्ट्र-रक्षा में अपने प्राणों की बाजी लगा देता है, पर मातृभूमि पर दाग नहीं लगने देता। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सम्राट जी की आकाँक्षा है कि आज देश को ऐसे ही युवक योद्धाओं की आवश्यकता है।

'सरला सुनीति' एक आदर्श नारी के उच्च आचरणों और आदर्शों की कहानी है जो ध्रुव जैसे बालक को जन्म लेकर अपने संस्कारों से उसे महान बनाती है। सम्राट जी ने इस पौराणिक कथानक के माध्यम से समाज को प्रेरित करने का प्रयास किया है और चाहा है कि भारत भूमि में ऐसी माताओं और संततियों का

प्रादुर्भाव हो ताकि उसका गौरव बढ़ता रहे।

वर्ष २००८ में प्रकाशित सम्राट जी की तीसरी कृति 'मनोहर विलास' अत्यन्त उच्चकोटि की श्रेष्ठ कृति है। इसे सम्राट जी का कीर्तिध्वज कहा जा सकता है। सम्राट जी रचनाओं में उपनाम 'मनोहर' लिखते थे। इस 'मनोहर' की छाप 'उपालंभ शतक' के प्रत्येक छन्द में है और इसी छाप का निर्वाह अधिकांश छन्दों में 'मनोहर विलास' में भी किया गया है। इसी आधार पर इसका यह नाम रखा गया है। 'मनोहर विलास' 'बिहारी सतसई' का पद्यानुवाद है जिसमें कुल ६३५ छन्द हैं। बिहारी सतसई हिन्दी जगत की बहुचर्चित, बहुप्रतिष्ठित श्रेष्ठ कृति है जिसकी लोकप्रियता का साक्षी सम्पूर्ण हिन्दी संसार है। सम्राट जी ने सतसई जैसे गंभीर दोहों का छन्दों में अनुवाद कर अपनी असाधारण काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। यों बिहारी सतसई की अनेक टीकायें समय-समय पर होती रही हैं, पर यह पद्यानुवाद अपने ढंग का अनूठा और अलग है। किसी भी कृति का शब्दशः अनुवाद अत्यन्त दुष्कर है। सम्राट जी ने अपने अनुवाद में बिहारी के दोहों के मूल भावों को बाधित नहीं होने दिया। दो पंक्ति के दोहों को चार पंक्ति के छन्दों में प्रस्तुत किया है। सम्राट जी की भाषा-शैली और शब्द चयन उन दोहों को नया आलोक मिला है। यहाँ मनोहर विलास के दो छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है। बिहारी का एक दोहा इस प्रकार है -

सोनजुही सी जगमगे, अंग अंग जीवन जोति।
सुरंग कुसुंभी कंचुकी, दुरंग मेह दुति होति।-४४४

सम्राट जी का छन्दानुवाद इस प्रकार है -

अलक घुघरारी रतनारे अमोल दृग,
खंजन केहून हम समलेखियतु हैं।
जोवन की जोति अंग अंग जगमगति अति,
रंभा रतीहू की छवि छेकियतु हैं।
दीपत 'मनोहर' दुति सोन की जुही सी खरी,
आनन उजास ऐसो नहिं देखियतु हैं।
सुरंग कुसुंभी रंग कंचुकी फबी है लाल,
प्यारी की देह दुति दुरंग देखियतु हैं।

इसी प्रकार बिहारी का एक दूसरा दोहा है -

चले जाव इत को करै हाथिन को व्योपार।
नहिं जानत इहि पुर बसत, धोबी ओड़ कुम्हार।।४४७

सम्राट जी का अनुवाद देखिए -

घूरन गुलाब इत जानत न कोऊ आब,
ए हो सुजान सब मूढ़न के चाहक हैं।
सिगरी 'मनोहर' यह गाँवहि गँवारन को,
प्रेमी गुनीजन के कोइ न थाहक हैं।
देखत कहा हौ इहि पुर में हैं बसत सब,
धोबी कुम्हार ओड़ उथले सलाहक हैं।
गदभ लदैया सब बसत बपैया इत,
चले जाव हाथिन के कोऊ न गाहक हैं।

बिहारी का एक बहुत प्रसिद्ध दोहा है -

अपने अंग के जानि कै, जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन नितंब को, बड़ो इजाफा कीन।।

सम्राट जी का अनुवाद उसे और निस्तार प्रदान करता है, वहाँ शाब्दिक अनुवाद न होकर काव्य-कौशल अलग बोध होता है -

निपट सुकोची नैन नवके चलैं जे नित,
तिनको इन विकट कमनैत कर दीन्हो है।
सैनन सिखाय मनचंचल मतंग कियौ,
लाज की लगाम जिन टोर धर दीन्हो है।
ओज है 'मनोहर' उभारे उरोज रोज,
सुघार नितंबन ने कुंभमद छीनो है।
जोबन महीपत ने औरन दबाय धाय,
अपने अपनाय कें इजाफो कर लीनो है।

सम्राट की मध्यमवर्गीय साधारण गहोई वैश्य परिवार के सदस्य थे। परिवार की पूरी जिम्मेदारी उनके सर पर थी। दलाली का धंधा करते हुए वे परिवार का पालन करते थे। दलाली का धंधा कोई सरल धंधा नहीं है। सम्राट जी ने दलाली के साथ सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया, राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी कर जेल गए। वह युग बड़ा जटिल था। देश गुलाम था। अंग्रेजों का दबाव था। जिम्मेदारियों और विपरीतताओं के बावजूद ऐसी श्रेष्ठ कविताओं का सृजन साधारण कार्य नहीं था। यही रचनायें उस समय प्रकाशित होतीं तो सम्राट जी का नाम साहित्येतिहास में जुड़ा होता। सर्जना साधना हैं किसी धनबल या बाहुबल से सर्जना-प्रतिभा अर्जित नहीं की जा सकती। यह तपस्या चाहती है। सम्राट जी ने यह उपलब्धि सतत अध्ययन और साधना से प्राप्त की थी। वे सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति थे। खादी का साधारण कुरता या कमीज, धोती, गमछा, टोपी और चप्पल। यही परिधान था उनका। दूसरों की मदद के लिए सदैव प्रस्तुत। वे प्रगतिशील विचारों के थे। इसी आचरण ने उन्हें सम्मानित बनाया। वे कबीरदासी परम्परा के कवि थे। पारिवारिक सामाजिक दायित्वों को पूरा करते हुए लिखना। सम्राट जी का जीवन संघर्षों का जीवन था। उन्होंने कभी गलत से समझौता नहीं किया, न अर्थ व पदलाभ के पीछे भागे। इसीलिए उन्हें आज भी सम्मान के साथ याद किया जाता है। इसीलिए कहा गया है - ''कीर्तियस्य सजीवति।''

- १२, एमआईजी, चौबे कॉलोनी, छतरपुर

कुत्ता श्रोता

- साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी

कुत्ता श्रोता हो गओ, वौ जा पहुँचो मंच
पूँछ हिला तारीफ में, रचबे लगो प्रपंच
रचबे लगो प्रपंच, सूंघकें कवि खाँ चाटो
फेरों दैकें कओ - 'आज मोसें दुःख बाँटो
कअें 'सुमन' कविराय, कवि नें वचन उच्चारे
बड़ो भाग मोरों, श्रोता बन आप पधारे।

-३६/१५, प्रेमगंज, सीपरी, जिला झांसी (उ.प्र.)

ग्वालियर घराने के सारंगीवादक पद्मश्री अब्दुल लतीफ खाँ साहब

- सुधा रावत 'क्षमा'

गोहद का सीधा-सादा युवक माया नगरी मुम्बई के आकर्षण में बंध कर मुम्बई के लिये रवाना हुआ। ट्रेन में बैठकर मन बल्लियों उछल रहा था। बम्बई पहुँचने पर क्या करेंगे, क्या-क्या देखेंगे ऐसे अनेक सपने आँखों में तैर रहे थे। पेड़ पौधे जमीन-आसमान मानों पूरी प्रकृति उसके सपनों के साथ दौड़ रही है। चलती ट्रेन में खिड़की से झाँक कर बाहर का नजारा देखने के लिये गर्दन बाहर निकाल कर झुका तभी जेब में रखे रुपये गिर गये। हाथों से उड़े तोतों को पकड़ने के लिये छटपटाता वह युवक मन मार कर आगे आने वाले पहले स्टेशन यानी भोपाल में उतर गया। ना कोई मंजिल ना लक्ष्य, सिर्फ एक आस कि भोपाल रेलवे स्टेशन के पास उसकी बड़ी बहन की ससुराल है। पर पूरा पता उनका भी मालूम नहीं था। कुछ दिनों इधर-उधर भटकने के बाद बहन का पता पाने में सफल हो गया। घर बैठे-बैठे बहन के घर की रोटियाँ तोड़ना भी उसे नहीं भा रहा था। धीरे-धीरे काम की तलाश में भोपाल की गलियों में भटकने लगा। और इन्हीं तंग गलियों में एक दिन गोहद की एक तवायफ से मुलाकात हो गई और उसने गोहद में छोड़ आये वाद्य सारंगी की याद दिला कर सोते से जगा दिया, मियां तुम तो अच्छे सारंगी नवाज हो तुम्हें दूसरा काम ढूँढ़ने की क्या जरूरत है? आज से ही तुम हमारी बहन को रियाज कराया करो १० रुपये माह के दूंगी। काम की सख्त जरूरत थी तो १० रुपये माह की नौकरी कर ली और सिकन्दरी सरांय लक्ष्मी टाकीज के पास रहकर तवायफों और कठेवालों के साथ संगत करने लगे।

सिकन्दरी सराँय में ही एक दिन बाबू खाँ (आकाशवाणी स्टाफ आर्टिस्ट) ने उस युवक की सारंगी सुनी, उन्हें लगा कोई बात है इसकी सारंगी में और सीधा पूछ बैठे - आकाशवाणी में नौकरी करोगे? अन्धा क्या चाहे आँखे, उसने तुरन्त हाँ कर दी और १९५७ में आकाशवाणी में कान्टैक्ट वेस पर सारंगी वादक के पद पर नौकरी कर ली और फिर जो संगीत का सिलसिला चला तो मुड़कर कभी नहीं देखा। वह युवक और कोई नहीं हजारों दिलों की धड़कन बुन्देलखण्ड और भोपाल की शान देश के शीर्षस्थ सारंगी वादक पद्मश्री अब्दुल लतीफ खाँ साहब ही थे।

उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ साहब का जन्म १९३२ में गोहद (जि. भिण्ड) में हुआ। पिता श्री छोटे खाँ और माँ रौसिया बेगम की एक दर्जन संतानों में ग्यारह बहनों के सबसे छोटे और इकलौते भाई के रूप में बचपन बड़े लाड़-प्यार में बीता। ५ वर्ष की आयु में माँ के देहान्त के बाद बड़ी बहन बिसमिल्लाह बानों ने आपका लालन-पालन किया। बालक लतीफ को पतंग उड़ाने का बहुत शौक था जो अन्तिम समय तक बरकरार रहा और संगीत वह तो उनकी रग-रग में समाया था। घर में हर समय कुछ न कुछ बजाते रहते थे, यहाँ तक कि थाली लोटा, कटोरी, कन्सरिया जो कुछ उनके हाथ लगता उसी को बजा कर संगीत निकालते। पढ़ाई-लिखाई से ज्यादा उनका मन संगीत में लगता था। स्कूली शिक्षा मात्र ८-९ क्लास तक ही हो पाई। हाँ उर्दू की अवश्य चार किताबें पढ़ ली थीं। १९ वर्ष की आयु में ९ वर्ष की वशीरन बी, के साथ विवाह बंधन में बंध गये। गो हद में उनका अपना घर भी था और ससुराल भी। अतः गोहद से उन्हें बड़ा प्रेम था। जन्मभूमि होने के नाते वे बड़ी शिद्दत और श्रद्धा से गोहद के याद करते थे। अपने गाँव की व्याख्या बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाते थे। गोहद यानी 'गायों की हद' भगवान भी कृष्ण इस क्षेत्र में अपनी गऊओं को चराने के लिये आते थे।

गोहद तक ही उनकी हद थी, गौहद के पार उनकी गायें नहीं जाती थी। गौहद को परिभाषित करते हुये उनकी आँखों में गर्व भरी चमक और अधरों पर आनंद की मुस्कान होती। आगे कहते "हमारे पैतृक मकान में मैया का (देवीजी) मंदिर है, ब्राह्मण-बनियों के बीच हमारा बचपन बीता। ठेठ बुन्देल खण्डी हूँ।" और जोरदार ठहाका लगा कर हंसने लगते।

५० वर्षों तक भोपाल में रहकर भी उनके व्यवहार बोली और रहन-सहन में बुन्देली ठसक स्पष्ट देखी जा सकती थी। मलमल का कुर्ता, पायजामा, और पंचा, धोती-कुर्ता उनकी प्रिय पोशाक थी। धोती कुर्ता पहनकर लम्बा तिलक लगा कर जब वे मंच पर सारंगी की प्रस्तुति देने बैठते तो उन्हें देखकर अनायास ही लोग कह उठते - :ये उस्ताद लतीफ खाँ साहब हैं य पंडित लतीफ खाँ साहब? यह बात उन्हें बहुत आनन्द देती, वे हमेशा अपने बच्चों से कहा करते थे कि कलाकार का धर्म कला होता है वह न हिन्दू है न मुसलमान। व्यक्ति सच्चा इन्सान बना रहे यही बहुत है। अपना धर्म तो संगीत है उसी की पूजा-आराधना करो और इस बात को उन्होंने अपने आचरण में भी उतारा। उनके कार्यक्रम का आगाज कुरान की पहली आयत से और समापन देशराग में संगीतबद्ध राम चरित मानस की चौपाइयों से होता था यह उनका नियम था।

जितना डूब कर वे हम्द (अरबी भाषा में अल्लाह की स्तुति) गाते थे उतनी श्रद्धा और भक्ति भाव से चौपाइयाँ प्रस्तुत करते थे और यह सब सिर्फ मंच पर ही नहीं होता था। वरन् उनके घर में भी जितने धूम-धाम से ईद का जश्न होता है उतने ही चाव से होली, दीपावली और रक्षाबंधन के पर्व मनाये जाते हैं। खाँ साहब लक्ष्मी जी, सरस्वती जी तथा हनुमान जी की उपासना करते थे। उनके घर में आज भी इन देवी-देवताओं की प्रतिमायें न सिर्फ विराजमान हैं वरन् वे यथायोग्य पूर्ववत पूजीं भी जाती हैं, उत्तर मुखी हनुमान जी पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। धर्म के नाम पर उनके मन में कोई भेदभाव नहीं था। उनके घर में आज भी बुन्देलखण्डी रीति-रिवाजों को मान्यता दी जाती है। विवाह में तेल-हल्दी चढ़ने से लेकर कन्यादान तक की प्रथा को उनके यहाँ

महत्व दिया जाता है।

श्रृंगार के साथ उनके घर की महिलायें मांग भरना नहीं भूलती। बुन्देलखण्डी होने पर उन्हें गर्व था। वे घर में हमेशा बुन्देली ही बोलते थे। उनकी बोली में जो बुन्देली लटक, अंदाज और मिठास थी वहीं उनका गायन और वादन भी लोक रंग में डूबा हुआ होता था। ठुमरी, टप्पा, दादरा, और रामायण के संग लोकगीतों को भी प्रमुखता देते थे। क्योंकि लोकशैली तो उन्हें अपने दादा, पिता व गुरु से विरासत में ही मिली थी। खाँ साहब के खानदान में संगीत सात पुस्तों से चला आ रहा है दादा हद्दू खाँ साहब अच्छे सारंगी वादक थे, पिता छोटे खाँ सा. व चाचा उदय खाँ सा. भी सारंगी में निपुण थे। अतः आपकी प्रारम्भिक शिक्षा तो पिता व चाचा के सानिध्य में ही हुई, बाद में सुप्रसिद्ध सारंगी वादक उस्ताद बड़े गुलाम अली सावरी साहब से आगे की शिक्षा प्राप्त की।

लतीफ खाँ साहब ने अपनी लम्बी संगीत साधना में अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त किये, जिनमें १९८४ में नगर श्री सम्मान, १९९० में संगीत नाटक अकादमी का सम्मान, १९९५ में शिखर सम्मान, १९९२ में महाराष्ट्र सरकार का तन्त्र विलास सम्मान और २७ मार्च २००२ को देश का शीर्षस्थ पद्मश्री सम्मान प्रमुख है। १९८९ में अभिनव कला की ओर से आपको संगीताचार्य की उपाधि से विभूषित भी किया गया।

उस्ताद यूँ ही पद्मश्री तक नहीं पहुँचे गौरव के शिखर तक पहुँचने के लिये उन्होंने निरन्तर रियाज और अथक परिश्रम किया वे गुरु-शिष्य परम्परा के कड़े अनुशासन में रहकर संगीत की तालीम हासिल करके आग में सोने की तरह तप कर निकले। आरम्भ में एक वर्ष तक तो गुरु जी ने उन्हें संगीत के नाम पर कोई शिक्षा नहीं दी। किसी वाद्यन्त्र को हाथ लगाने दिया। बड़े-बड़े मटकों से पानी भरना व गुरु की देह की सेवा ही उनका काम था। गुरु जी अत्यन्त कड़क थे। जरा सी भूल पर भी सजा मुकर्रर थी। बालक लतीफ इतना कड़ा रियाज कैसे करता, ८-१० घंटे तो रियाज करना ही पड़ता था, दो-चार घण्टे बाद नींद के झोके आने लगते पर डर के मारे फिर जाग जाता, फिर से नींद न आ जाये इसक लिए दीवार में एक कील गाड़ते बालों को धागा से बांध कर कील स लपेट देते, जैसे ही झपकी लगती तो बाल खिंचने से चौंककर फिर रियाज करने लगते। धीरे-धीरे रियाज की अवधि बढ़ाने लगे और संघर्ष के दिनों में वे १८ से १६ घंटे तक रियाज करते थे और उसी का नतीजा यह हुआ कि खाँ साहब सारंगी का पर्याय बन गये और यहाँ यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि पूरे देश में सारंगी बजाने में तो उनका कोई सानी नहीं था। वे सारंगी में और सारंगी उनमें ऐसे रच-बस गये कि सुनने वालों को यह अन्दाजा लगाना मुश्किल होता था कि खाँ साहब सारंगी को बजा रहे हैं या सारंगी उन्हें। सारंगी उनकी आत्मा में पूरी तरह समा गई थी। उस पर उनकी उंगलियों का इतना अधिकार था कि जिस तरह चाहें उसे सुर देते थे, जहाँ चाहें वहाँ घुमा देते थे। कब क्या करते किसी को पता ही नहीं चलता, जब कानों में अति मधुर अति सुरीला मिश्री जैसा रस घुलता तब श्रोता वाह-वाह कर उठते। लोग कहते हैं कि "उनकी उंगलियों में भी आँखें थी।" अक्सर आँखें मूंद कर वे सारंगी से खेलते थे।

सोलो तो वे बेजोड़ बजाते ही थे, संगत में भी उन्हें महारथ हासिल थी। विनम्रता और धैर्य इतना कि संगत करते समय कभी भी कलाकार से आगे नहीं बजाते थे। उनका कहना था हमें कलाकार को पीछे नहीं छोड़ना है, बल्कि स्वयं उसके पीछे चलना है। फॉलो करना ही संगतकार का काम है। लय पर उनका पूरा नियंत्रण था। अक्सर सारंगी वादक अपनी लय तोड़ देते हैं, इसलिये ज्यादातर लोग अपनी गायकी में सारंगी बजवाना पसंद नहीं करते। असल में जहाँ तबले में १० मात्रायें लगती हैं वहीं सारंगी में १६ हो जाती हैं। अतः सारंगी वादक को आगे आगे बजाना मजबूरी हो जाती है किन्तु लतीफ खाँ साहब लय को पकड़ कर चलते थे। उनकी सारंगी की लय नहीं टूटती थी वे कलाकार के साथ-साथ बजाते थे। इसी कारण लोग उनकी संगत पसंद करते थे। कई बड़े कलाकार तो उनकी सारंगी के बिना गाना गाने से इनकार कर देते थे। संगत के मामले में तो 'कुमार गंधर्व' तक उनके कायल थे। उनका कहना था "यदि सारंगी पर अब्दुल लतीफ खाँ साहब हैं तो सारंगी न लेने का सवाल ही नहीं उठता।"

एक बार पं. मल्लिकार्जुन मंसूर से किसी ने पूछा सबसे अच्छा सारंगी वादक कौन है? वे बोले लतीफ खाँ साहब। पूछने वाले ने पुनः पूछा पूरे देश में? वे बोले अब्दुल लतीफ खाँ साहब। उसने सोचा शायद ये मेरा आशय नहीं समझ रहे हैं अतः अपना प्रश्न दुहराते हुये बोला उनके अलावा? वे मुस्कुरा कर बोले सबसे अच्छा सारंगी वादक सिर्फ और सिर्फ उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ ही हैं।

इसी तरह एक कॉन्सर्ट में खाँ साहब उल्लास खुशालकर के साथ संगत कर रहे थे। कार्यक्रम समाप्त होते ही 'पं. रविशंकर जी' मंच पर आये और पूछा सारंगी कौन बजा रहा था। लतीफ खाँ साहब उठ कर खड़े हो गये लोगों ने उनका परिचय कराया रविशंकर जी बोले मैंने अपने ४०-५० साल के संगीत जीवन में ऐसी सारंगी नहीं सुनी और खाँ साहब को गले लगाकर फोटो ग्राफरों से बोले - "अरे भाई उस्ताद जी के साथ हमारा फोटो खींचो।"

उस्ताद जी संगतकार के अलावा कुशल तबलावादक भी थे। इतना ही नहीं पखावज और हारमोनियम पर भी उनकी अच्छी पकड़ थी तो ढोलक मृदंग भी वे गजब का बजाते थे। इसके अलावा वे एक अच्छे कम्पोजर भी थे, गायन, वादन और नृत्य तीनों विधाओं में उन्हें महारत हासिल थी। बहुत कम लोग जानते हैं कि उन्हें नृत्य का भी बहुत ज्ञान था जिन लोगों ने उन्हें नृत्य की मुद्रायें (स्टैप) लेते देखा दाँतों तले उंगली दबा ली। राजधानी की नृत्याँगनायें अक्सर उनसे सलाह मशवरा करती थीं।

इसके अलावा 'लहरा' ने देश में भी उन्हें कमाल हासिल था। असंख्य छोटे बड़े कलाकरों के साथ "उस्ताद जाकिर हुसैन" के तबले के साथ भी उन्होंने जम कर लहरा दिया और वाहवाही लूटी।

उन्हें सुरों की गहरी समझ थी, संगत में भी उनकी सारंगी को अलग से पहचाना और सुना जा सकता था। लतीफ खाँ साहब की सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि वे सारंगी में क्लास बजाते थे।

यह सारंगी बजाने का एक ऐसा तरीका है जिसमें सिर्फ उंगलियों के प्रयोग से शान्त बैठकर सारंगी बजाई जाती थी। इसमें मेहनत कम लगती है पूरे शरीर पर जोर नहीं देना पड़ता हैं वर्ना दूसरे सारंगी वादक तो पूरे शरीर पर जोर देकर सारंगी बजाते हैं। एक और बात में वे सबसे अलग थे सारंगी में पंचम और मध्यम में पहली उंगली (तर्जनी) कोई नहीं लगाता मगर खाँ साहब लगाते थे। एक और बात सुनकर आप चौंक जायेंगे सभी जानते हैं कि सारंगी में अगर थोड़ा सा भी तेल लग जाये यहाँ तक कि अगर बालों में तेल डला हो और वह हाथों में लग जाये तो सारंगी नहीं बजती पर खाँ साहब की यह विशेषता थी कि वे उंगलियों में खास कर तेल लगाकर ही सारंगी बजाने बैठते थे। संगीत में उन्हें सीधे राग पसंद थे। सुबह के रागों में वे ललित तोड़ी व रामकली बहुत पसंद थे तथा रात्रि के रागों में मालकोस, मारवा व यमन राग बजाना अच्छा लगता था रागों की तोड़-मरोड़ उन्हें पसंद नहीं थी। उनकी यही ईमानदारी उन्हें अन्य कलाकारों से अलग स्थापित करती है, तभी तो उस्ताद फरीद जयाउद्दीन डागर साहब उन्हें सुरीला इन्सान कहते थे, तो शोभागूर्टू सुरीली बाँसुरी कहकर पुकारती थी और मधुरानी ने एक कार्यक्रम में कहा कि "सारंगी अपना असली ताआरन्फ तो लतीफ खाँ साहब के हाथों में ही पाती है।"

साजिंदे बिना नशा किये या शराब पिये बिना रात-रात भर कार्यक्रम नहीं दे पाते, इस मिथक को भी खाँ साहब ने ठेंगा दिखाया वे शराब पीकर सारंगी क्या किसी भी वाद्य यन्त्र को हाथ नहीं लगाते थे। मंच पर पीकर बैठना तो बहुत दूर की बात है। वे एकदम सहज और स्वाभाविक व्यक्ति थे, बनावटीपन उनमें कहीं नहीं था, न उनके संगीत में और न ही उनके व्यक्तित्व में। अहंकार तो जैसे उन्हें छूकर भी नहीं निकला था। जरा सा मान-सम्मान पाते ही लोगों में घमंड आ जाता है पर उस्ताद जी देश का शीर्षस्थ सम्मान पद्मश्री पाकर तो जैसे और भी विनम्र हो गये। एक बार किसी ने उनसे पूछा खाँ साहब लोग तो जरा सा मान-सम्मान पाकर अकड़ जाते हैं और आप तो पहले से भी ज्यादा झुक गये? तब वे अपनी कालजयी मुस्कान बिखेरते हुये बोले - "भैया अकड़ता तो मुर्दा है इन्सान का गहना तो विनम्रता ही है।" और यही विनम्रता उनका बहुत बड़ा गुण था जिससे प्रभावित होकर शोभा गोर्टू ने तो यहां तक कह डाला "हमने भगवान को नहीं देखा यदि वह दुनियाँ में है तो अब्दुल लतीफ खाँ साहब जैसा ही होगा।"

एक बार एक मित्र मुगनी खाँ के साथ बैठे थे यूँ ही बातचीत चल रही थी, बातों-बातों में मित्र ने एक वंदिश सुनाई जो लतीफ साहब को पसंद आ गई। मित्र से बोले यह वंदिश मुझे दे दो। पहले तो उन्होंने ना-नुकुर की परन्तु जब ये पीछे पड़ गये तो मुगनी साहब बोले "दे तो दूँ पर एक शर्त है पहले तुम्हें मुझे अपना गुरु बनाना पड़ेगा। खाँ साहब ने पहले तो दोस्ती का वास्ता दिया, परन्तु जब वह नहीं माने बाकायदा अपने हाथ में धागा बंधवाया और दोस्त को अपना गुरु बना लिया और वह स्थाई ले ली। कारण सिर्फ इतना था कि उनके पास पहले से एक ऐसी ही स्थाई थी, और वे उसका जोड़ा बनाना चाहते थे। उसके बाद उन्होंने दोस्ती का रिस्ता तोड़कर गुरु-शिष्य का नाता जोड़ लिया और मुगनी खाँ साहब को हमेशा गुरु का सम्मान दिया। उनके सामने वे कभी भी बीड़ी नहीं पीते थे। हालाकि बाद में मुगनी साहब को भी इस बात का मलाल रहा कि मैंने एक अच्छा दोस्त खो दिया। किन्तु जो शागिर्द पाया वह गुरु से भी महान है इस बात का संतोष और गर्व भी उनके ही हिस्से में आया। विनम्र और शालीन होने का मतलब यह नहीं कि वह किसी से डरते थे। अहंकारी लोगों द्वारा दी गई चुनौती के समय उनकी बुन्देली ठसक जाग उठती थी ऐसे ही एक घटना याद आ रही है।

एक बार आकाशवाणी द्वारा आयोजित एक कन्सर्ट में एक बड़े नामीगिरामी गायक के साथ लतीफ खाँ साहब संगत कर रहे थे। गायक साहब नाक चढ़ा कर बार-बार उनकी तरफ देखकर कहते - अपनी गन्धार ठीक कर लो, वे बेचारे ठीक बजाने के बावजूद भी कुछ नहीं बोले चुपचाप बजाने लगे। इस बार गायक साहब की आवाज कुछ ज्यादा ही ऊँची हो गई "मियाँ अपनी गन्धार देख लो।" खाँ साहब ने गन्धार पर 'गजमार' कर कहा - "मेरी गन्धार तो ये है अब तुम अपनी गन्धार ठीक कर लो।"

हाजिर जवाबी में भी बुन्देलखण्डियों का कोई सानी नहीं है, यह गुण भी उनमें था। नहले पर दहला मारती यह घटना देखें - एक बहुत बड़े गायक थे जिनके नाम का डंका पूरे देश में बज रहा था। गायकी के बीच में तान लेने से पहले बोले कि "अब मैं जो तान ले रहा हूँ उसे अगर कोई सारंगिया बजाये तो उसकी कलाइयों के गट्टे बाहर आ जायेंगें।" और खाँ साहब की तरफ देखा। खाँ साहब ने जवाब में कहा - "और जो तान अब, मैं बजा रहा हूँ उसे कोई गवैया गाये तो उसके हलक से खून आ जायेगा।" ऐसे जवाब की गायक साहब ने कल्पना भी नहीं की थी। तुरन्त घिघया कर बोले - अरे खाँ साहब आप तो बुरा मान गये, मैं तो मजाक कर रहा था। वे बोले मैं कहाँ गम्भीर था मैं भी तो मजाक ही कर रहा था। "किसी का अपमान करना उनको पसंद नहीं था इस कारण लाख पूछने पर भी गायकों के नाम नहीं बताये।

पूरा जीवन संगीत को समर्पित करने के बाद भी व्यक्ति एक साज बजाने में दक्षता हासिल नहीं कर पाता, पर खाँ साहब १४ वाद्य बजाने में पारंगत थे। एक बार आकाशवाणी में एक नये केन्द्र निदेशक ने कार्यभार सम्भाला तो सारे स्टाफ का परिचय लिया। जब संगीत विभाग की बात आई तो बोले संगीत विभाग में जितने भी गायक, वादक व कलाकार हैं सब अपना परिचय कागज पर लिख कर दें कौन क्या बजाता है। चूँकि उस्ताद लतीफ खाँ साहब भी आकाशवाणी के विभागीय कलाकार थे। अतः उनने भी अपना परिचय लिखकर भेजा और उसमें १४ वाद्ययन्त्रों के नाम लिख दिये। पर्चा देखते ही केन्द्र निदेशक भड़क उठे और उनसे पूछा क्यों मिस्टर ये आपने लिखा है? वे बोले - जी हुजूर। उन्होंने कहा मुझे मजाक पसंद नहीं एक आदमी इतने सारे वाद्य यन्त्र कैसे बजा सकता है? ये पर्चा वापस ले जाओ और वह लिखकर लाओ जो तुम बजाते हो। खाँ साहब बड़ी विनम्रता से बोले साहब वही लिखकर लाया हूँ जो बजाता हूँ। केन्द्र निदेशक महोदय बोले -

अच्छा ये मत समझना कि मैं तुम्हें यूँ ही छोड़ दूँगा, एक-एक वाद्य बजाकर सुनाना पड़ेगा। वे बोले "सुन लीजिये हुजूर।" और जो एक के बाद एक वाद्य यन्त्रों पर उस्ताद जी ने हाथ चलाये तो मुंह बाये खड़े डॉ. समर बहादुर सिंह उन्हें साष्टांग दण्डवत करने लगे और बोले - आकाशवाणी धन्य है ऐसा प्रतिभा का धनी कलाकार पाकर।

१९८९ में भारत भवन में सारंगी मेले का आयोजन किया गया, जिसमें पूरे देशमें १२६ सारंगी वादक जमा हुये। एक से बढ़कर एक प्रस्तुतियाँ हुई। उस्ताद हब्दुल लतीफ खाँ साहब की सारंगी सुनकर पं. हनुमान प्रसाद मिश्र (राजन साजन मिश्र के पिताश्री) ने कहा था - "भोपालवासियों का बड़ा सौभाग्य है जो उन्हें लतीफ खाँ जैसा हीरा मिला।" और वाकई जब २७ मार्च २००२ को खाँ साहब को पद्म श्री सम्मान से नवाजा गया तो पूरा भोपाल शहर गर्व से झूम उठा जन-जन में हर्ष की लहर दौड़ गई। हर एक का यही कथन था कि खाँ साहब इस सम्मान के अधिकारी हैं। कुछ को तो यह मलाल रहा कि उन्हें यह सम्मान कुछ देर से मिला, उनकी योग्यता और साधना को देखते हुये यह सम्मान उन्हें बहुत पहले मिलना चाहिए था।

भोपाल को यदि उन पर गर्व है तो उन्हें भी भोपाल से अगाध प्रेम था। उन्हें विदेशों और देश के कोने-कोने से बुलावा आता था। भोपाल छोड़कर जाना उन्हें गवारा नहीं था। १९७५ में सुर सम्राज्ञी लता मंगेशकर व हृदयनाथ मंगेशकर ने उन्हें मुम्बई आने का निमन्त्रण भेजा और कई बार अनुरोध किया पर वे नहीं माने। हमेशा ही हंस कर टालते रहे। १९८० से ८४ तक लगातार जया बच्चन भी खाँ साहब से मुम्बई चलने की जिद करती रहीं, किन्तु वे नहीं गये हंस कर कहते थे "मैं भला मेरा भोपाल भला।" (जया भादुरी बचपन में उनसे गाना सीखती थीं)

६५ वर्षीय श्याम मुन्शी से लेकर ५ वर्ष के फरहान तक उनके शागिर्दो की लम्बी सूची है, जिसमें कुछ विदेशी भी हैं। श्याम मुन्शी और शरबर हुसैन (खाँ साहब का पोता) उनके प्रिय शिष्यों में हैं। श्याम मुन्शी उनके बहुत निकट थे और प्रभावित इतने कि उन्होंने एक वाद्य यन्त्र ही इजाद कर लिया और उसको नाम दिया "लतीफ सारंग" और दूसरी तरफ शरवर हुसैन कम उम्र में ही प्रसिद्ध सारंगी वादक के रूप में स्थापित हो चुके हैं, देश-विदेश में शानदार प्रस्तुतियाँ देकर अपने दादा और गुरु का नाम रोशन कर रहे हैं। बड़े सुपुत्र अनवर गायन के क्षेत्र में नाम कमा रहे हैं तो नफीस अहमद खाँ उन्हें प्यार से खाँ साहब 'चौमुखा' कहते थे प्रसिद्ध तबला वादक हैं, सबसे छोटे बेटे फारुख ने सारंगी की विरासत सम्माल रखी हैं नाती-पोतों सहित पूरा परिवार उन्हीं की बनाये पगडण्डी पर उनके ही पद चिन्हों पर चल रहा है। परन्तु कहते हैं ना कि दाग तो चाँद पर भी होता है। इतनी सारी अच्छाइयों के साथ उनकी एक कमजोरी भी थी वे बीड़ी-सिगरेट का सेवन अधिक मात्रा में करते थे। एक छोटी सी बुराई सारी अच्छाइयों पर भारी पड़ गई। उन्हें लंग्स का कैंसर हो गया और २३ अप्रैल २००३ बुधवार को उनका इन्तकाल हो गया। हमारे बीच से एक महान कलाकार एक सच्चा इन्सान हमेशा-हमेशा के लिये विदा हो गया। पूरे भोपाल में शोक की लहर दौड़ गई। तत्कालीन महामहिम राज्यपाल डॉ. भाई महावीर उनकी पार्थिव देह पर पुष्पान्जिल समर्पित करते हुए फफक कर रो पड़े। सारंगी के स्वर सो गये पर उनकी गूंज आज भी कायम है। क्योंकि उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ साहब जैसे कलाकार सदियों में पैदा होते हैं। वे मरते नहीं, अमर हो जाते हैं।

बुन्देलखण्ड में बेटी को भी बेटा कहकर पुकारा जाता है। इस परम्परा का निर्वाहन करते हुये वे मुझे सदैव 'रावत बेटा' कहकर पुकारते थे। आज उनका यह बेटा उन्हें शत-शत् प्रणाम करते हुए गौरवान्वित है।

- दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल

कमर टोर मैंगाई

- शंकर दयाल खरे 'शंकर'

सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमर टोर मैंगाई।
कौंलौ कैसें करों सामनों, गुनियों मोरे भाई।।

मउआ-चना चिरौंजी दाखन, सैं बड़कें अब हो रए।
खीर-बतासा खैबे खों सब, लरका-बिटियाँ रो रए।।
सपनन कैसीं बातें हो गईं, अब पचमेर मिठाई।
सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमर टोर मैंगाई।।

दूद-मलाई औ गुरयाई, माँगीं मिसरी-दाखें।
आबें-जाबें पई-पाँवनें, कैसें इज्जत राखें?
बीमारी की मुसकिल हो रइ, करबौ आज दबाई।
सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमर टोर मैंगाई।।

दार-चाँउर-पसरट की सौदा, सबकी कीमत बड़ गई।
उन्ना-कपड़न की कीमत तौ, आसमान पै चड़ गई।।
उन्नन सें माँगी हो रइ है, उनकी आज सिंमाई।
सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमर टोर मैंगाई।।

दस रुपयन कौ एक कंसरा, पानी आज बिकाबै।
मुठी भरे रुपयन में सब्जी, मुठी भरी ही आबै।।
पइसा की कीमत नइँ रै गइ, भओ रुपइया पाई।
सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमर टोर मैंगाई।।

मैंगाई की मार सें भैया, अच्छे-अच्छे रो रए।
निस-दिन सोसत कैसौ करिये, बे दिन, अब कौं खो गए?
स्यानी मौंड़ी घर में बैठी, कैसें करौं सगाई?
सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमर टोर मैंगाई।।

सब ईकी चिन्ता में डूबे, नेता औ सरकार।
कोसस सबरीं बेकाबू भईं, कड़ो न कौनउँ सार।।
सब सतरंजी चालें चल-चल, करबें आपाधाई।
सुरसा सौ मौं बाउत आ रइ, कमरटोर मैंगाई।।

- दुल्हाबाबा मार्ग, नौगाँव, जिला छतरपुर (म.प्र.)

माँ लच्छमी व्रत: विधि एवं कथा

- कु. रामकिशोरी गुप्ता

हमारे देश में हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, इसाई आदि लगभग सभी धर्मों के अनुयायी निवास करते हैं। सबके विभिन्न पर्व, व्रत, त्योहार होते हैं। देश के अन्य भागों की तुलना में बुन्देलखण्ड में हिन्दू धर्मावलंबियों में व्रत पर्वों की संख्या कुछ अधिक प्रतीत होती है। इनमें भी महिलाओं के व्रत, पर्व, त्यौहार कुछ अधिक होते हैं। इनमें एक प्रमुख व्रत है - "माँ लच्छमी" (महालक्ष्मी)

'माँ लच्छमी' का व्रत भाद्रपद शुक्ल पक्ष की अष्टमी से आरम्भ होता है और क्वाँर माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को समापन होता है। यह पर्व पूरे १५ दिन अर्थात् एक पक्ष तक चलता है।

सुहागवती (सौभाग्यवती) महिलाओं द्वारा अपने अटल सुहाग (एहिबात) की कामना से इस व्रत को रखा जाता है। भाँदों माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को 'गड़ा लेनू आठें' कहलाती हैं। सुहागवती महिलाएँ लम्बा सा सूत का धागा हल्दी में रंगकर उसमें एक गाँठ लगाती हैं और पूजा करती हैं। भाँदों शुक्ल अष्टमी से क्वांर कृष्ण अष्टमी तक प्रतिदिन इसमें एक गाँठ लगाकर उसकी पूजा की जाती है। अष्टमी के दिन घर की लीपा-पोती की जाती है और नगर के पास स्थित नदी/नाला/तालाब पर जाकर बाल धोकर अढ़ाई सोरा (चालीस वार) ढार कर स्नान करती हैं। स्नान करने के लिये जाते समय अड़ोस-पड़ोस की महिलाओं को बुलाती हुई कहती हैं चलो माँ लच्छमी लेवें चलिये।

गढ़ा पूजन के लिये अठवाइ, पपरियाँ, गुजियाँ, बेसन के फूल, गुना, तीपरा, चौपरा, आटा में गुड़ या शक्कर मिला कर मोयन देकर पेड़ा जैसे सुरा बनाती हैं तथा लच्छमी के आभूषण आदि पक्वान के रूप में बनाये जाते हैं। पूजन हेतु स्थानीय कुम्हार घर-घर हाथी पर विराजमान लक्ष्मी जी की मूर्ति पहुँचाता है। गोधूलि की बेला में महिलाएं अपना सोलह श्रृंगार कर माँ लक्ष्मी तथा गड़ा का विधिवत पूजन करती हैं। लक्ष्मी जी को चढ़ाने के लिए सुहाग का सामान तथा चालीस सुरा (आटे तथा गुड़ मिलाकर पेड़ा बनाकर तले जाते हैं) भी चढ़ाती हैं। पूजन करने के पश्चात् कहानी इस प्रकार कहतीं हैं -

ऐसें, ऐसें एक राजा हते। उनकी दो हतीं रानी, एक रानी महलन में रत्ती सो वे महलनवारी रानी बजत्ती। दूसरी रानी वन में रत्तीं, सो वे नीम वनवारी बजत्ती। राजन को काम है शिकार खेलवो। एक दिना बे शिकार खेलबे जंगल में गए। उनके संगे हते उनके नाऊ कक्का। शिकार खेल कें राजा लौट रयते, गैल में तला (तालाब) पै उननें लुगाईयन खों गड़ा बना कें आपस में बतकाव करतन देखो। एक ने कई कै एक गड़ा बाड़ू (अधिक) हो गयो; ई को का करें, कौन खाँ देबी। एतेकई में राजा कड़े सो उनने पूछी इतै झुण्ड में बैठीं जे का करईं। उनन ने कई, आज गड़ा लेनूँ आठें हैं आज सें पन्दरा दिना तक रोज एक गाँठ लगाने उर पूजा करने परे, उर कुँआर बदी आठें खों घर की लीपापोती, करके अढ़ाई सोरा ढार कें सपर कें संजा की बेराँ हाथी की पूजा करने परत है, उर दिन भर उपास रत हैं, हमाव एक गड़ा बाड़ू हो गओ है। नाऊ कक्का ने महाराज सें कई कि महाराज रानी जू के लाने घरै गड़ा लै चलो, महलन में रानी जू पूजा कर लें हैं। महाराज गड़ा लेकें महलन में आये उर रानी से कई कि रानी जू हम तुमाये लाने गड़ा ले आये उर पूजा की तरकीब बताई उर गड़ा रानी के हाथ में दै दओ। रानी ने गड़ा खों आग में डारत भई बोली दूध की साड़ी उर माड़े के पपटी तो खबत नइयाँ ठेंठरा गुलेला को खाहै को जा पूजा करै। रानी की चेरी (दासी) ने गड़ा खो आग में से उठा कें दूध में बुझा कें आँचर के छोड़ में बाँधत भई कन लगी "ई गड़ा खो नीमनवारी रानी खों दैबी। दासी नीमवन वारी रानी के पास आई उर कन लगी रानी जू हम तुमाये लाने एक व्रत लै आये, उर गड़ा खाँ आँचर के छोर सें छोर कैं रानी के आँचर में धरकें कन लगी कै पन्दरा दिन तक गड़ा में एक-एक गाँठ रोज लगाकें पूजा करने है। कुँआर वदी आठें के दिन माँ लच्छमी को व्रत उर पूजा रचा करने परें। नीमवन वारी रानी ने खुशी-खुशी गड़ा अपने आँचर में लयो उर लच्छमी जू के पाँव परत भइ कन लगी हमें का काम करने। हम तो पूजा कर लैवी। चेरी अपने घरै चली गई।

पन्दरा दिना बाद लच्छमी जू नें एक डुकरिआ कौ वेश धर लओ उर पौंची महलन में, कन लगीं - हम रानी की मौसी आँय हमें, रानी के पास जानें। चेरी भगत-भगत आई महलन वारी रानी सें बोली रानी जू तुमाई मौसी आई। बूढ़ी पुरानी हैं, करयाई लचक

महालक्ष्मी व्रत के अवसर पर कही जाने वाली 'आमोती दामोती रानी, पोला पाटन गाँव, मंगल सिंह राजा (मगर सेन राजा) बम्मन वरुआ कहै कहानी, सुनो हो माँ काली हो देवी, माँ लच्छमी रानी, हमसें कातें तुम सें सुनते सोरा बोल की कहानी का एक संदर्भ झाँसी जिला गजेटियर सम्पादक - ई.वी. जोशी, प्रकाशक - उ.प्र. शासन गजेटियर विभाग लखनऊ, संस्करण सन् १९६४ ई. के पृष्ठ ३५२-३५३ पर इस प्रकार अंकित है-

Madanpur - a village lies about 107 miles south of Jhansi and 28 miles south west of Mahroni, in Lot. 24°15' N. and Long 78°42' E..... A little to the west of the village in the site of an older town Patan, where there are some old Jain temples. The remains of foudation wall and a gate of an old building are said to belong to the palace of Mangal Singh, a loyendary prehistoric king of Patan. About a mile to the east of madanpur is Patan, a gorge formed by the orri river cutting through the sandstone ridge some natural caverns in the vicinity were at one time inhabited by hermits but have been the haunt of tiger for decades now...

– सम्पादक

गई, चींथरा-कूकरा लटक रये, नाक बै रई, दाँत बायरे कड़े, देखतन में बुरई लगत है। रानी बोली हमाई कौनऊ मौसी धौसी नइयाँ। नीमवन वारी की हुइये। भगा दो। अब लच्छमी जू नीमवन वारी रानी के घरे आई। माँ लच्छमी कौ दिन हतो सो वे घर को ढिग धर कें लीप रई ती इनने देखो बायरें कोऊ ठाँड़ो है सो बायरें ढूंकी। डुकरिया को वेश तो पैलउ जैसो हतो। वे बोली - बेटा! हम तुमाई दूर की मौसी आँय। रानी ने कई मौसी जू आवो होय, विराजवो होय उर पटा डार दओ बैठवे के लाने सो मौसी पटा पै बैठ गई। रानी ने कई मौसी जू आज माँ लच्छमी है सो लीपा-पोती कर लई। संजा के पूजा कर लेबी। मौसी बोली बेटी तुम तला पै जाकें बार धो लियो उर अढ़ाई सौरा ढारकें सपर आव। जब तला पै पैरी सैं पानी में उतरन लगो सो तुमें सोने को गडुआ (लोटा) मिले। तुम ऊ गडुआ से अड़ाई सोरा ढार लियो। रानी ने कई मौसी जे साके पारे तो महलन वारी रानी के आंय हमारे लाने काँ धरें सोने के गडुआ? मौसी को रूप धरें लच्छमी जू ने कई तुमें का करने हम जो कै रय सो करो। अढ़ाई सोरा ढार के पैरियन में लहर-पटोरे (लहँगा-चुनरी) धरें हुइयें सो उठा कै पैर लियो। घरे आवे पै दोरैं ऐरावत हाथी बंदो मिले सो पूजा कर लईयो। मन में रानी सोचन लगी कि मौसी कै रई सो नोनी कै रई। अकेले जे सब साके-पारे तो मह्लनवारी रानी है हमाये भाग में काँ धरे?

रानी चली तला पै अड़ाई सोरा ढारवें के लाने। जैसई रानी ताल पैं पौंची पैरी पै दो सोने के गडुआ आ गये। उनने अड़ाई सोरा ढार कें सपर कें पैरी के ऊपर आई सो लहर पटोरे धरे मिले, सो वे पैर लये। घर के दौरें पै ऐरावत हाथी बँदो मिलो उर महल ठाड़े हो गये। भीतर गई तौ उतै उने मौसी कितऊ नईं दिखानी ऊपर अटा पैं चढ़कें देख लयो। मौसी नईं दिखानी जानें कितै बिला गँईं। उतै तो मौसी को रूप धर कैं सजीवन माँ लच्छमी जू आईं हतीं।

इतै राजा के मन में आई आज नीमवन वारी रानी कें चलवीं। राजा घोड़ा पै बैठे चले आ रय ते। रानी ने अटा पै सें देखो राजा आ रये हैं सो वे झट्टई दोरे पै आईं और गाँठ जोर के ऐरावत हाथी की पूजा करी। संजा के माटी के हाथी की पूजा विधिवत करी, भाँत-भाँत के पकवान को परसाद लगाओ आरती करी।

इतै महलन वारी रानी ने सोची कि राजा खों गये भौत देर हो गई सो बई चली नीमबन बारी रानी के घरै। उनने उतै महल देखो उर खूब भीड़ देखकें जरबर गई। बायरै नरदा (नाली) में ढूँक के देखन लगी, इत्तई में भीतर सें कौनऊ ने भात को ताती-तातो माड़ फेकौ सो इनको मों बर गओ। आदौं आँग आदमी को, उर मौं सुगरिया जैसो हो गओ उर वे हुर्र-हुर्र करन लगीं। लच्छमी जू को अनादर करें सें जो सब हो गओ। जब रानी उरबतियाँ के नैचें ठाड़ी भई, सो उरबतिआं बोली जितनो भारू तो जो छान छप्पर नइयाँ। जितनो माँ-लच्छमी जू के निर्वासिन को है उर ढक्का दै दओ। अब रानी घिनोंची के लिंगा ठाड़ी भई। घिनोंची कन लगी चार भरीं खेपें धरीं, चार रीतीं धरी इनकौ इतनों भार नइयाँ, जित्तो ई को है। घिनौची ने सोउ धक्का दे दओ। अब रानी आई घूरे पै। सो घूरे ने बेई बातें कँई उर ढक्का दै दओ। अब रानी मारी ढकेली फिरत फिरत डाँग की तरफ गई। दूर सें इने एक बाबा जू की मड़इया दिखानीं। साधु बाबा गये ते माँगबे के लानें। बायरे की साँकर लगी हती, रानी साँकर खोलकें मड़इया में घुस गईं भीतर सें साँकर लगा लई। बाबा जू खौ तीन दिना कछुई नईं मिलो। वे रीते अपनी मड़इया में आये सो भीतर से किवार की साँकर लगीती। बाबाजू ने कई कि बिटिया हुईये तौ धरम की भानेजन उर लड़का हुईये तो धरम को भाँनेंज किवाड़ खोल दे। रानी ने किवाड़ खोल दये। बाबा ने इनकी दशा देखी। उनने ध्यान धरकें देखो सो वे समज गये कि जे माँ लच्छमी जू की निर्वासिन हैं। रानी ने पूछी-महाराज हमाई जा दशा कैसें नोनी हुईये। बाबाजू ने कई अब तुम इतई रऔ। दस दिना बाद कातिक मईना लग जैहै, सो तुम नदी, तला पै कतक्यारियन के दातुन, फँक्का उठा के फैंकियौ। उनके उन्नन के छींटा परैं, उनकी चौंतरियन कों रोज लीपियो, झाडू लगाइओ। उन रानी ने मईना भर ऐसई करो। जब कातिक पूरो भओ। सो अब कतक्यारियन ने बाबा जू से कई महाराज कन्या लिवा ले आव। हम भोग परसाद दे देवैं। बाबा बोले, तुम सब जनी अपनो-अपनो व्रत को पुन्य इन्हें दो जीसें इनकी काया सुवरन की हो जाय। सबने अपनो-अपनो पुण्य दे दओ। उनकी काया पैलउं जैसी हो गई।

आगें का भओ, इनकी ताई माँ लच्छमी जू की किरपा भई सो राजा के मन में आई भौत दिना हो गये, महलनवारी रानी के पास चलबें। राजा महलन में आये। रानी नइं दिखानी। चेरियन से पूँछी। वें कन लगी महाराज रानी जू तो भौत दिनन सें नइयाँ। अब राजा अपनो घोड़ा उर नाऊ कक्का खौं संगे लै के चले ढूंढ़वे के लाने। पौंचत-पौंचत डाँग में अँदयारौ होन लगो। दूर से उन्हें बाबा की मड़इया में दिया कौ उजयारौ दिखानो सो राजा उतईं पौंच गये। रात भर ठैरे। भुनसारे राजा के भोजन बनें। रानी ने बाबा सें कई "हम परसबें जब जैहें जब हमें भाँत-भाँत के सात जोरे सिमा दो। बाबा ने ऊसई करो। रानी अब भोजन परसबे के लाने बेर-बेर जोरे (लहंगा) बदल-बदल के जावें। नाऊ होत छत्तीसा, सो ऊनें पैली बेर रानी के बिछिया में कढ़ी को छींटा मार दओ तो। राजा के भोजन हो गये। राजा ने नाऊ से कई बाबा जू के सात जनीं काँ से आईं। नाऊ बोलो महाराज - है तो एकई जनी, उन्ना बेऊ बदल-बदल के पैरकें आई परसबे के लानें।" राजा ने कई तोय कैसे पतो नाऊ बोलो-महाराज हमने पैली बेर में बिछिया के ऊपर कढ़ी को छींटा मार दओ तो।

रानी ने भीतर सें देखो महाराज को, दोई जनन की निगाह एक-दूसरे पे परी। रानी चीन गई जेई हमाये राजा आँय, राजा रानी खों चीन गये। राजा ने बाबा जू से कई कै बाबा जू जे तो हमाई रानी आँय। उनने पूरी कानियां बताईं। बाबाजू ने राजा के संगे रानी की विदा करी। रानी निगन लगी सो संगे बाबा जू की मड़इया सोऊ निगन लगीं। बाबा जू बोले बिन्नू पाछें मुड़कें तो देखौ। बेटी ने पाछें मुड़ कें देखो बाबा की मड़इया रुक गई। तबई सें बिटिया की बिदा के बाद एक-दो-चार डग धरकें पाछें मुड़कें

देखवे कौ चलन चल गऔ, उर अबै तक चलो आ रओ। रानी महलन में आई। अच्छी तरां सें रन लगी, वेई राजा भये वेई रानी भईं, किसा हती सो पूरी भई, जै माँ लच्छमी जू की।

कहानी पूरी होने के बाद आरती की जाती है, आरती-जय लक्ष्मीमाता, जय लक्ष्मीमाता। अन्त में सोरा (सोलह) सेंगे चावल बांये हाथ की हथेली में रखकर दाँये हाथ से एक-एक चावल उठाकर हाथी पर चढ़ाते हुए कहते हैं -

आमोती-दामोती रानी, पोला पर पाटन गाँव।
मंगल सिंह राजा, बम्मन बरुआ कहैं कहानी।
सुनो माँ काली हो देवी माँ लक्ष्मी रानी।
हमसें कातीं तुम सैं सुनती, सोरा बोल की एक कहानी।

बुन्देलखण्ड एक विस्तृत क्षेत्र है, इसमें कहीं-कहीं थोड़ा अन्तर भी सुनने को मिलता है यथा -

आमोती दामोती सोलह पर पाटन गाँव, मंगल सैन राजा बम्मन बरुआ कहैं कहानी, सुनो हो माँ लच्छमी देवी, रानी हमसे कहतीं तुमसैं सुनतीं, सोलह बोल की एक कहानी।

इस प्रकार सोलह बार चावल चढ़ाकर माँ लच्छमी से अपने अटल सुहाग की कामना करते हुए पैर पड़ती हैं। गड़ा को पूजन-स्थल से उठाकर गले में पहनकर परिवार के बड़े बूढ़े के पैर छू कर आशीर्वाद लेकर प्रसाद आदि पाकर व्रत का समापन किया जाता है।

- पुराना पोस्ट आफिस के पास, हवेली रोड, टीकमगढ़

बुन्देलखंड गौरव गाथा

- चौ. शीलचन्द्र जैन

जौ बुन्देलखंड भारत में, लगत सबइ सों नोंनों।
ई धरती में तामों, हीरा, और कड़त है सोंनों।।
आल्हा, ऊदल, देवा की, वे रणभेदीं हुँकारें।
छत्रसाल,चम्पत की उनकीं, फौलादी तरवारें।।
सावन्तसिंह देव की ईमें, कड़कत हती दुनाली।
तुबक न चूकी गोविन्द सिंह की, जाँ जाँ उननें घाली।।
जिन पुरषन नें कभउँ न्याय सों, सपनें मों नइँ मोड़ो।
रैयत की पुकार सुन जिननें, लरका लों नइँ छोड़ो।।
न्यायवन्त भय वीरसिंह जू देव ओरछावारे।
जिनने अपने राजकुँवर, कुत्तों से चिथवा डारे।।
हाय हाय कर रइ रैयत, परवार और पुरवासी।
न्यायवन्त राजा ने तौउ नइँ, एकउ लई उसासी।।
तिड़ी बिड़ी करवा लरका खों, फिर बोले जा वानी।
सारी रैयत पूत हमारी, हमें भई का हानी।।
प्रान भलाँई चले जावें पै, होन न दूँ अनहोनों।।
बखत बली ने बखत देखकें, ठानी विकट लराई।
फौजें भगीं फिरंगी कीं, ऐसी तरवार चलाई।।
काटो अकबर के सेनापति, कौ जिन मूड़ दिमानों।
क्षत्रिय कुल में बबर शेर तो, वीर सिंह मरदानों।।
जोत प्रथा गउवन की जिननें, बन्द करा दइ पल में।
ऐसे हते पहार सिंह राजा वस बुन्देलन में।।
करो शिकार शेर कौ जिननें, हाँक हाँक कें भारी।
सावन्तसिंह नरेश अजूवाँ हते, दुनालीधारी।।
दानी भये अमानसिंह, विलरो सोनों अनहोनों।।
पद्माकर कवि केशव की, वे कवितायें अनमोली।
तुलसी ने रामायण रचकें, आँख सबइ की खोली।।
भये ईसुरी जिननें फागन की दइ खोल पुटरिया।
भट्ट बिहारी कविता घर की, खोली इतइ किवरिया।।
झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की कठिन कहानी।
दओ उतार घरी भर में तो, अँगरेजन कौ पानी।।
रानी कुन्दन कुँवरि हाथ में, लैकें तेगा तानों।
नायक ने छिन भर में जी कौ, साँचौ लोहा मानों।।
राय प्रवीन ओरछा वारी, नचनारी अलवेली।
जी की कै रइ कथा आज लों, टीलौ बनीं हवेली।।
सिंघई छतारे के घर कौ ज्योतिष है सबकौ जानों।
जल में नइयाँ मौत, कात ते, डोंड़ा जवै बहानों।।
सुनी कभउँ मधुकरशाही टीका की कठिन कहानी।
बुन्देलन की धर्म वीरता, जब अकबर ने जानी।।
खजुराहो की कला अजूबाँ, दुनियाँ में लासानी।।
साढ़े तीन दिना में कारीगर हो गव पाखानी।।
दोनागिर, नेंनागिर, नावइ पवा पपौरा देखौ।
देवगढ़ औ अहार में नइयाँ, प्रतिमाओं कौ लेखौ।।
थूवोन और चँदेरी, सोनागिर की शोभा न्यारी।
कुण्डलपुर के दर्शन खों मिलजुर जा रय नर नारी।।
भियाकुण्ड में बुड़की कौ हर साल भरत है मेला।।
और जटाशंकर के दर्शन, में नइँ लगत अधेला।।
कूँड़ादे के देहरे में, हुइयै हर साल मिलौनौ।।
जमना और नर्वदा चम्बल टोंस नदी कौ पानी।
बीला और धसान सींच रईं, जा धरती मनमानी।।
चित्रकूट के बिरवन कीं देखौ जे शीतल छइयाँ।
जी छैयाँ में बैठ दुपारी, विलमा लेतीं गुइयाँ।।
मउवामेवा, बेर कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।
पुरखन सों जा सुनी, अन्तकव कीनें काँ खा पाई।।
ऐसौ जौ बुन्देलखण्ड, भारत में बनों सलोंनों।।

- बस स्टैण्ड, घुवारा, जिला छतरपुर

चतुर-बौटिया

- भारतेन्दु अरजरिया

आजकाल गाँव-गाँव में मोबाल फून व डब्बा वारे फून लग गये, चाये जबै जाँ कौ हाल जान लेव, चाये जी सें फून मिलाकें घरी भरे में बतखाव करलेव। हमने अपने मिलनियाँ पं. श्री बाबूलाल तिवारी जू बधमऊ बारन सें बात करबे के लाने फून लगाधरो सो घन्टी जान लगी, तनकदेर में ऊतरफा से कोउ लुगाई जनी की अवाज आई "तुम्हे कीसे आय बात करनें?" हमें बाबूलाल तिवारी जू से आय बात करने; हमने कही।

जो उनको नम्बर न होंईं, हम उनकौ नम्बर तुमे मंगाये देत! मीठे बोल बोलनवारी बौटिया ने फून पै कही। ओ! रामकली बिन्नू तनक तिवारी जू के बड़े भइया से, उनकौ नम्बर लिखवा ल्या, जे एक जने उनसे बात करो चाहत। काये जू अपुन कौंसे फून लगारये, कौंके आव?"

हम महोबे से फून लगा रये, इतई महोबे के आंय। तुमने महोबा को नाँव सुनो?" हओ! परसाल हम कजरिया कौ मेला दिखन, महोबे गये ते, किरतुआ ताल पै भारी भीर मची ती। आला-ऊदल की सबारी हाथी घोड़न पै सजी तरवारे लेंय कढ़ी ती, सजीवन मूरते दिखतीं तीं। रात भर उतई तला पै सैरो, कजरिया की लड़ाइ सुनत रये। मिठया की दुकान से कछू खापी लओ तो। चाय पान की अनगिनती दुकनें लगीं ती। दूसरे दिना गुखार कौ मेला हतो, नामी गिरामी दंगल लगो तो। भोले बाबा की भारी मूरत पारवा पै बनी है उतई सब जने पूजा करके शीश नवा रहे ते। बड़े बड्डे-बड्डे हिंड़ोला घलेते, रै चतुआ, नाँच तमाशे लगे ते। जा लुहार की बिन्नूं रामकली और में एक पलकिया में बैठे ते, हमाई तौ आँखें मिच गई ती।

दाम देय गन्नेटी खाय, टूटै पलकिया जीसे जाय।

जे हिडोला इत्ते भारी ऊँचे जानें कीनें बना दये, इत्ते बड्डे बनन लगे कि अकास खाँ छू कै उतर आउत। लेवआ गई रामकली, काये बिन्नू का बताओ तिवारी जू कौ लम्बर?

लुहार की बिन्नू नें कई कि उनके बड़े मोड़ा ने लम्बर लिख दओ, दो सौ पैसठ तीन सौ तेरानवे। लम्बर तौ दओ पै तिवारिन कक्को ने कही है के तिवारी जू पवई गये हैं? उतै कालिज मदरसा बन रहो, सो तिवारी जू मदरसा बनवाये कौ ठेका लये हैं सो दो चार दिना बाद वापिसी में आहैं। तिवारिन कक्को कातीं ती जब कक्का लौट आवैं, तब फून लगावैं। मैं अब जा रई मोरी भैंसिया बंधी है। ऊखाँ पानी दिखाकें, हारै लै जाने, उतई नींदा रतेबा सोई ल्यावने परहै, और वा राम राम करकें चली गई।

अब बौटिया बोली 'अपुन काव तौ फून धरके काट देवें'। अबै ना काटो कछू बातें और हो जान देव "तुमाओ मायकौ किते है?"

'नौगाँव छावनी के ढिंगा बँदीसलइया है उतै के बालमुकुन्द रावत हमाये दद्दा आयें और हमाई बाई पनवारी के ऐंगर मरवारी की आँय, ऊने कही। तुमाये दद्दा बाई ने तुमाओ का नाव धरो तो? उनने पूँछी'

दद्दा बाई मोय ममतू कात, मोरा नाँव ममता है ऊके हँसबे की धीमी आवाज फून पै सुना परी; तुमें आज जित्ती बात करने होय सो कर लेव। हमाये ससुरबाबा हारै गये, कुआ पै मशीन लगी है, और बंधिया बखर रई है, दिवारी के पैला बँधिया बिबने है। हमाये जे आज छतरपुर गये हैं आज विद्याबाई के लरका जीन बड़े नेता हैं, सो बे दिल्ली सें लटके हैं, हमाये जे उनई की पारटी के तीन रंग के झण्डा में है। सो मुलाकात खाँ गये। कछू घर की सौदा शक्कर, चाह, पल्ली गदेला, भरवा के ल्यावने हैं। हमाये उन्ना आवने जे आखरी नम्बर सें लीलइया परे आहै। हमने कही कि तुमाई भौतई मीठी बानी है।

"जिनकी होत, मोहली बानी, होत भले बे प्रानी।।"

अरे अपनु तौ फागें सुनान लगे, को ठाकुर हौ?

हम बाम्हन, अरजरिया तिवारी हैं।

हओ हम जानत, हमाये बब्बा कुलपहार के खेत सिंह जू अरजरिया के दिवाले में पुजारी हते। बे खेतसिंह बब्बा भौत भले आदमी हते। हम हलके हलके हते त्योहारन पै हमाये लाने हमाये दद्दा बाई के लाने नये नये उन्ना सिमकें मिलत ते। दशरये दिवारी खां सब घर कौ न्योतौ होत तो।

उतै कुलपहार में स्कूल तौ हतो पै हमाये दद्दा ने हमें पड़न नई दओ। बोले ममतू खां का पड़ावने, टालबुती रोटी करबौ सिकाव, ऐंई कामे आहै, पड़वे की कछु बिबूच नई परी। रोटी पानी करने है। सो तेरह बरस की कौरी उम्मर में, बधमऊ में ब्याव कर दओ। भगवान की अनकृपा कि बाल बच्चे अबलौ नई भये। भुंसारे से दस बारा खेप पानी भरके सपर खोर कें, तड़के सें लुचई तिरकारी कलेवा बनाने परत। सो सब जने कलेऊ करकें अपने-अपने कामन खाँ कड़ जात।

हमाये दद्दा ने हमें पढ़न नइं दओ, भौत अखरती हो गई। न हम चिठिया लिख सकत न पढ़ सकत। करिया अक्षर भैंस बरोबर, बिना पढ़े जा जिन्दगानी सूनी हो गई। मन करत की लुहार की बिन्नू से पड़वो लिखवो सीख लेवें। गाँव में बड़न-बड़न के लाने, रात की पढ़ाई लिखाई कौ काम तौ होत है पै बड़े घर की बहू बौटिया होय के कारण सें, दद्दा हमाये ससुर उते जान नई देत। कात के लरकन में रात कें हुँदरयाबो ठीक नइया। लुहार की मोड़ी खाँ-घरै बुलाके अच्छर ज्ञान कर लेव। धीरे धीरे रामायन, पड़न लगहौ, सो हम अच्छर तौ चीन्हन लगे पै अबै साजी तरासें नाँ बांच पाउत न पड़ पाउत। हम जो दस तक पड़ जाते तो बारे लरकन बिटियन के स्कूल में पास पड़ोस के गाँवन में पड़ाउन चले जाते। घर के कामन में घरै परे परे पिरे जात। हमें सब सुख है पर ऐंई बिथा है कि लिख पड़ नई सकत। अपुन के पास कौनउ बाल पोथी होय तौ कोउ के हाथन पठै देव।

हमने कही "हम तिवारी जू के घरै रैन बसेरौ करवी, तबई तुमाये लाने बालपोथी लुहार की बिन्नू के हाथन पठै देहैं। पै तुम हमाई खबर ना बिसराइओ साँची साँची बात करियो।"

हमने कई "हओ जू बस रान देव, राम राम जू अब और कोनऊ दिना लगाइयो।" जोन नम्बर पै हमने फून लगाओ तो बो हतो दो सौ पैसठ तीन सौ नब्बे। जब हम तिवारी जू के घरै, गये तो उनने बताओ कि दो सैसठ तीन सौ नब्बे नम्बर गाँव में कोउ

कौ नइयाँ, जौ नम्बर सिंहपुर को हतो एक जनन कौ, उनकी बहू की अकाल मौत हो गई ती सो उनने फून कटवा दओ, कभऊँ कभऊं जाने अनजाने कोउ लगा बैठत तौ अच्छी तरा सें फून पै पूरी पूरी बात होत पै पता करै पै फून कटो पाओ जात। अब अपुन जौ नम्बर भूल से ना लगा दइओ। बा बहू नई उम्मर की हती, बाल बच्चे नईं भये ते। कौनउ बात पै सास बहू की न्याव भई, घरवाले ने बहू खाँ मारो-कूटो-सताओ सो ऊने सूने घर में मट्टी को तेल दुयाह पै डार कै आगी लगाकें अपने प्राण होम दये। अपुन कभऊँ सपने में भूल के दो सौ पैसठ तीन सौ नब्बे नम्बर ना लगा बैठियो अबे ऊकी आत्मा तरी नइया वरना नदिया पै जुदइया रात में पसर चराबे बारन खाँ कभउँ कभउँ दिखा परत। कैउ जांगा से गुनियाँ नावते बुलाये गये पर बे कछू कर नई पाये। ऊकी आत्मा भरभरात फिरत रई।

हम ममतू की बात सोच कै दंग रै गये। आज लौ ई जमाने लौ बहू बेटियन पै अत्त हो रये, उने प्राण होमने परत जा भारी लज्जा व दुक्ख की बात है, उदना से जा बात हमाये मन में चुभन दे रई।

- २०, मैथिली शरण गुप्त मार्ग, महोबा (उ.प्र.)

लाला हरदौल

- पं. राजकुमार पुजारी

बहादुर बुन्देला बल वीर,
वध्यौ बन बैरी बीरन वीर,
बीर बध बन्यो बीर वेपीर,
विरोधी बिसरै नई बिसारौ,
बीर को बनो बिरोधी बीर, बुन्देला बारो है, बंश बिगारो है।।

बीर सिंह वधू वियोगिन बनके विष व्यंजन बनबाये,
बिलख बिलख बतलाये बलम ने वरजोरी बनवाये,
बिरोधी बनो बुन्देला बीर,
बिसरै नई विसारो बीर,
वीर को बनो बिरोधी बीर, बुन्देला बारो है, बंश बिगारो है।।

बनो बकासुर बीर बुन्देला, बीरन वध्यौ बिचारौ
बात बसीठी बोली बहिन से, बीरन वंश बिगारौ
बन्यो वदजात वीर बेपीर
बिसरै नई बिसारो बीर
बीर को बनो बिरोधी बीर, बुन्देला बारो है, बंश बिगारो है।।

बारी बैस बध्यौ बीरन खों बहिन बीर सें बोली,
बनकें बधिक बदजात बीर ने, बंश की बखत विथोली
बिष दे बिन्स्यो बारो बीर
बिसरै नई बिसारौ बीर
बीर को बनो बिरोधी बीर, बुन्देला बारो है, बंश बिगारो है।।

बहिन बाबरी बनी वीर से, बोली बचन बिचारी
बेटी बनी बनी बैठी है, बिसरै नई बिसारी
बैन ब्रीडा को बचाना बीर
बिसरै नईं बिसारो बीर
बीर को बनो बिरोधी बीर, बुन्देला बारो है, बंश बिगारो है।।

बैन की बात बना लो, बोली बीरन बन ब्यौहारी
बाट देखती नीर बहाती, बार बार बेचारी
बसन ले बढ़िया पहुँचे वीर
बिसरै नई बिसारौ बीर
बीर को बनो बिरोधी बीर, बुन्देला बारो है, बंश बिगारो है।।

- पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड नीकौ है

- डॉ. शंकरलाल शुक्ला

खण्डन में भइया, बुन्देलखण्ड नीकौ है।
जासें नोंनों और सलौनौ, और देश कीकौ है।

विन्ध्य टौरियन घिरीं सदा, हँसतीं हैं ताल तलैयाँ।
गुर्ज, किले और गढ़ी खड़ीं, लेती हैं नित्य बलैंया।
बड़े बड़े कवियन नें जीभर, जश गाऔ जीकौ।
खण्डन में भइया, बुन्देलखण्ड नीकौ है।

खेत जहाँ सोनों उगलत हैं, नदियाँ इमरत बाँटें,
झर झर झरत हैं झिन्ना, दुख मेंटें, सुख बाँटे।
चित्रकूट जां स्वयं राम रये, ऐसौ तीरथ कीकौ है।
खाण्डन में भइया, बुन्देलखण्ड नीकौ है।

धरती वीर बुन्देलाओं की, छत्रसाल कौ देश है।
चन्देलों की करम भूम यह, अनुपम शौर्य प्रदेश है।
खजुराहो जी सें दुनियाँ ने, कला कर्म सीकौ है।
खाण्डन में भइया, बुन्देलखाण्ड नीकौ है।

चम्बल, धसान, पहूज, बेतवा, सातार, नर्मदा पानी,
सिन्धु, केन, कलकल गाती हैं, बुन्देलों की यश बानी।
नदियन वारौ और देश, ऐसौ कऔ कीकौ है।
खाण्डन में भइया, बुन्देलखाण्ड नीकौ है।

अमर वीरता के औतारी, आल्हा ऊदल हैंई भये।
छत्रसाल, लक्ष्मीबाई नें, जश के विरछा बये नये।
अंगरेजन ने सांचउ लखौ, झाँसी सें सीकौ है।
खाण्डन में भइया, बुन्देलखण्ड नीकौ है।

सच्चाई कें लानें ऐसौ, जीवन कौंन जियेगा।
भौजीं कौं निज मइया कैं कैं, विष कौन पियेगा।
बुन्देलखण्ड कौं छोड़ कऔ, ऐसौ बेटा कीकौ है।
खाण्डन में भइया, बुन्देलखण्ड नीकौ है।

साहित्य कला की धरती, जां रामाण रची है तुलसी,
केशव, भूषण, पद्माकर की कविता हैं ही हुलसी।
राष्ट्रकवि मैथिलीशरण कौ, चिरगाँव बसौ नीकौ है।
खाण्डन में भइया, बुन्देलखण्ड नीकौ है।

- भाण्डेर, जिला दतिया (म.प्र.)

अपने ही पत्र-दर्पण में दादा जी

- वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

"कहो भाई! कहाँ से आ रहे हो?"

"टीकमगढ़ से आ रहा हूँ। वीरेन्द्र नाम है।" इतना कहा ही था कि आदरणीय दद्दा के साथ सामने खड़े दादा जी तुरंत बोले - "ओहो, वीरेन्द्र! कहो बेटे, कब आए? श्री पन्नालाल जी कैसे हैं? कैसे आना हुआ यहाँ?"

"आदरणीय चाचाजी पूर्ण स्वस्थ्य-सानंद हैं। मैं यहाँ दैनिक हिन्दुस्तान कार्यालय में सम्पन्न ट्रेनी जर्नेलिस्ट विषयक टैस्ट और इन्टरव्यू दे वापस जा रहा था। सोचा, समय है आपके दर्शन भी करता चलूँ। अब वापस जा रहा हूँ रात की ट्रेन से।"

मेरा उत्तर पा वे फिर बोले - "देखो वीरेन्द्र! मैं पहले भी तुम्हें कई बार लिख चुका हूँ कि सरकारी नौकरी को छोड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र में आना अत्यंत खतरनाक है। इसमें परिश्रम अधिक करना पड़ेगा और स्वास्थ्य की भी हानि होगी। मेरे विचार से तो अध्यापक रहकर भी तुम एक अच्छे लेखक बन सकते हो। अध्यापक रहते हुए तुम साहित्य की जितनी अच्छी सेवा कर सकते हो, उतनी किसी अन्य क्षेत्र में रहकर नहीं कर सकते। मैं भी इन्दौर के राजकुमार कॉलेज की नौकरी के दिनों में साहित्य की जितनी अधिक सेवा कर सका हूँ, उतनी पत्रकारिता और सम्पादन के क्षेत्र में आकर नहीं कर पाया।"

पाठकगण सोचते होंगे कि इन बातों को लेकर मैं उनका न जाने कितना समय यों ही बरबाद करता रहूँगा। नहीं मित्रों, नहीं ऐसा नहीं है। मैं तो आप सबको इन पंक्तियों के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता जगत के उस समय व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में अवगत कराना चाहता हूँ, जिसे हम तुम ही नहीं, वरन् विश्व का अधिकाँश भाषायी पत्रकार और साहित्यकार जगत् स्वर्गीय पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम से जानता था। मेरी उनसे यह बातचीत दिल्ली में उनके निवास - ६६, नार्थ एवेन्यू में स्थित बंगले में तब हुई थी जब वे वहाँ राज्य सभा सदस्य थे। उस समय वे सप्रू हाऊस की एक बैठक से श्रद्धेय श्री मैथिलीशरण गुप्त के साथ लौटे थे। राष्ट्रकवि स्व. श्री गुप्त जी भी उस समय राज्य-सभा के सदस्य थे। दोनों अभिन्न मित्र थे। श्री गुप्त जी हिन्दी साहित्य संसार में 'दद्दा' श्री चतुर्वेदी 'दादा', श्री सियारामशरण गुप्त 'बापू' और बाबू वृन्दावन लाल वर्मा 'बड़े भैया' के नाम से जाने जाते थे। अब आइए हम आप फिर उसी बातचीत की ओर लौटें, जिसमें दादाजी पं. श्री बनारसी दास चतुर्वेदी की सदाशयता और भलाई कूट कूट कर भरी थी। उन्होंने आगे पूछा "तो कहो, हो गया तुम्हारा इण्टरव्यू? कैसा रहा? कहाँ ठहरे हो? अच्छी तरह तो हो? कोई दिक्कत तो नहीं?"

"हाँ! इण्टरव्यू हो गया। ठीक ही रहा। श्री मन्नू लाल जी द्विवेदी के यहाँ ठहरा हुआ हूँ। बिलकुल ठीक हूँ। रात में चला जाऊँगा। बस चलता हूँ। आज्ञा दीजिए।"

"अच्छा ठीक है, मेरा तो बस यही परामर्श है कि लगी हुई नौकरी को न छोड़ना चाहिए। फिर भी तुम्हारा मन न माने तो कुछ दिनों की छुट्टी लेकर इस कार्य को देख लो। तुम स्वयं अनुभव करोगे कि तुमने गलती की है। पीछे पछताना न पड़े। इसीलिए तुम्हें रोकता हूँ। श्री पन्ना लाल जी को प्रणाम कहना। आगामी अप्रैल में टीकमगढ़ आया तो ललितपुर में उनसे भेंट अवश्य करूंगा।"

बस फिर क्या! उठा, चरण स्पर्श किये और चलने के पूर्व जैसे ही श्रीगुप्त जी के चरण स्पर्श हेतु हाथ बढ़ाए, उन्होंने हाथ पकड़ मुझसे कहा। नहीं, मैं ब्राह्मणों से अपने पैर नहीं छुआता। उन्हें पूज्य मानता हूँ। यह थी राष्ट्रकवि गुप्त जी की महानता और विनम्रता। अब आइए उनकी यानी दादा चतुर्वेदी की भलमानसता भी देखें उनके इस पत्र में, जो उन्होंने मुझे लिखा था।

६६, नार्थ एवेन्यू,
नई दिल्ली, ११-०७-६०

प्रिय वीरेन्द्र,

आशीष! सरकारी नौकरी छोड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र में आना अत्यंत खतरनाक है। मैं ऐसी सलाह हरगिज नहीं दे सकता। परिश्रम ज्यादा करना पड़ेगा और स्वास्थ्य की भी हानि होगी। ऐसी भूल आप कदापि न करें। अध्यापक रहकर भी बहुत कुछ लिखा पढ़ा जा सकता है। श्री पन्नालाल जी को मेरा प्रणाम कहिए।

विनीत - बनारसीदास चतुर्वेदी

(कार्ड के दूसरी ओर भी लिखा था -)

कृपया यह खतरा न लें। शिक्षक रहते हुए भी आप एक अच्छे लेखक बन सकते हैं।

◆◆◆

इसी प्रकार का एक पत्र स्व. चतुर्वेदी जी ने हमारे स्वर्गीय चाचा जी श्री पन्नालाल जी शर्मा के पत्र का उत्तर देते हुए तब लिखा था जब वे झाँसी में पोस्टमास्टर थे। पढ़िये -

श्री शर्मा जी,

प्रणाम, मेरी अब भी वही राय है, जो मैं अपने पिछले पत्र में व्यक्त कर चुका हूँ। सुनिश्चित चीज को छोड़कर अनिश्चित चीज के पीछे दौड़ना मेरी समझ में बुद्धिमत्ता नहीं है। मैंने इसी कारण खतरे से सावधान कर दिया है कि कहीं पीछे पछताना न पड़े। फिर जैसी चि. बीरेन्द्र की मर्जी। मैं पूर्ण स्वाधीनता का पक्षपाती हूँ।

मैंने स्वयं सन् १६२० में राजकुमार कालेज, इन्दौर की नौकरी छोड़ दी थी, दीनबंधु ऐण्ड्रज के कहने से। वे महापुरुष थे।

पत्रकारिता का जीवन घोर परिश्रम का है और उसमें विश्राम नहीं। महीने भर की छुट्टी लेकर प्रयोग भले ही कर लें। स्थायी जीविका को खतरे में डालना मैं ठीक नहीं मानता। कहीं पीछे पछताना न पड़े।

- बनारसी दास

उनका एक और पत्र भी इसी तरह का उचित मार्गदर्शन देता हुआ मिला था -

प्रिय श्री वीरेन्द्र जी,

९६, नार्थ एवेन्यू

१२-०६-५६

वन्दे!

आप श्री व्यास जी (कविवर घासीराम व्यास) के बारे में अवश्य लिखें। मधुकर की पूरी फाइल मेरे पास भी नहीं है। आप श्री रामचरण हयारण 'मित्र' जी से अवश्य मिलें। उनके यहाँ जाकर उनकी फाइलों से नकल कर सकते हैं। पता- बर्तन बाजार, झाँसी। मित्र जी व्यास जी के मित्र हैं, शिष्य भी।

पहले आप कुछ सामग्री स्वयं इकट्ठी कर लें, तब वहाँ जावें। व्यास जी के विषय में श्री यशपाल जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली और श्रीराम सेवक रावत, जागरण (झांसी) ने संस्मरण लिखे थे।

श्री पन्नालाल जी को मेरा बहुत-बहुत प्रणाम कहिए।

विनीत - बनारसी दास चतुर्वेदी

◆◆◆

इन पत्रों से स्पष्ट है कि दादाजी कितने विनम्र उदार और भले मानस थे, जो मुझसे तुच्छ और कम परिचित व्यक्ति के पत्र का उत्तर दिये बिना भी नहीं रहते थे। एक और पत्र में भी उन्होंने मुझे इस प्रकार मार्गदर्शन दिया था।

"किसी के बारे में लिखने के पहले उसके विषय में पूरा-पूरा मसाला इकट्ठा कर लिया कीजिए। मैं तो बहुत विज्ञापित हो चुका हूँ, इसलिए मेरे बारे में लिखने की जरूरत नहीं। कुण्डेश्वर के पास मिनौरा के रास्ते में भी चतुरे चमार ने अच्छा बगीचा बना दिया है, उसके बारे में लिखना बेहतर होगा।" दादाजी के पत्रों में यत्र-तत्र-सर्वत्र उचित मशवरा और मार्गदर्शन के हीर-कण बिखरे मिलते हैं, उनको अनुकरण कर और अपने आचरण में ढाल कोई भी व्यक्ति सदाशय इंसान बन सकता है।

वर्षों पूर्व जब मैं टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में शिक्षक के पद पर नियुक्त था तब उन्हें मैंने लिखकर उनकी पुस्तकें पढ़ने की इच्छा व्यक्त की थी। यथाशीघ्र उनका यह पत्र मुझे मिला था।

९६, नार्थ एवेन्यू,

नई दिल्ली, २८-१२-६०

प्रिय वीरेन्द्र कुमार जी,

वन्दे! पत्र मिला। कुण्डेश्वर आने पर आपको सूचित करूंगा, पर याद रहे तब! आप खुद कुण्डेश्वर के किसी व्यक्ति से कह रक्खें कि वह आपको मेरे पहुँचने की खबर दे दे।

इस बीच आप - १. रेखाचित्र, २. संस्मरण, ३. हमारे आराध्य

इन पुस्तकों को पढ़ लीजिए। ये ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड, काशी से वी.पी. द्वारा मंगाई जा सकती हैं। मैं अधिक पत्र-व्यवहार नहीं कर पाता।

विनीत - बनारसी दास

◆◆◆

ऐसी विनम्रता और दयालुता भला और कहाँ मिल सकती है। मैंने ये किताबें तभी मंगाकर पढ़ीं। इन्हें आज भी मैं अपने व्यक्तिगत पुस्तक-संग्रह से निकालकर पढ़ लेता हूँ। बड़ी ही सुन्दर और सरल भाषा शैली में लिखी ये पुस्तकें अति रोचक, प्रेरक और सुपठनीय हैं, ज्ञानवर्धक भी।

एक और पत्र है, जिसे भी आप सबको पढ़ाये बिना मैं नहीं रह सकता। पढ़िए -

९६, नार्थ एवेन्यु,

नई दिल्ली, २-८-६१

प्रियवर,

कृपया स्व. घासीराम व्यास विषयक काम करते रहिए। वह एक अच्छे कवि थे। महाराजा कॉलेज छतरपुर में हमारे मित्र प्रोफेसर सी.डी. पाण्डेय से मिलिए। श्रीराम कुमार चतुर्वेदी से भी मिलें। रामकुमार चतुर्वेदी ने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया। मैं आशा करता हूँ कि वह पूर्ण स्वस्थ-प्रसन्न हैं।

यदि तुम अच्छे रेखा चित्र पढ़ना चाहो तो ए.जी. गार्डिनर की पुस्तकें पढ़ो।

नहीं, मैं ज्यादा नहीं लिख सकता। कृपया मुझे क्षमा करें। यह संभव नहीं। मैं उच्च रक्तचाप से पीड़ित हूँ।

विनीत - बनारसीदास चतुर्वेदी

◆◆◆

स्व. चतुर्वेदी जी का यह पत्र मुझे सन् १९६१ ई. में तब मिला जब मैं छतरपुर में एक मित्र के यहाँ एम.ए. की परीक्षा देने हेतु कुछ दिनों के लिए ठहरा हुआ था। आदरणीय चतुर्वेदी जी से प्रश्नोत्तर पाने का मुझे कभी टोटा नहीं पड़ा। जब भी मैंने उन्हें पत्र लिखा, तत्काल उत्तर आया। एक पत्र यह भी मैं बिना पढ़ाए नहीं रह सकता। जरूर पढ़िए -

प्रियवर, आशीष।

मैं नगर निगम में किसी को नहीं जानता। इसलिए मदद नहीं कर सकता। तुम्हें पत्रकारिता में कोई अनुभव नहीं। यह स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। लेकिन यदि तुम इसमें आने हेतु तय कर चुके हो तो मैं तुम्हारा विरोध नहीं करूँगा। हमें वह जरूर करना चाहिए, जो हम अपने लिये सोचें-समझें। अतः किसी की सलाह को बिना समझे न अपनायें। मैं उच्च रक्तचाप से पीड़ित हूँ। अतः ज्यादा नहीं लिख सकता। क्षमा करें।

पिताजी को मेरा प्रणाम कहिए।

भवदीय - बी.दास

◆◆◆

श्रद्धेय दादा जी भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं, तो भी उनके प्रेरक, रोचक, शिक्षाप्रद, ज्ञानवर्धक और हृदयस्पर्शी संदेश हमारे मन-मंदिर में हैं, जो सदा हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहेंगे। बस, जरूरत इस बात की है कि हम सदा उनकी सीखों को अपनायें और उन पर आचरण करें।

- मऊरानीपुर, (झांसी उ.प्र.)

कटुक वचन हैं तीर

- श्रीमती व्रजलता मिश्र

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित मानस में लिखौ है - "बड़े भाग मानुस तन पावा।" मीराबाई ने भी 'बड़े पुन्न सें मानुस कौ जनम' मानौ है। वे कहती हैं कै -

"नाहिं ऐसौ जनम बार-बार।"

का जानूँ कछु पुन्न प्रगटे मनुसा अवतार।।

हमाऔ जौ कैबो है कै जौ मानुस-तन पाकें अपई बोली-बानी नीकी उर मीठी होंय चइये। हम सबइ के जीवन में बानी कौ भौतइ महत्व है। हमाए कुल के संस्कार, आचार-विचार, चाल-चलन-इन सबइ कौ दरपन 'बानी' होत है। मानुस कौ जीवन "पानी के बरबूला उर भोर की तरैंयाँ" जैसौ एक पल में मिटबे बारौ है। सन्त कबीरदास के शब्दन में

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात।

देखत ही छुप जाएगा, ज्यों तारा परभात।।

जीवन भर हम सबखों एक दूसरे से प्रेम सें बोले चइये उर हिलमिलकें, रएँ चइये। झाँसी के कवि श्री ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश' ने लिखौ है - नोंनी राखौ बोलीबानी, बरबूला जिन्दगानी।

मीठी उर सुभ बानी बोलबे सें मानुस खों मान-पान मिलत है, सुर्ग मिलत है। असुभ उर कटु बानी बोलबे बारे की इज्जत दो कौंड़ी की हो जात है और मरे पै बाय नरक मिलत है। लोककवि ईसुरी ने जा चौकड़िया में जइ बात पै बल दऔ है -

सबसें बोलौ मीठी बानी, थोड़ी है जिन्दगानी।

जौइ बानी हाँती बैठारै, जौइ उतारै पानी।

जौइ बानी सुरलोक पठावै, जौई नरक निसानी।

जौंन जनी-मान्स खों बोलबे की अड़-गड़ नइँ होत, बाकी भरे समाज में हँसी उड़ाई जात है। कभउँ कभउँ बाकी ऐसी बेइज्जती होत है कै बौ अपएँ सामूँ बारे से आँखें नईं मिला पाउत। ऐसीइ एक संस्मरण में अपुन-औरन खों सुना रई हौं -

मोरे देउर की पक्कयात के दिना पाँडेजू पूजा-रचा उर तिलक करा रए ते। एक लँग जनीमान्सन की पंगत हो रई ती। भोजन करकें हमाए एक मान्नदान ने हमाए घरबारे सें अपएँ जाबे की तेजी मचाई, तौ उनकौ मान राखबे के लाँनें उन्नें कई कै "साब! रात कें काय खों जा रए, भोरइँ जइयो।" पाँउँने बोले - "आँ हाँ। रात कैं तौ हम ठैरत नईं सकत। अबैइ अन्तिम संस्कार भऔ जात, सोइ जा रए।" हम जनीं-मान्सन खों जौ भनक परी, तौ ऊसेइ देखत रै गए, कै "जे हें तौ इतेक बड़े, अकेलें इनें जौ अक्कल नइँयाँ कै जा सुभकाम में अन्तिम संस्कार नइँ कई जात।" उन बड़बोले उर गुस्सैल पाँउँने सें कोउ कछू नइँ कै पाऔ। सबई जनें अपऔं मन मसोस कैं रै गए।

जौंन जनी-मान्सन की अपई बानी पै लगाम नइँ होत तौ बे अपइँ बुरी उर कटु बोला बानी पै पछताउत भी नइँयाँ। "चोरी उर सीनाजोरी" के चलतन बे अपइँ कटु बानी खों ना तौ कटु उर बुरई मानत, ना माफी माँगत उर ना कभउँ अपएँ सें बड़िन के आँगें झुकत हैं। ऐसे मूरखन ने झुकबौ (नबबौ) कभउँ सीकौइ नइँयाँ। संस्कृत में जौ सुभाषित ऐसेइ लोगन के लाँने हैं -

नमन्ति फलिनो वृक्षाः, नमन्ति गुणिनो जनाः।

शुष्क वृक्षाश्च मूर्खाश्च, न नमन्ति कदाचन।।

जाकौ अर्थ है कै फल के लगबे सें पेड़ नब जात (झुक जात), ज्ञान मिलबे से गुणीजन नब जात (विनम्र हो जात) सूकौ पेड़ (ठूँट) उर मूरख एक से होत हैं, जे कभउँ नईं नबत। जाकौ उदाहरन जा संस्मरन में सुनो :-

मोरी परौसिन की बिटिया, विभा कौ जनमदिन २८ दिसम्बर कौं हतौ। 'दीप यज्ञ' में उन्नें पुरावारिन खों बुलाऔ हतौ। प्रसाद लैकें, जल-पान करकें हम सबइ जनें अपएँ घर खों चलन लगे, तौंनों विभा की चाची विभा से बोली कै "तुम आज अपऔं आखरी जनमदिन मना लेओ।" जब दो-तीन बेरै उन्नें जौइ-जौइ कई तौ विभा बोली कै "चाची! तुम जौ काय कै रई? अबै तौ हमें भौत जीने है, भौत जनमदिन मनाने हैं। बे चाची बौई-बौई कउत रईं। विभाकी मताई खों ऐंन बुरऔ लगौ, अकेलें सबके सामूँ बे कछू नइँ बोलीं। खून कौ घूँट-सौ पीकें रैं गईं।

मोय राई नइँ परी। मेंने टोकौ कै "तुम मोड़ी खों असीसें नइँ दै पा रइँ, तौ नइँ देओ, अकेलें ऐसौ श्राप तौ जिन देओ।" बाकी चाची मूरख सो मूरख। बड़ी दबंगई सें बोलत रईं - "अरे! तौ जामें मैंने का कै दई? दिसम्बर कौ मइँना तौ साल कौ आखरी मइँना होत है, तासें कै रई ती।"

अब उन मूरख उर बुरऔ चाहबे बारी चाची खों को समझाय कै जनमदिन तौ साल में एकइ बेर होत है, मइँना चाएँ जनवरी होय, चाएँ दिसम्बर। बाखो आखरी कोऊ नईं कउत।

एक बात और है कै जौन के "मौं में राम, बगल में छुरी" होत है, उनकी बुरई बानी बुरऔ असर करत है, बासें ठैंन होई जात। हमाई मताई कउत हतीं कै "बेटा! चौबीस घण्टन में एक बेर-तनक देर खों हरेक जनी-मान्स, मौंड़ी-मौंड़न की जिभ्भा पै सुरसुती मैया साक्षात् बिराजती है, वा घरी में जो कछू नोंनों बुरऔ वे बोल देय, बौ बात अबस कें पूरी हो जात है। तासें अपुन सबइ खों बरहमेस नोंनी-नीकी बोली बोलें चइये। कौंनउँ घरी की बुरई बोली ऐसी होत है कै बन्दूक की गोली चाँएँ चूक जाए पै बोली नइँ चूकत है। बुरई बोली तरकस सें निकरे तीर की नाईं होत है। जाकौ एक संस्मरन तौ मोरइ घर कौ है, तौ सुन लेओ -

मेरी बिटिया इण्टरमीडिएट में जीव विज्ञान विसय पड़बे खो कछू दिनन एक मास्टरनी के घरै जात हती। उतै बाके नम्बर सबसें जादा आत्ते तौ बाकी मास्टरनी सबरी बिटियन सें बाकौ उदाहरन देत हतीं कै तुम औरें भी जई बिटिया की नाईं अच्छे

नम्बर लियाऔ करी।

एक दिना बिटिया की गुइँयाँ ने पैलउँ पौंच कैं मास्टरनी सें हौले सें कई कै "मैडम! हम तौ रात दिना पढ़त हैं तौइ सबसें जादा नम्बर नईं लिया पाउत। भगवान करै कै रागिनी बीमार पर जाय तौ सबसें जादा नम्बर मोरेइ रबैं।" दुर्भाग्य सें ई पखवारे में मोरी बिटिया ऐसी बीमार भई कै सेण्ट जूड्स अस्पताल (जर्मनी अस्पताल) में भर्ती करने परौ। १०७° बुखार होवे से डॉक्टर भी सोच में पर गए। भगवान की किरपा उर डाक्टर साब के इलाज से धीरे-धीरे बिटिया नोंनी भई। एक मइँना कड़के बोर्ड की परीक्षा भई। बीमारी उर कमजोरी के मारे बाके परीक्षाफल पै तौ असर परौइ परौ, सारीरिक कमजोरी की भरपाई आज लौं नइँ हो पाई। ऐसी हाय पारबे बारे उर बुरी नजरबारे मित्रन खों "आस्तीन के साँप" समझें चइये। इनइँ के लाँनें संस्कृत में जौ उम्दा श्लोक है-

परोक्षे कार्यहन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृश मित्रं, विषकुम्भं पयोमुखम्।।

जाकौ मतलब है कै मौं के सामने मीठी बानी उर पीठ पीछें बुरौ चाहबे बारे मित्र बा मटका जैसे होते है, जौनके भीतरै जहरभरौ होत है उर बाके मौंपै दूद भिड़ौ होत। ऐसे मित्रन खों त्याग देनें चइये।

बुरई बोली-बानी सें रिस्ते-नाते पल भर में टूट जात। दुआ-सलाम ऐंन होत रय अकेले पैल जैसी मिठास नइँ रउत। जैसें फटे दूध सें माखन नइँ बन पाउत। कविवर रहीमदास के सब्दन में -

बिगरी बात बने नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध कौं, मथैं न माखन होय।।

आँगें भी उन्नें कई है -

रहिमन धागा प्रेम कौ, जिन टोरौ चटकाय।
टूटे से फिर न जुरै, जुरै गाँठ पर जाय।।

प्रेम के मजबूत डोरा खों कभउँ नइँ टोरौ। जौ कउँ टूट गऔ तौ पैले कैसौ नइँ हो पै, गाँठ परकें जुर है। ऐसेइँ टूटे रिस्ते नाते जुरतन में मन में गाँठ सी पर जात, दिखावा रै जाउत।

हमाए गाँव कौ मोंड़ा मलखान सिंह इण्टरमीडिएट की परीक्षा दैबे सहर जा रऔ तौ। बाकी बड़ी बाई दुआरें चौंतरा पै गुस्साँ में भरीं बैठीं थी। मौंड़ा ने उनके पाँव छीकें कई कै बड़ी बाई मोय आसीरबाद दै देओ, आज मेओ गणित कौ परचा है.... बड़ी बाई तमक कें बोली - भगवान करैं, तैं फेल हो जाय।"

दुर्भाग्य सें बौ फेल हो गऔ। खेती-किसानी के काम में लगबे सें पढ़ाई छोड़ने परी। बाके कानन में आज लौं बौ असुभ बोली गूँजत है, जौन दुर्वासा मुनि के श्राप की नाईं बाकी बड़ी बाई बोली हतीं।

हमाए बुन्देलखण्ड में एक काँनाउत कई जात कै "बड़ी कौर खा लेवै, पै बड़ौ बोल जिन बोलै।" बड़ौ बोल बोलबे बारे जनी-मान्स घमण्डी होत हैं। एक बेर की बात है कै अपएँ बेटा के पास होबे पै हम प्रसाद बाँट रए ते। हमाई एक परौसिन हमाए इतै, बैठीं ती। बड़े घमण्ड से बोली "हमाए सबरे मोड़ी मोड़ा बर हमेस पास भए, कभउँ फैल नइँ भए, काँ नौ प्रसाद बाँटें? अब तौ हमाए इतै कोउ फैल होय तौ हम प्रसाद "बाँटें" भगवान ने उनकी जौ मनोकामना भी पूरी कर दई, उनकौ छोटौ बेटा दो-तीन बेरै 'बैक पेपर' दै दैके, बड़ी मुस्किल से एम.सी.ए. पास कर पाऔ।

हमाए एक नातेदार एक अच्छे पद पै नौकरी करत हैं। बे सुभाव सें सरल, ईमानदार उर विनम्र हैं। सेवा-निवृत्ति कौं एक साल रै गऔ तौ। एक दिना उनके एक मित्र ने बातन-बातन में उनसें कई कै जे आखिरी एक-दो साल बड़े नाजुक होत हैं। जाने कबै कैसी विपत्ति आ जाय। जौ समझौ अच्छे से निकर जाय तौ बड़ी बात है।

ऊसें तौ जौ छोटी सी बात हती, पै ना जाने कैसी घरी में बोली गई, कै एक हफ्ता में उनके ऊपरै मुसीबत को पहार टूट परौ। काउ ने उनके उच्चाधिकारी से उनकी झूँटी-साँसी, लगाई-बुझाई करकें ऐसे कान भरे कै बे आग-बबूला हो गए। फोन पै गारी दैकें, झूँटे अनुआँ लगाकें उनकौ तबादलौ भौत दूर कर दऔ।

बे भले मान्स इतेक तनाव में आ गए कै उच्च रक्तचाप होबे सें उनके हृदय की चाल बड़ गई। उनें अस्पताल में भर्ती कराने परौ। भगवान की किरपा सें हरें-हरें बे नोंने भए। जब उन्नें लिखा-पड़ी करी तब उनें न्याव मिलौ, तबादलौ रुकौ।

जौ संस्मरन जाबात खों सिद्ध करत है कै करई बोली के असर सें पल भर में अच्छौ भलौ मान्स गम्भीर रोगी बन गऔ।

सन्त कबीरदास ने ठीकई लिखौ है -

मधुर वचन हैं औषधी, कटुक वचन हैं तीर।
स्रवन-द्वार ह्वै संचरैं, सालैं सकल सरीर।।

जाकौ अर्थ है कै मीठी बोली रोगी मान्स के लाँने दवाई-दारू है, पै करई बोली तीर की नाईं हिरदै के आर-पार होकें पूरे सरीर खों पीड़ा पौंचाउत है।

जा छिनभंगुर जीवन को तनकउ भरोसौ नइँयाँ। जानें कबे, कितै, कौन कौ बुलौआ परमेसुर के घर सें आ जाय, कोउ नइँ जानत। लोककवि ईसुरी ने कई है -

जाने कबै कियै मर जाने, इतैइ बनी नइँ रानें।
धन-दौलत उर माल खजाने, हेंईं परे रै जानें।।

तासें हमाए मरबे पै, हमाई मीठी बानी, मिलनसार सुभाव, सरल बेहार, अच्छौ चाल-चलन, नोंने-नीके काम सबइ याद करें-

"ईसुर" कैबे खों रै जानें, ऐसे हते फलानें"

आज के भौतिकवादी समय में जौन जनी मान्स कटुभासी, मतलबी, घमण्डी होकें अपजस कमा रए हैं, उनके लानें अपुन सबइ कौ जौ संदेसौ है कै -

जिन बाँदौ गठरिया अपजस की।
बात करौ सबसें रस की।।

- केशवकुल, नानकगंज, ३५२,
सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

अतीत का शक्ति केन्द्र : तरौंहा

- डॉ. राहुल मिश्र

चित्रकूट जनपद का एक अनजाना सा कस्बा तरौंहा आज भले ही अपनी पहचान को सिद्ध कर पाने में अक्षम हो, किन्तु इसका अपना गौरवशाली अतीत रहा है। कामदगिरि की श्रृंखलाओं के तले बसी हुई इसकी आबादी आज भी पुरानी गौरवपूर्ण स्मृतियों को सहेजे हुए है। बुन्देलखण्ड की भाषा में 'तरे' और 'हुवाँ' शब्दों के योग से तरौंहा बना है। जिसका अर्थ उसके नीचे बसा हुआ, यानि कामदगिरि की श्रृंखलाओं के नीचे बसा हुआ, पयस्विनी नदी के किनारे का समतल भू-भाग है।



तरौहाँ दुर्ग का पश्च भाग

तरौंहा में आदिकालीन मानवों के निवास होने की मान्यता है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ पर दालंपुर नाम का एक नगर बसा हुआ था। एक अन्य मान्यता के अनुसार यहाँ पर तक्षकपुरा नाम की नगरी थी और १६२५ ईस्वी में गहोरा के सुर्की राजपूत बसंत राय ने यहाँ आकर किले का निर्माण कराया था। पयस्विनी नदी के पूर्वी मैदानी भाग में रीवा के बघेल राजाओं का आधिपत्य था। बघेलों सुर्की राजपूतों और चित्कर राजपूतों के आपसी बँटवारे में तरौंहा का हिस्सा सुर्की राजपूतों को मिला था। चित्कर राजपूतों को मिलने वाले भू-भाग का नाम ही कालांतर में चित्रकूट हुआ होगा।



तरौहाँ दुर्ग का अग्र भाग

सम्राट अकबर के शासनकाल में तरौंहा, भटगोरा के सरदार का मुख्यालय था। मुहम्मद खान बंगश ने आक्रमण कर इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। इस समय महाराजा छत्रसाल मुहम्मद बंगश से जैतपुर के युद्ध कर रहे थे। छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र हृदयशाह पन्ना की गद्दी संभाले हुए थे, किन्तु छत्रसाल की वृद्धावस्था और संगठन शक्ति के कमजोर पड़ने के कारण मुगलों के आक्रमण तेज हो रहे थे। दूसरी ओर मराठा सरदार बाजीराव पेशवा उत्तर भारत में अपने शासन का विस्तार करना चाह रहे थे। छत्रसाल द्वारा मराठों से मदद माँगने के रूप में उन्हें स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ और मराठों के सशक्त आक्रमण और घेराबंदी के फलस्वरूप बंगश के पैर उखड़ गए। इसके साथ ही तरौंहा में मराठों का आधिपत्य हो गया।

छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह के जागीरदार रहीमखान तरौंहा के प्राकृतिक दृष्टिकोण से सुरक्षित और अभेद समतल भू-भाग परी बनवाया गया, किला मरहठों के आधिपत्य में आ गया और बुन्देलखण्ड में बर्तानिया हुकूमत कायम होने तक अपने स्वर्णिम अतीत को गौरव प्रदान करते हुए गौर्वोन्नत खड़ा रहा। इस अवधि में यह किला और तरौंहा क्षेत्र मराठा शक्ति का प्रमुख केन्द्र रहा। मराठा सेना की छावनी के भग्नावशेष आज भी यहाँ पर स्थापित शक्ति केन्द्र की महत्ता का स्मरण कराते हैं।

मरहठों ने अपनी शक्ति के विस्तार के साथ ही साथ तरौंहा मुख्यालय से क्षेत्र के विकास की गति को भी तेज किया। बाजीराव पेशवा ने अपने भाई अमृतराव को तरौंहा व कर्वी का जागीरदार नियुक्त किया। अमृतराव ने अमृत नगर नाम से आबादी बसाई और कालान्तर में इस नगर को कर्वी के नाम से जाना गया। सन् १८२४ ई. में अमृतराव की मृत्यु के उपरांत विनायक राव ने गद्दी संभाली। विनायक राव ने बारा में किले का निर्माण कराया और इसके साथ ही पीली कोठी, कोठी तालाब, जंगल बाग और कटोरा तालाब का निर्माण कराया। विनायक राव द्वारा बनवाया गया गणेश बाग आज

भी उस गौरवपूर्ण अतीत के साक्ष्यों को स्वयं में समेटे हुए खड़ा है। गणेश बाग का मंदिर और तालाब व अपनी विलक्षण स्थापत्य कला के कारण 'मिनी खजुराहो' के रूप में जाना जाता है। .

जामनगर के रहने वाले गुरु प्राणनाथ से छत्रसाल की भेंट मऊ के समीप जंगल में हुई और छत्रसाल ने उन्हें अपना गुरु बना लिया। प्राणनाथ के माध्यम से ही संभवतः नाथ पंथ का बुन्देलखण्ड में प्रवेश हुआ। नाथ परंपरा का प्रमुख केन्द्र भी तरौहां में स्थापित हुआ। छत्रसाल की परंपरा को निभाते हुए मराठा शासक और उनके वंशज नाथ पंथ के साथ ही सभी धर्मों-पंथों को संरक्षण व प्रोत्साहन देते रहे। नाथ पंथियों का बालाजी मंदिर आज भी तरौंहा में धर्म साधना का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

बुन्देलखण्ड में बर्तानिया हुकूमत कायम होने के साथ ही तरौंहा का अस्तित्व भी सिमटने लगा। इलाहाबाद-बाँदा मार्ग पर नई आबादी बसने के साथ ही तरौंहा उपेक्षित हो गया। सन् १८८५ में तरौंहा किले से तहसील को भी स्थानांतरित कर दिया गया। मरहठा शासकों के वंशजों की पेंशन और जागीदारी छीन ली गई। इण्डियन मिडलैण्ड रेलवे लाइन के चालू हो जाने के बाद तरौंहा विकास की गति से और अधिक दूर होकर कर्वी नगर पालिका का एक हिस्सा और कमोबेश एक गांव जैसा होकर रह गया।

आजाद भारत के नेतृत्वकर्ताओं ने भी तरौंहा के गर्भ में छिपे अतीत के गौरव को देखने का यत्न नहीं किया। बालाजी का विश्वप्रसिद्ध मंदिर आंपसी झगड़ों और खींचतान की भेंट चढ़ गया। गणेश बाग को सरकारी संरक्षण नहीं मिला, लिहाजा स्थानीय लोगों ने उसकी भूमि पर कब्जा करने के साथ ही इस ऐतिहासिक परिसर को खुद के उपयोग में लाने और नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। एक समय अपनी आवाज मात्र से पराक्रांताओं को थरथरा देने वाला, बुंदेलों-मराठों की शक्ति का प्रमुख केन्द्र तरौंहा का दुर्ग कूड़ाघर में बदल गया।

आज भी मरहठों और बुंदेलों के वंशज तरौंहा में निवास करते हैं, किन्तु उन्हें भी शायद अपने पूर्वजों की गौरव गाथा के प्रतीकों पर आस्था नहीं रह गई है। उनके अंदर यदि अपनी धरोहर को बचाने की प्रेरणा जग पाई और यदि वे अपने पूर्वजों के स्मारकों को सहेजने, साफ-स्वच्छ रखने हेतु अग्रसर हुए तो शायद सरकार भी इस ओर ध्यान देने के लिए सोचेगी।

- छाबी तालाब रोड, बाँदा (उ.प्र.)

दो बुन्देली कविताएँ

- डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

मेंड़न की ओर

मेंड़न की ओर चली छनकीली धनियाँ रे
छूम छूम छनन छनन बाजे पैजनियाँ रे
गेंदा के फूलन से तन-मन गसे हैं
चन्दा के मुखड़े पै कँवल बिगसे हैं
दमकत रत माथे पै लज्जा की बेंदी
छलकत रत गदियन से मरजादा मेंदी
मैली न कबऊँ परत नेह की नथनियाँ रे...

कानन में करतब के करनफूल फूलें
गजरा गुन गौरव के हरें-हरें झूलें
खनन-खनन हातन में मेहनत के कँगना
हरौ-भरौ राखत जो जीवन कौ अँगना
केसरिया रंग रँगी उमर की उढ़नियाँ रे...

प्रेम भरी चितवन है फूल भरी बानी
निरमल है ऐसें जैसें गंगा कौ पानी
ओंढ़न के झूलन पै झूलें मुस्कानें
हेर रहौ हुयै गली सजना नों जानें
सीस पै कलेऊ धरें घैला में पनियाँ रे...

रानी सें बढ़के हैं खेतन की रानी
करत रहत रोजीना सान सें किसानी
गोरी कौ तन छूतन गोंऊँ परे गोरे
कँचन सौ बगर गव खेतन के दोरे
'शिवा' मिली खरयानें फसल की दलनियाँ रे...

लली खुद खा डारी

लली खुद खा डारी, तें कैसी महतारी।।
पैल मोय जीवन बगिया में दओ प्रेम सें बोय,
दो पत्ता भए हाल मेंट दव जा का सूझी तोय,
बन गई हत्यारी, तें कैसी महतारी।।

किलकारी सुनबे की आसा करत सबई माँ बाप,
तुम कैसे दोई के दोई लगे कमाबे पाप,
लगत मत गई मारी, तें कैसी महतारी।।

लड़का के लालच में लड़की देत पेट में मार,
कौन जनम कों बैर बटोरत बिटिअन सें नर नार,
निठुरताई धारी, तें कैसी महतारी।।

ईसुर करबै आँगे तोरी चलबै ना जा कूँख,
सातऊ जनम नसाबें राबै ना कौरा की भूँख,
विपद भोगे भारी,. तें कैसी महतारी।।

जा कुरीत नागिन कौ करनें करवानें बन्देज,
तुमें हमाई सों बिटियन सें करियो ना परहेज,
बात जा हितकारी, तें कैसी महतारी।।

हुयै 'शिवाजी' का अँगाई, सब मिलकें करौ विचार,
बिटिअई ना हुइयै तो, कैसें चलहै जौ संसार,
आई सो लिख डारी, तें कैसी महतारी।।

- 'शब्द शिल्पी' गुरसराँय, झांसी उ.प्र.

आल्हाखण्ड के प्रमुख स्त्री पात्र

- डॉ. सीमा तिवारी

आल्हाखण्ड अपनी अपार ऊर्जस्विता, असाधारण प्रभावशीलता और अतिशय प्रेषणीयता के कारण इतना लोकप्रिय हुआ है कि जनसाधारण से लेकर विद्वान साहित्यकार तक उससे प्रेरणा लेते रहे हैं। आल्हा का मुख्य घटना केन्द्र 'महोबा' या महोत्सव नगर था, जो चन्देलों की राजधानी थी, इतिहासकारों ने चन्देल राज्य को उत्तर भारत का एक शक्तिशाली, समृद्ध और सुसंस्कृत राज्य कहा है। आल्हा की गायकी के विविध रूप बुन्देलखण्ड में आज भी प्रचलित हैं।

ऐसा माना जाता है कि आल्हा महाभारत के चरितनायक धर्मराज युधिष्ठिर का, ऊदल भीम का, ब्रह्मा अर्जुन का, इन्दल अभिमन्यु का, ढेवा नकुल का, पृथ्वीराज दुर्योधन का, धाँधू दुशासन का, ताहर का और चौड़ा द्रोणाचार्य का अवतार माने जाते हैं। पृथ्वीराज की रानी अगमा की पुत्री बेला द्रोपती का अवतार मानी जाती है।

स्वयंवर प्रथा के काल में विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष की वीरता की परीक्षा लेने की प्रथा तत्कालीन राजाओं से प्रचलित थी। श्रीराम की शक्ति की परीक्षा सीता स्वयंवर में धनुष तोड़ने के रूप में ली गई थी। द्रोपती स्वयंवर में भी धनुर्विधा की परीक्षा थी। आल्हाखण्ड में वर्णित बावन लड़ाइयों में से किसी न किसी रूप में शक्ति परीक्षण ही उद्देश्य रहा है।

प्रस्तुत आलेख में आल्हाखण्ड के प्रमुख स्त्री-पात्रों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. **अगमा** - अगमा रानी दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान की रानी थीं तथा उरई के माहिल परिहार की बहिन थीं वे कुशाग्र बुद्धि की थीं, राजा की मुख्य पटरानी भी थीं। उनके गर्भ से बेला का जन्म हुआ था, बेला को द्रोपदी का अवतार कहा जाता है।

अगमा रानी दिल्लीगढ़ की, अपने महल में करे विचार,
कैसी जा स्वारथ की दुनियां, कैसो निरमोही सिंसार...

कुसमा - नरवर के मकरन्द की पत्नी थी।

कुसमा या कुसमदे - राजा गंगाधर जो बूंदीगढ़ के राजा थे उनकी पुत्री कुसमा थीं। कुसमा का विवाह लाखन के साथ हुआ था।

कुसमा रस्सा लठका दीनहो, और ऊँचे सुर रही पुकार,
पहले बुलाओ लाखन पति को, कंथा बाहर आओ हमार,
फिर कें बुलाओं बघ ऊदल को, बाहर आव बनाफर राय,
बोले लाखन तब कुसमा सें, तुरते जाव पद्मिनी नार।

कुसला - माड़ौगढ़ के राजा जम्बे की रानी कुसला थी।

इतनों सुननें कुसला रानी, कुपित होइ कें लगी बतान।
जौनं रूप को करिय बेटा, दूसर कौन लीन अवतार।।

केसरी - नैनागढ़ के राजा नेपाली की रानी थीं।

बेटी बोली माता केसरी से, देवी पूजन को हम जायें,
मानी मनौती माता मैंने, जेहि दिन आहे मोरी बरात।
बाजा गाजा कें पूजन करिहों, सो दिन आज पहुचो आय,
बानी केसरी तब बेटी से, बाप तुम्हारो ढोल न देंय।।

केसरी - बौरीगढ़ के महल की दासी थी।

केसर दासी है रानी की, बापे जादू चलहे नाय।

गजमोतिन - जूनागढ़ के राजा गजराज की पुत्री गजमोतिन थी, गजमोतिन मलखान की रानी थी।

बोले ऊदल गजमोतिन से, तुमको साँची देऊ बताय।
देस हमारो बंगालो है, जहाँ लओ हमने औतार।।
सुनकें बातें बैरागिन की, गजमोतिन के पूंछी बात।
गढ़ महोबे में का-का देखो, बाबा इतनो देउ बखान।।

चन्द्रावल या चन्द्रावलि - राजा परमाल की पुत्री थी। बौरीगढ़ के राजा वीरसाह के पुत्र इन्द्रसेन के साथ उसका विवाह हुआ था।

नगर महोबे की जगां मा, चढ़ लाओ लोभी चौहान।
चंद्रावलि कौ डोला माँगे, माँगे लाखा नौलखाहार।
डोला जेहे चंद्रावलि को, तुम कौड़ी के मोल विकाव।
परो सांकरों गढ़ महुबे पै, मुहुबे जाव सती बल्लार।।

चम्पा - राजा अभिनन्दन बलख बुखारा की रानी थीं।

चम्पा बोली अपने मत से, सुनियो बात मोर चितलाय।
बेटी ब्याह देव इन्दल सें, स्वामी मानो बात हमार।।

चम्पारानी - जूनागढ़ के राजा गजराज की रानी थी।

चित्ररेखा - बलख बुखारा में राजा अभिनन्दन की पुत्री थीं। चित्ररेखा ने इन्दल का अपहरण किया था, इसके बाद इन्दल के साथ उसका विवाह हुआ था।

बोली हंसके चित्तरेखा, ओ सुनवां के राजकुमार।
दाखन खीर, नीर तुही देऊं, काये महुवे कौ करो ध्यान।।
सुआ से मानुष कर इंदर को, चित्तररेखा कहै पुकार।
तुमसे रूप अगरो जोगी, लीजै कंथा नैन निहार।।

तिलका - लाखन राना की माँ तथा कन्नौज के राजा रतिभान की रानी थी।

इकलो बेटा लाखन राना, तिलका को है लड़ेतो लाल।
वीरा खातन तुरत छींक भई, तिलका गई सनाका खाय।
असगुन हुइगो चौक माँ बैठे, ऊदल टीका देव फिराय।।

दैवे या दिवला - आल्हा, ऊदल की माँ दस्सराज की पत्नी तथा ग्वालियर के दलपत की पुत्री थी।

दैवे आल्हा खों समझावै, तुम भाई को लेव मनाय।
आल्हा बोले तब माता से, दिखवे धार करिंगा क्यार।।
आग्यां दीनी तब देवै ने, तुम मॉड़ो को होव तयार।
देवे बुलवाओ सैयद खों, मोरो डोला करा तयार।।
लड़िका जाय रहे जूझन खों, पुरवा माँ मोरो का काम।।

फुलवा - नरवर के राजा नरपत की पुत्री थीं। (कहते हैं वह अम्बे की पुत्री बिजैसिन का अवतार थीं) ऊदल के साथ उसका विवाह हुआ एवं अन्त में फुलवा अग्निकुण्ड में कूंदकर अपना जीवन समाप्त कर लेती हैं।

फुलबा बोली तब हिरिया से, बाखों तुरतै जाव बुलाव।
जाय में मालिन वच ऊदन से, कहीं के फुलवा मिलवो चाय।।
खास सनाका मालिन रहिगै, तब फुलवा से लाग बतान।
पलका ढिगमां फुलवा बैठी, चौकी मोढ़ा दये डराय।।

बेला - पृथ्वीराज एवं अगमा की पुत्री थीं। परमर्दिदेव के पुत्र से उसका विवाह हुआ। करते हैं बेला द्रोपदी का अवतार थीं। बेला ने अपने पति का बदला लेने के लिए अपने भाई ताहर का सिर काट दिया था। अंत में ब्रह्मा के साथ सती हो गई थीं।

मछला - देवै का दूसरा नाम था। वह आल्हा-ऊदल की माँ थीं।

मल्हना - वासुदेव की पुत्री माहिल की बहिन तथा राजा परमाल की रानी थी। उनका पुत्र ब्रह्मा तथा पुत्री चंद्रावली थीं। अंत में पारस पथरी सागर में फेंक देती हैं।

लाखा पातुर - दस्सराज की नृत्यांगना थीं। करिंघा राय दस्सराज का धोखे से वध करके लाखापातुर को अपने साथ ले गया था बाद में आल्हा-ऊदल उसे वापिस महोबा ले आते हैं।

सुनवाँ - नैनागढ़ नरेश नेपाली की पुत्री थी। वह जादू का ज्ञान रखती थी। सुनवा के तोते का नाम हीरामन था। आल्हा के साथ विवाह हुआ।

सुनवां ढ़ांड़ी भई अट्टापै, आउत देखो लहुरवा भाय।
सुनवां पूछै रनबोरे से, देवर हाल देव बतलाय।।
दोऊ कर जोरे ऊदल बोले, भौजी सुनो हमारी बात।
मरे मराये जोधा उठिबै, समुहे जंग हमारे संग।।

सुनिया बेड़नी - एक खाना बदोश लड़की थी। वह ऊदल को तोता बनाकर अपहरण करती है।

संयोगनी - कन्नौज के राजा जयचंद की पुत्री थी। पृथ्वीराज चौहान ने उनका अपहरण किया था।

केसर नटनी - बलख बुखारा के राजा की बांदी, जो जादूगरी में माहिर थी।
केसर नटनी की चेलिन भई, जो मानुष को करे अहार।
गंगा नहावै गई बिठुरें, तहाँ से मानुष लाई चुराय।।

विजमा - माँड़ोगढ़ के राजा की बेटी जिसे मलखान ने मारा था। अगले जन्म में नरवरगढ़ में फुलवा के नाम से जन्म लेती है और ऊदल के संग विवाह भी होता है।

लैके डोला विजमा कुंअरि को, दूसर महल माँ दयो पठाय।
ऊदल बोले तब आल्हा से, हम विजमा से बात गये हार।।
खंभ गड़ाके रंग महल माँ, भाँवर तुरतै लेओ डराय।
बोले आल्हा तब ऊदल से, ना बैरी घर करें बिआव।।
खेंच सिरोही मलखे मारी, विजया गिरी तड़ाका खाय।
विजया बोली वध ऊदल से, म्वाखाँ तुमने डारो मराय।।

मल्हना - रंग महल माँ मल्हना देवै, दोऊ जनी पहुंची आय।
ब्रह्मा आल्हा संगै आये, लागे होन मंगलाचार।।
मुँह से माँगो जो नेगिन ने, मल्हना तुरत दयो मंगवाय।
दूल्हा निकासी में आल्हा पै, देवै आँचर डारो जाय।।
तब मल्हना ने आँचल डारो, हमरो दूध लजैयो नाय।

हिरिया मालिन - नरवरगढ़ में फुलवा के बाग की मालिन का नाम हिरिया था। हिरिया द्वारा ऊदल से फुलवा का मिलन कराया था।

मालिन हिरिया गई फुलबगिया, तुरत तराजू लीन उठाय।
पहिलें फुलवा तौलो फूलन सें, बाद में हार दीन पहिराय।।
बिगड़गै फुलवा तब हिरिया सें, तै कहाँ पाओ नौलखाहार।
हात जोर कें हिरिया बोली, बिटिया सुनो धरम की बात।।
मोरी बहिनी की बिटिया आई, वाने गुहो नौलखा हार।

बेला - उतरत आवै नौनागर सें, सिढ़ियाँ धंसी नागवर क्यार।
चीर अगिनिया लुटरत आवै, मुंह से निकरे अग्नि कै झार।
मंड़वा नैंचे चली भवानी, तब मलखे कों परी दिखाय।
ऐसे बोल बोलो बेला सें, सिरसा बारों मरद मलखान।।
ऊँचे कपारे कै बेला ती, घर-घर आवै पुलइयन पाँव।
दोनऊँ कुल की मैंटन उपजी, इक दिल्ली इक नगर महोब।।
कान में सबद बेला के परगै, नर मलावे से लाग बतान।
जैसो हसऊवा करे तें मोरो, उइसे मोसें लै लेव सराप।।
सब कांउ जूझी बैरागढ़ माँ, डांड़े माँ मर जई मलखान।।

- हिन्दी विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर

पिया लौटे नईं अबलों देश

- डॉ. एल.आर. सोनी, 'सीकर'

पिया लौटे नईं अबलों देश, जतन कर मैं हारी।।

सोमवार कों 'सोमवती' को, व्रत करके हारी।
सुबह-दुफरिया, शाम, रात तक, वाट तकी भारी।
जासों-मिट जायें सारे-कलेश-जतन कर मैं हारी।।...

मंगलवारी बजरंगी को, चोला भी चढ़वायो।
भोग-प्रसाद, दक्षना बाँटी, मंदिर-शीश नवायो।
जासों-हट जायें सारे क्लेश,- जतनकर मैं हारी।।...

बुद्धवार कों कथा कराई, 'जय-जगदीश हरे'।
काटौं फंद दिखा दो जोति, माधव कृष्ण हरे।
आओ स्वामी जू, राजा नरेश, जतन कर मैं हारी।।...

गुरुवार-कों-गुरुदेव की, पूजा जी भर की।
ब्रह्मा, विष्णु मनाये दिनभर, एक चाय-कप पी।
कोंनऊँ-पूजा नई छोड़ी है, शेष जतन कर मैं हारी।।...

शुक्रवार कों संतोषी मैया, के चरण गहे।
माँ दुर्गा के आगे बैठी नैंनन नीर बहे।
आओ-गोरी सुत औ गणेश जनत कर मैं हारी।।...

शनिवार कों शंकर जी कों भी दो फूल दये।
बैल नादिया खूब नहायो लोटा भर-भर दये।
अब तो दया तौ करौ ओ महेश, जतन कर मैं हारी।।...

रविवार कों कछू ना कीन्हों, सोवत दिन भर रई।
का कै दें 'सीकर' जा मन की का कैसी? गति भई।
स्वामी उलझे हैं, सौतन-केश, जतन कर-मैं हारी।।...

- सीकर भवन, ठंडी सड़क, दतिया (म.प्र.)

सीताकिशोर के बुन्देली दोहे : अमूल्य धरोहर

- डॉ. कामिनी

डॉ. सीताकिशोर खरे द्वारा रचित 'पानी पानीदार है' कृति में बुंदेली के सात सौ दोहे संकलित हैं। कृति की भूमिका में बालकवि वैरागी ने लिखा है - "जब भी कोई निःसंकोच और तटस्थ कलम इस बुंदेली चेतना पुरुष पर चलेगी तब ईसुरी तथा छत्रसाल के प्रदेश में हलचल मच जायेगी।' 'पानी पानीदार है' के सात सौ दोहे जीवन को एक आकाशगंगा देने की सामर्थ्य रखते हैं। यह कृति समाज की हर समस्या की पर्तें उधेड़कर सोचने के लिए विवश करती है। प्रमुख रूप से इसमें डाकू समस्या है। डाकू बनने की स्थितियों का सूक्ष्म विवरण है। रोटी, वर्ग-संघर्ष, गरीबी और मजबूरी के प्रति कसक है। बुंदेली संस्कृति की सुगंध है। बुंदेलखंड का इतिहास और भूगोल है। प्रकृति का सौंदर्य और राष्ट्रीय एकता, प्रेम और सद्भाव का संदेश है। एकता के सूत्र में बाँधने वाला चिंतन है और समूचे राष्ट्र के प्रति समर्पण और आसक्ति है।

सेंवढ़ा निवासी समर्थ बुन्देली कवि सीताकिशोर जी हमारे बीच नहीं रहे, उनको श्रद्धांजलि स्वरूप यह लेख प्रस्तुत है। जिसमें उनके दोहों की मार को उद्घाटित किया है डॉ. कामिनी जी ने - **संपादक**

मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा रचनाकार का धर्म है। मूल्यों का ह्रास कवि को आँसता है। कवि की पीड़ा पूरे समाज की पीड़ा है जो इस प्रकार अभिव्यक्त होती है -

ऐसे बिगरे आचरण, ऐसी टूटी लीक।
अनाचार की आरती में हो गये शरीक।।
००　　००　　००
ऐसी साफ सिलेट पै, खैंची एक लकीर।
इननें ना उननें लखी, परम्परा की पीर।।

सीताकिशोर के दोहों में हवन सामग्री से उठती हुई महक है। जीवन संदर्भों को उजागर करने वाले सूत्र हैं। चंदन-सी बुंदेली माटी में पल्लवित पुष्पित दोहे कालजयी हैं। प्रासंगिक हैं। डॉ. के. बी.एल. पाण्डेय के शब्दों में - "पानीदार पानी के आँचल में घाटी के व्यवहार और भी कँटीले हो गये हैं। अतः बेहद भावुक और संवेदनशील रचनाकार के दायित्व के रूप में सीताकिशोर के दोहे इस समाज के बनैले यथार्थ से सींगों के सामने से की गई मुठभेड़ हैं।' सीताकिशोर के रचना-सरोकार व्यापक सन्दर्भ में प्रामाणिक और प्रासंगिक हैं -

पानी पानीदार है, प्यास और सरदार।
और कँटीले हो गये घाटी के व्यवहार।।
००　　००　　००
चलत हवा आतंक की, साधारण थर्रात।
अरज करत गिर गिर परत, चरनन में बिछ जात।।
००　　००　　००
सुआ हरामी आम कौं, दागी कर कर देत।
त्यों अनियंत्रित वीरता, बागी कर-कर देत।।
००　　००　　००
गोली जब-जब धँसत उर, छूटत रकत फुहार।
चाँमिल में मिल बह चलत, एक ओर यह धार।।
००　　००　　००
बागी एक कलंक है और एक संताप।
चंबल घाटी कों लगी, जौ क्वांरी की शाप।।

साहित्य में प्रस्तुतीकरण की दो मूल शैलियाँ हैं - गद्य और पद्य। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक छंद का महत्व असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया गया है क्योंकि छंद, स्मृति को सहजता के साथ सरल बनाने में मदद करते हैं। छंदों में भावों का गुंफन प्रभावकारी रूप से समावेशित रहता है। हिन्दी कविता में छंद के आकार, मात्राओं और वर्गों की दृष्टि से लंबे भी हैं और लघुरूपा भी हैं। इन छंदों में दोहा छंद प्रारंभ से ही अत्यंत लोकप्रिय रहा है। आदिकालीन चन्द्रवरदायी से लेकर भक्तिकालीन कबीर, तुलसी, रीतिकालीन बिहारी और आधुनिक काल में तमाम कवियों के साथ-साथ डॉ. सीताकिशोर ने भी इस छंद को अपनाया और उसे लोकप्रियता प्रदान की। सीताकिशोर के दोहे बुंदेली की अमूल्य धरोहर है। सीताकिशोर के दोहे लोक-जीवन की प्राणवत्ता को लिये हुए हैं। इन दोहों में लय, प्राण के समान धड़कती है -

खिलखिलात सरसों सरस, अरसी मुस्क्या जात।
छूम छनन छन चनन सें, जब बिछिया बतरात।।

इन दोहों के शब्द-शब्द में बुंदेलखण्ड-विशेष रूप से ग्वालियर-चंबल क्षेत्र की सामाजिक चेतना अत्यंत गहराई से सम्पृक्त है। लोक की सम्वेदना में डूबकर ही साहित्य के संस्कार विकसित होते हैं। अपनी माटी पर मुग्ध होकर रचनाकार ने बुन्देलखण्ड की संस्कृति सभ्यता, कला, समाज सब कुछ साकार करने का अनूठा प्रयास किया है। दोहों का ऐसा सुन्दर अलबम है, जिसमें बुंदेलखण्ड का समाज प्रतिबिम्बित है। कवि का सारा उद्वेलन, अनुभूति और तड़प सामाजिक चेतना के जागरण में प्रकट हुआ है। सृजन की अनिवार्यता जीवन के सहज प्रवाह में संभव हुई है। कवि की दृष्टि समाज के कोने-आँतर से वर्तमान जीवन के लिये सकारात्मक मूल्यों की खोज में संलग्न रही -

एक समर्पण गैल में, अर्पित अमित प्रकाश।
बीस बिसे विश्वास है, बीस सूत्र सी आस।।
००　　००　　००
जब समर्पण की पवन, परसत हिय के द्वार।
चाव चौगुनों चित चढ़त, खुल खुल जात किवार।।

डॉ. हरीश नवल ने 'इंडिया टुडे' के ३१ मार्च १९८७ के अंक में 'पानी पानीदार है' की समीक्षा में लिखा है कि 'ये दोहे इस अंचल के समाज की जीवंत घटनाओं को सहेजने वाला संकलन

है। इन दोहों में आंचलिक आत्मीयता के साथ-साथ सद्भावना का संदेश है तथा यह कृति मानव मूल्यों के लिए समर्पित है।'

केरल के कश्मीर तक बोली बानी वेश।
होकर भिन्न अभिन्न है, गुलदस्ते सा देश।।

सीताकिशोर के दोहों में समावेशित सामाजिक-स्थितियाँ, लोकजीवन के विविध पक्ष, मानव मूल्य और बुंदेली भाषा की संप्रेषणीयता है। बुन्देली के इन दोहों में एक ओर लोक-जीवन का श्रेय है तो दूसरी ओर रोष भी है -

बुलबुल का करहै इतै, का कोइल कौ काम।
घर-घर पिंजरन में पले, उल्लू नमक हराम।।
00 00 00
चापलूस मिल बैठ कें, कर रये वाद-विवाद।
दिव्य दृष्टि सै प्रकट भई उल्लू की औलाद।।
00 00 00
का पानी में घुर गऔ, का माटी की भूल।
गुठली गाड़त आम की, जम जम कढ़त बबूल।।
00 00 00
गली-गली मारी फिरत, मेहनत बनी मजूर।
बिघनन सें कैनें परत, मालिक और हजूर।।
00 00 00
दौलत नें दिन-दिन करे, कछु ऐसे दस्तूर।
सजा पसीना कों मिली, बिलकुल बिना कसूर।।

ये दोहे सामाजिक प्रतिबिम्ब को अपने में समाहित किये हुए हैं। जीवन के प्रसंगों को रेखांकित कर उनके अनुभवों को स्वर दिया गया है -

कई खूँटा तौ जौ गड़ौ, तौ जौ लऔ उखार।
उनने लट्ठ बजोर दये, इनके फटे कपार।।

ऊबड़-खाबड़ भूमि, बीहड़, कछार तथा जंगल के भूगोल को समेटे हुए बुंदेलखंड का समाज अभावों में भी ठसक लिये हुए है। संघर्ष भरे जीवन को हँसकर जीने वाला इस क्षेत्र का समाज बैर-विरोध के साथ भाईचारे और आपसदारी में आस्था रखता है। यह विरोधाभास अपने आप में आश्चर्यजनक और महत्वपूर्ण है। कृति के दोहे समाज के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों के समर्थ साक्षी हैं। ये दोहे जीवन-मूल्यों के साथ गुंफित हैं। इसी में इनमें बुंदेलखंड के समाज का स्पंदन है। दोहों में जिस समाज का सम्मिलित किया गया है, उसमें शोषण के साथ उत्पीड़न भी है। बैर-विरोध के साथ प्रेम और सहयोग की भावना है। साथ ही सामाजिकता के साथ सहमति और असहमति के स्वर स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं। इन दोहों में भाषा के साथ भावों की लय जुड़ी हुई है और अभिव्यंजना शक्ति बहुवर्णीय है -

ककरा खार कछार के फिरैं रोज उड़यात।
जीतत जबहिं चुनाव तब चरन कमल हो जात।।
00 00 00
भूमि कटत कटकें जुरत, पार फूट जुर जात।
इनके उनके बीच की कटन, न पुरत दिखात।।

सीताकिशोर के बुंदेली के इस प्रयास से प्यास बुझेगी नहीं वह जाग्रत होगी और अतृप्ति बनी ही रहेगी। सीताकिशोर की साधना, उनकी सहजता उनकी संघर्षमय जीवन-यात्रा और बुंदेली के प्रति अनुसक्ति और समर्पण वंदनीय है। अभिनंदनीय है। उनका साहित्य कालजयी है।

- प्राध्यापक एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
शासकीय गोविन्द महाविद्यालय सेंवढ़ा, जिला दतिया

बुन्देली हाइकू

- राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

१. वसंत आऔ,
मऊआ सरसौ है।
आम बौराऔ।

२. वसंतोत्सव,
बुन्देली बिखरी।
बसारी गाँव।

३. दिवारी आई,
दियल उजयार।
लच्छमी आई।।

४. होता सौ डण्डी,
के बराबर एक,
बुन्देलखण्डी।

५. जनी मान्सन,
संस्कारन समेटें।
लोकगीतन।

६. नृत्य दिवारी,
मौनिया औ बधाई।
बरेदी राई।

७. चीला, सतुआ,
दइबरा, ठडूला।
मुरका, पुआ।।

८. महेरी, लटा,
डुबरी, गुलगुला।
माड़े, लपटा।।

९. करैं कलेवा,
बिरचुन सतुआ।
मठा, लटा कौ।

१०. बतास फैनी,
पपरिया, कालौनी।
मींडा औ खाजा।

११.बरा, मगौरा,
खुरमी, तिलावर।
औ रसखीर।

- शिवनगर कॉलोनी, टीकमगढ़

बुन्देलखण्ड के उत्सव और नारी

- डॉ. हरीमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

आज हम प्रतिदिन पत्र-पत्रिकाओं में नारी शोषण की विभिन्न घटनायें पढ़ते हैं। बड़ी विडम्बना है कि जिस बालिका को देवी स्वरूपा मानकर हम सभी पूजते हैं, कन्या भोज आदि करके पुण्य कमाते है, उसका चरण स्पर्श करके मोक्ष की कामना करते हैं, कल विवाहोपरान्त हम उसी कन्या को वधु रूप में पाकर प्रताड़ित करते हैं और मात्र कुछ धन दहेज के लालच में, उसे आग की धू धू करती लपटों में झोंक कर, अथवा उसके गले में फ़ांसी का फन्दा डालकर, उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देते हैं।

समाज में नारी की वर्तमान दशा को देखते हुये हमें हमारे पूर्वजों की दी हुयी सांस्कृतिक विरासत झकझोरती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुसार समाज नारी एवं पुरुषरूपी दो पहियों पर चलता है।

"एक चक्रो रथो यद्ध देक पक्षो यथा खगः।
अभार्यो अपि नरस्तद्ध दयोग्यः सर्वकर्मसु।।'

अर्थात् एक चक्के का रथ कुछ दूर चलकर ही गिर जावेगा और एक पंख से चिड़िया फड़फड़ाकर ही रह जावेगी, थोड़ी दूर भी नहीं उड़ सकेगी। उसी तरह अकेला पुरुष भी कोई कार्य नहीं कर सकेगा।

हमारे पुराण तो यहां तक कहते हैं - "पुमानर्द्ध पुमांसता वद्यावर्द्धार्यो न विन्दति।"[२]

अर्थात् पुरुष का कलेवर तब तक पूर्णता को धारण नहीं करता, जब तक कि उसके आधे अंग को जाकर नारी नहीं भर देती।

अस्तु नारी समाज का वह अत्यावश्यक अंग है, जिसके अभाव में समाज की संरचना साकार हो ही नहीं सकती। पुरुष का स्वरूप नारी के साथ ही सम्पूर्ण होता है। इसी कारण नारी को अर्द्धांगिनी कहा गया है। भगवान शंकर का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप हमें सकल समाज की प्रेरणा देता है। ब्रह्मा जी के क्रोधित ललाट से उत्पन्न रुद्र के स्वरूप पर पुराण कहते हैं -

"अर्द्ध नारी नरवपुः प्रचण्डो अति शरीरवान्।
विभजात्मान मित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः।।"[३]

अर्थात् उसका अति प्रचण्ड शरीर आधा नर और आधा नारी रूप था। तब ब्रह्मा जी अपने शरीर का विभाग कर, ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

अस्तु नर नारी दोनों के द्वारा ही समाज का विकास संभव है। नारी के बिना नर अस्तित्वहीन हो जाता है। बुन्देलखण्ड में नर-नारी के सम्बन्धों के विषय में कहा जाता है -

घर है घरवारी बिन सूनौ, रात बिना दिन ऊनौ।
जैसे सब तिथियन में नौंनी, होत सिरोमन पूनौ।
सोंन, जुही, सेवती, निवारी, है गुलाब खुसबू नौं।
तैंसेई नारी बिन नर को, दुख को दरिया दूनौ।।[४]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने वर्तमान परिस्थितियों में नारी के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है-

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आंखों में पानी।।[५]

परन्तु यह वर्णन प्राचीन गौरवमयी भारतीय समाज व्यवस्था के अनुरूप नहीं है। श्री प्रसाद जी ने अवश्य हमारी सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप नारी का वर्णन इस प्रकार किया है -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष श्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।[६]

आज के समाज में नारी की बड़ी दुर्दशा है। बुन्देलखण्ड के उत्सव पर्व एवं खेल इस बात के प्रत्यक्ष साक्षी हैं कि गौरवमयी प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुरूप नारी को प्रतिष्ठित एवं उसे उस प्रतिष्ठा के योग्य बनाने में, बुन्देली उत्सवों एवं खेलों पर प्रकाश डालकर उनके पीछे छिपे हुये मनोविज्ञान को समझने का प्रयास कर रहे हैं -

चैती सुकुल प्रतिपदा - इस प्रतिपदा पर अरुन्धती व्रत किया जाता है। अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ की पत्नी थी। सप्त महर्षियों में अरुन्धती का भी एक नाम है जो समस्त नारी समाज के लिए प्रेरणा एवं गौरव की बात है। इस व्रत दिवस से नारी का समाज में अपने नारीत्व के लिये स्वाभिमान का जागरण होता है।

बरा बरसात - ज्येष्ठ मास की अमावस्या को सुहागिन स्त्रियाँ इस व्रत का पारायण करती हैं। इस व्रत की पूजन पद्धति में सात अंक का विशेष महत्व होता है। इस व्रत की एक क्रिया है, जिसमें सुहागिन स्त्री की ओली में सात मालपुये डाले जाते हैं, जो कि इस बात के द्योतक हैं कि उत्तेजना, शान्ति, क्रूरता, मैत्री, अस्मिता, विलासिता, परिश्रम आदि सातों भावनात्मक कृत्य सूर्य रश्मि के सातों रंगों के साथ मिलकर शुभ्र श्वेत वर्ण का ऐसा सामन्जस्य स्थापित करें, कि सम्पूर्ण समाज श्वेत रंग की धवलता सा स्वच्छ व पवित्र हो जाये।

इस व्रत के माध्यम से सुहागिन स्त्रियों को पतिव्रत की शिक्षा मिलती है, क्योंकि हिन्दू संहितानुसार पतिव्रत सती के सम्बन्ध में कहा गया है -

"पृथिव्यां यानि तीर्थानि सती पादेषु तान्यपि
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीसु वै
सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा।"[७]

अर्थात - पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी सती साध्वी स्त्री के चरणों में निवास करते हैं। समस्त देवताओं और मुनियों का तेज भी सती स्त्रियों में स्वभावतः रहता है। सती नारियों की चरण रज से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है।

इस बरा बरसात व्रत से नारी समाज में स्वाभिमान की जागृति होती है।

कुनघुसी पूनौ - असाढ़ मास की पूनौं को यह उत्सव

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हर्ष व उल्लास के साथ मनाया जाता है। इस उत्सव के दिन पूरे घर की सफाई होती है, फिर घर की एक दीवार पर सास अथवा घर की सबसे बड़ी बहू द्वारा अन्य सभी बहुओं की प्रतीक स्वरूप आकृतियाँ बनाई जाती है, जिनका पूजन किया जाता है। पूजन के बाद सास अपनी सभी बहुओं का तिलक करके उन्हें सुहागवती रहने का आशीर्वाद देती है एवं उत्तम भोजन के बाद उन सभी बहुओं को उपहार प्रदान करती है।

कुनघुसी पूनी के शाब्दिक अर्थ पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुन अर्थात् कुल, घुसी अर्थात् 'के अन्दर' तथा पूनी अर्थात् पूर्णिमा होता है। अतः इसे हम कुल के अन्दर पूर्णिमा बिखेरने वाली कह सकते हैं। स्मृति कहती हैं -

''पितृभि भ्रार्तभिश्चैताः पतिभिदेर्व रैस्तथा।
पूज्या श्रूवयितव्याश्च बहुकल्याण भाप्सुभिः।।[८]

अर्थात् प्रचुर कल्याण की कामना करने वाले पिता, भ्राता-पति तथा देवरों को चाहिये कि वस्त्राभूषणों द्वारा स्त्रियों को अलंकृत करे क्योंकि प्रचुर कल्याण केवल नारी द्वारा ही सम्भव है।

उस परम तेजोमयी, गरिमामयी, सृजनहारी नारी की यह कैसी विडम्बना है कि 'मातृ देवो भव' कहकर हम उसी नारी को विभिन्न यातनायें देकर प्रताड़ित करते हैं और उसका अस्तित्व तक समाप्त करने का प्रयास करते हैं। बुन्देली पर्व 'कुनघुसी पूनौ' इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि बुन्देलखण्ड में नारी कितनी सम्माननीय है, वन्दनीय है, और अर्चनीय है।

हरी ज्योति पर्व – श्रावण कृष्ण अमावस्या को बुन्देलखण्ड के घर घर में बालिकाओं के पूजन-वंदन द्वारा यह पर्व सोल्लास सम्पन्न होता है। इस पर्व में घर की मां व बड़ी भाभियों द्वारा घर की एक स्वच्छ दीवार पर घर की सभी कन्याओं को प्रतीकरूप में चित्रित किया जाता है एवं उनके पूजन के पश्चात् साक्षात् देवी स्वरूप जगत्जननी, सृष्टि पोषक कन्याओं को तिलक लगाकर, उनके चरण छूकर, उन्हें इच्छित भोजन वस्त्रादि प्रदान किये जाते हैं। आचार्य पतंजलि का कथन है - ''यदि पुनाति प्रीणातीति वा पुत्रः दुहितर्यत्येतद् भवति'' अर्थात् यदि पुत्र पवित्र करता है या आनन्दित करता है तो पुत्री भी पवित्र व आल्हादित करती है।

बुन्देलखण्ड में कन्यापूजन प्रकृति पूजन है। इस पर्व के नाम 'हरीज्योति' पर विचार करने से यह भाव प्रकट होता है कि यह पर्व भगवान हरि (विष्णु) की ज्योति (शक्ति) का पर्व है। अर्थात् हरि जिससे स्वयं ज्योतित होते हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि स्त्री/कन्या का पूजन कर हम हरि की शक्ति का पूजन करते हैं, क्योंकि कन्यायें हमारी प्रेरणा स्त्रोत होती हैं तथा स्वयं में वे शक्तिपुंज होती हैं। यहां के निवासी नित्यप्रति कन्याओं में साक्षात् माँ भवानी के दर्शन प्राप्त करते हैं। यह उत्सव मनु महाराज के कथन को चरितार्थ करता है -

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[९]

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों का पूजन (समादर) होता है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जहां ऐसा नहीं है, उस परिवार में समस्त क्रियायें व्यर्थ होती हैं। यह पर्व नारी के सम्माननीयता का सूचक है।

नागपंचमी – श्रावण शुक्ल पंचमी को नागों के आवाह्न द्वारा यह पर्व मनाया जाता है। इस दिवस पर स्त्रियां अपने घर के दरवाजे पर नागों को अंकित कर उनका पूजन अर्चन करती हैं।

नागपूजा का आध्यात्मिक क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। मानव शरीर के अंदर छः चक्र होते हैं। मूलाधार चक्र से ब्रह्मांड तक बेधन होने पर कुण्डलनी जागृत होती है, जिसकी गति सर्प सी होती है। अतः नागों का विधिवत मान्त्रिक पूजन कुण्डलनी शक्ति के जागरण में सहायक है।

वैसे तो यह आम धारणा है कि स्त्रियां स्वभाव से बहुत डरपोक होती हैं परन्तु समय आने पर वे साक्षात् चण्डी का रूप धारण कर लेती हैं। निर्भयी चण्डी का रूप धारण करने के लिये यह आवश्यक है कि स्त्रियों में डर न हो। नाग तो साक्षात् काल ही होता है और नागपूजन कर स्त्रियों के मन से डर निकल जाये, यह भी नाग पूजन का एक सापेक्ष अर्थ हो सकता है।

नागपंचमी के दिवस पर यहां की महिलायें गाती हैं -

घुड़िला बांधी डार, फेरि बगिया में आये
धरियो रौंस में पांऊ, झपटि कारे ने हो खाये।।[१०]

घोड़े को बगिया में बांधकर जैसे ही आगे बढ़े, एक काले नाग ने झपट कर काट लिया।

फिर नाग से डसित व्यक्ति को उपचार हेतु एक ओझा के पास ले जाया जाता है, जहां वह ओझा उस काले नाग को देवताओं को आन देते हुए कहता है -

राजा रामचंद्र ने लंका टोरी, बासुख के घर तक्खा
अब उठि जागि संभार/ओ हनुमान की
हंकार ते टीर गई गेट लंका/चलो जो हनुमन्त छतवन्त को
अब जागि चेत सम्हार तोवै/अगडबम महादेव चढ़ि आओ।।''

हरछठ – भाद्रकृष्ण षष्ठी को यह वृत महायोगी भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई हलायुध धारण करने वाले बलराम जी के जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती हैं तथा इस व्रत में 'जोता बोया' हुआ अन्न ग्रहण नहीं किया जाता है क्योंकि अन्न तीन कोषों से युक्त होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल कोष स्वाद भार से युक्त होता है, सूक्ष्म कोष-प्रभाव व गुणयुक्त होता है, तथा कारणकोष-संस्कार से युक्त होता है। अस्तु जैसा अन्न होगा वैसे ही संस्कार होंगे। अतः प्रकृति के समीप पहुँचने के लिए प्रकृति के संस्कार से युक्त प्राकृतिक रूप में उपजे अन्न को ही इस व्रत में ग्रहण किया जाता है।

इस दिवस पर सात प्रकार के अनाजों का पूजन होता है, जो कि विभिन्न गुणों से पूरित होते हैं। जैसे मक्का, क्षमाशीलता, धान-रसिकता, ज्वार-कठोरता, मूंग-गतिशीलता, का द्योतक माना जाता है। इन सातों गुणों का समानुपातिक व्यवहार मनुष्य जीवन में आत्मिक उन्नति हेतु अत्यन्त आवश्यक है। इन सातों अनाजों के पूजन का तात्पर्य मात्र इन सातों गुणों को समानुपातिक रूप से जीवन में उतारने का उपक्रम है।

यह हरछठ व्रत स्त्रियों को प्रकृति के साथ सामन्जस्य स्थापित करते हुए समाज को अबाध रूप से चलाने के लिये विभिन्न गुणों, आचार व्यवहार के अनुपालन की शिक्षा प्रदान करता है तथा उन्हें समाज व प्रकृति के मध्य एक तारतम्य स्थापित करने की प्रेरणा देता है।

इस हरछठ व्रत को पुत्र मंगल व्रत भी कहा जाता है, क्योंकि जगत्गुरु शंकराचार्य जी का कथन है-

"कुपुत्रो जायेत क्वचदपि माता कुमाता न भवति।"[१२]

इस व्रत द्वारा नारी में सामाजिक गुणों का भरण होता है।

संतान सातें - भाद्र शुक्ल सप्तमी को बुन्देलखण्ड की महिलायें इस व्रत को धारण करती हैं। जिस प्रकार से वृक्ष की पूर्णता उसके फल फलने में निहित होती है, उसी भांति स्त्री भी 'माँ' बनने पर पूर्णता को प्राप्त होती है।

इस व्रत में स्त्रियां उमा महेश्वर का षोडषोपचार द्वारा पूजन अर्चन कर यह कामना करती हैं, कि वे अपने कानों में माँ जैसे परम पवित्र अक्षय शब्द की गूँज सुन सकें। इस व्रत को फल सप्तमी, मुक्ताभरण व्रत भी कहते हैं। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार मुक्ति हेतु मनुष्य को देवऋण, ऋषि ऋण, और पितृ ऋण से उऋण होना पड़ता है। देव ऋण तथा ऋषि ऋण से तो मनुष्य अपने कृत्यों द्वारा उऋण हो जाता है परन्तु पितृ ऋण से उऋण होने के लिये सदाचारी पुत्र का उत्पादन ही एक मात्र परिशोधन है, अतः मुक्ति के लिये भी इस व्रत का महात्म है।

स्त्री समाज में माँ बनने के पीछे यह भी एक लालसा का कारण हो सकता है कि माँ बनकर सकल समाज पर स्नेह की वर्षा कर समाज में स्नेहासिक्त वातावरण का सृजन कर सके। शायद इसीलिये कवि सुदर्शनजी ने एक नारी के माँ मन की बात इस प्रकार कही है -

"माँ जब मुझको कहा पुरुष ने, तुच्छ हो गये देव सभी
इतना आदर इतनी महिमा, इतनी श्रद्धा कहां कभी
उमड़ा स्नेह सिन्धु अन्तर में, डूब गई आसक्ति अपार
देह गेह अपमान, क्लेश छिः विजयी मेरा शास्वत प्यार।"[१३]

अखती - बैसाख सुदी तृतीया को यह पर्व बुन्देलखण्ड में विशेष उल्लास के साथ नारी समाज के बीच मनाया जाता है। इस दिवस को त्रेता युग की आदि तिथि भी मानते हैं। इसी तिथि को कामदेव की पत्नी रति की स्तुति से प्रसन्न होकर शंकर भगवान ने कामदेव और रति के प्रेम को अक्षय बने रहने का आशीर्वाद दिया था। अतः इस दिन जो भी कार्य किया जाता है, वह अक्षय होता है, ऐसा बुन्देलखण्ड के वासियों में विश्वास है। इस दिवस पर महिलायें, लक्ष्मी जी सहित भगवान नारायण का पुष्प, धूप, चन्दन आदि से पूजन अर्चन करती है, फिर सायं बेला में वट वृक्ष के नीचे जाकर अलग अलग प्रकार से हास परिहास करती हैं।

किशोरियां इस दिवस पर अपने हाथों से गुड्डे गुड़ियां बनाती हैं, फिर उनका पूजन करती हैं। इस पूजन के पीछे यह मनोवैज्ञानिक सोच छिपी रहती है, कि सामाजिक जीवन की जिम्मेदारी बालायें उठाना सीखें। इस पर्व से स्त्री पुरुष सम्बन्धों को विशेष सम्बल मिलता है। पति की सामीप्यता प्राप्ति का दिग्दर्शन इस बुन्देली लोकगीत में दृष्टव्य है -

"अखती खेलन कैसे जाऊं री बर तरें मोरे लिबऊआ
पैलऊ लिबऊआ नौआ जी आओ, नौआ के संग नई जाऊंगी।
दूजे लिबऊआ ससुरा जी आओ, ससुरा के संग नई जाऊंगी।
तीजे लिबऊआ देवरा जी आओ, देवरा के संग नई जाऊंगी।
चौथे लिबऊआ राजा जी आये, राजा के संग चली जाऊंगी।[१४]

समाज में नारी अपने लिये पूजनीय स्थान कैसे बनाये, इसके लिये उसे विभिन्न खेलों के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है। आइये कुछ उदाहरण इन बुन्देली खेलों में भी देखें -

मामुलिया - जेठ मास की तपती गर्मी के बाद असाढ़ मास की रिमझिम बूंदों से बुन्देलखण्ड की पथरीली भूमि पर मुक्त आनन्द की एक ऐसी निर्मल सरिता प्रवाहित होती है, जसमें समूचा बुन्देलखण्ड रसमय मधुरता एवं प्रेम से सरोबोर हो उठता है। इसी वातावरण में उन्मुक्त मुस्कान के साथ बुन्देली किशोरियाँ यह मामुलिया का खेल खेलती हैं। इस खेल में बबूल अथवा बेर की एक कटीली डाल को लेकर यहां की किशोरियां उसे विभिन्न प्रकार के फूलों से सजातीं हैं, और गाती जाती हैं -

"ल्याइयो ल्याइयो रतन जड़े फूल, सजइयो मोरी मामुलिया
ल्याइयो ल्याइयो गेंदा हजारी के फूल, सजइयो मोरी मामुलिया
ल्याइयो ल्याइयो चम्पा चमेली के फूल, सजइयो मेरी मामुलिया
ल्याइयो ल्याइयो घिया तुरैया के फूल, सजइयो मेरी मामुलिया
ल्याइयो ल्याइयो सदा सुहागिन के फूल, सजइयो मेरी मामुलिया।[१५]

इस मामुलिया में कटीली डाल पुरुष प्रकृति का प्रतीक है एवं फूल स्त्री प्रकृति का प्रतीक है। यह स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का द्योतक है। हमारी स्मृतियों में वर्णन मिलता है -

"संतुष्टो भार्यया भर्ता भत्री भार्या तथैव च।
यास्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।[१६]

अर्थात् जिस कुल में पत्नी से पति संतुष्ट है, और पति से पत्नी का संतोष है, वहां सदा कल्याण होता है, यह निश्चित बात है।

अस्तु यह मामुलिया खेल, पति-पत्नी रूप का एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव से जुड़ने की शिक्षा किशोरियों को प्रदान करता है।

इस मामुलिया खेल के पीछे जो सामाजिक मनोविज्ञान दिखता है, वह अद्वितीय है। परिवार में, समाज में, सदैव नयी नयी कठिनाईयाँ, उलझनें आदि आती रहती है। ये सभी जीवन में, परिवार में, समाज में, कांटों के प्रतीक हैं। अब किशोर बालायें इन कांटों को विभिन्न प्रकार के फूलों से सजाती हैं, और वे सभी कांटें समाप्त प्राय हो जाते हैं। इस मामुलिया खेल के माध्यम से स्त्री समाज अपने व्यवहार, कर्म, क्रिया तेज ओज आदि फूलों से परिवार व समाज की सभी कांटारूपी समस्याओं को सजाकर, सुखमय, आनन्दमय वातावरण की सृष्टि करती हैं। अस्तु यह मामुलिया खेल किशोरियों के मन मस्तिष्क पर यह शिक्षा प्रदान करता है कि किस तरह से सामाजिक पारिवारिक समस्याओं का निदान शान्तिपूर्वक किया जाना चाहिये।

आजकल शहरों के बड़े-बड़े ड्राइंगरूमों में मामुलिया एक

सजावट का साधन बनी दिखलाई पड़ती है, परन्तु बुन्देली भावनाओं के अनुरूप मानव का प्रकृति के साथ तारतम्य की अनुपम कड़ी के रूप में मामुलिया की प्रतिष्ठा आज भी माननीय है। फूलों को कांटों के साथ सजाने की विश्व प्रसिद्ध जापानी कला 'इकेबाना' शायद इसी मामुलिया का परिमार्जित स्वरूप है।

चपेटा - यह खेल श्रावण मास से प्रारंभ होता है। वैसे तो अवकाश के समय बुन्देली बालाओं के बीच यह खेल मनोरंजन का एक अच्छा साधन है। इस खेल में पत्थर के चौकोर पांच अथवा छः टुकड़े लिये जाते हैं, जिन्हें लड़कियां अपने हाथों से उछाल-उछाल कर खेलती हैं। इन पत्थरों के टुकड़ों को ही चपेटा या गुट्टा कहा जाता है। ये पत्थर के चपेटा पुरुषों के प्रतीक हैं, जिन्हें लड़कियां अपने हाथों से एक एक करके हवा में उछालती हैं, फिर उनके नीचे आने पर, उन पर सजग दृष्टि रखते हुये उन्हें लपक कर चपेट लेती हैं। यहां पर चपेटों को हवा में उछालने का तात्पर्य पुरुषों का समाज में स्वच्छन्द विचरण मानने से उस पर नारी समाज की सजग दृष्टि से स्थिति काफी स्पष्ट हो जाती है। चपेटों को धरती पर फेंककर, फिर उन्हें उठाकर, फिर चूमकर आदि की क्रियायें पुरुषों के साथ नारी सम्बन्धों के विविध पक्षों को उजागर करती है। मुख्य चपेटा को घर का मुखिया माना जाये एवं अन्य चपेटों को घर का सदस्य तो निश्चित रूप से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि मुख्य चपेटा के माध्यम अन्य चपेटों को नियंत्रण में रखना शायद सम्मिलित परिवार में सौहार्द्र बनाये रखने की कला का बोध कराता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी इस खेल का बुन्देली समाज में अत्यधिक महत्व है। इस खेल के द्वारा यह भी शिक्षा मिलती है कि यदि मुख्य चपेटा पति हो तो उसके माध्यम से काम, क्रोध, लोभ एवं मोह पर नियंत्रण प्राप्त कर परम आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है।

डॉ. ए.के. जड़िया बरौंदिया कला सागर लिखते हैं -

रंग बिरंगे चपल चपेटा, मेंहदी छू छू जावे
कैसऊ व्योम विहार करैं, पर लौट लपक आ जावैं।
नरम हथेलिन सौं निरमम, पथरन को झेल रही हैं।
कर्मठता को खेल, इनै, बालायें खेल रही हैं।[१७]

उपर्युक्त उत्सवों एवं खेलों के माध्यम से यह ज्ञात है कि बुन्देली समाज में नारी को कितना दिव्य स्थान प्राप्त है। यहां के समाज में नारी सदैव से ही प्रेरणा स्रोत रही है और आज भी है। वृद्धावस्था में एक पुरुष अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में कह ही उठता है-

अब को सुद कर है जा तन की, को जानै जा मन की।
भाई बन्द, उर कुटुम कबीला, चाय करैं सब धन की।
नारी बिन कोऊ नई बांटत, विपदा चौथेपन की।
खूब परख लई अन्ध लकरिया, अरधांगिन, जीवन की।।[१८]

अस्तु इस बुन्देलखण्ड में नारी के मातृ, पत्नी, बहिन एवं बेटी रूपी चारों रूपों में से किसी भी रूप के लिये कोई भी अनर्गल बात कोई भी सुनने को तैयार नहीं होता है।

संदर्भ :-

१. भविष्य पुराण, ब्रह्म पर्व - अध्याय षष्ठम श्लोक सं. ३०
२. वही - अध्याय सप्तम
३. विष्णु पुराण, प्रथमांश - अध्याय सप्तम, श्लोक सं. १३
४. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य-रामचरण हयारण मित्र पृ.सं. ३६७
५. यशोधरा खण्ड काव्य लेखक - मैथिलीशरण गुप्त
६. कामायनी - लज्जा सर्ग -लेखक - जयशंकर प्रसाद
७. वृहत्संहिता - वराहमिहिर कृत - सती महात्म श्लोक सं. ३
८. मनुस्मृति - तृतीय अध्याय - श्लोक संख्या ५५
९. मनुस्मृति - तृतीय अध्याय - श्लोक संख्या ५६
१०. बुन्देली लोक साहित्य - डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव पृ.सं. १७६
११. वही, पृ. १७७
१२. देव अपराध क्षमा स्त्रोत - आदि जगतगुरु शंकराचार्य जी, दुर्गा सप्तशती - पृ.सं. २२७
१३. कल्याण नारी अंक वर्ष १९४८ (जनवरी) पृ.सं. ४०
१४. बुन्देली लोक साहित्य - डा. रामस्वरूप श्रीवास्तव पृ.सं. ९८
१५. बुन्देली बाल लोक साहित्य- डॉ. हरिमोहन पुरवार, पृ.सं. ४०
१६. मनुस्मृति - तृतीय अध्याय - श्लोक संख्या ६०
१७. बुन्देली जन जीवन : एक परिचय - डॉ. हरिमोहन पुरवार पृ. ३०
१८. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य - रामचरण हयारण मित्र पृ.सं. ३६८

- संयोजक, भारतीय सांस्कृतिक निधि, उरई

दोहे

- ओम शंकर खरे 'असर'

रेशम कौ लुंगरौ पहिर रेशम चुनरी डार।
अंग अंग रेशम भयौ पोर पोर जरतार।।

सोने की नथनी बनी चाँदी की करधौन।
पाँव महाउर देखकें पायल रह गई मौन।।

सजबे खों सेन्दुर बहुत सखी मान लो बात।
बेंदी में दिन बसत है कारी लट में रात।।

हाथ दबा कें लओ जिया गला दबा कें प्रान।
सुख की लम्बी उमर भई प्रीतम बहुत सुजान।।

राख भयौ तन मिट गयौ जर गए सबरे अंग।
शिव खों वृथा जगायकें भयौ रंग में भंग।।

जानन हारौ कोऊ है मानन हारौ कोऊ।
एकहिं संगै ना मिलें काहू खों जे दोऊ।।

किसमिस सौ मीठो बदन बादामन से नैन।
फिर गुलाब अधरन बसे अरु कोयल से बैन।।

अधरन सें मिलकें अधर करैं न कौनऊ बात।
मूक कथा आनन्द की दस दस ग्रन्थ समात।।

कित्ती बेरै सूंघिहौ जौ गुलाब को फूल।
मुरझाबे खों ही खिलौ कभऊँ न जैयो भूल।।

- २१३, वासुदेव, झाँसी (उ.प्र.)

जियत न डारो कौरा, मरत बनाये चौरा

- दिनेश चन्द्र दुबे

अबै कछुअई दिनाँ पैले लगत ती कै जौ डुकरिया मर जाय तौ सारे सँकट कट जाये। और अब जब भगवान ने विनती सुन लई, तौ लग रऔ हे भगवान वाय फिर से जिन्दा कर दै। भोग चढ़ा हौ।

फोटू से झाँक रई आँखन पै चश्मा चढ़ौ है। भीतर तक चीर डारबे बारी बेई आँखें उनै बैसई घूर रईं जिनकौ देखई कै उनैं आग बर जात ती। लेकिन वे आज वा नजर से भीतरै तक आगबबूला होवे के बदले जैसे भीतरै कऊँ भौत दुख सौ मैसूस कर रये।

काल तक जई घर में कम से कम दो चार बेर उनकी बा से घलई जात ती 'कछू लियाये मुन्नी खौं?' इतके दिना बाद घरै पधारे मौड़ा खौ ल्याये कछू? कै आ गये बस रोटी टोर वे। सोवे लुगाई के सगै। चार सालन में कछू करौ मोड़ी के लाने कै...। छाती के भीतरै कछू आग जैसी बरी। लेकिन फिर जाने काये उन्हें लगी कै अगर मताई या नानी होके डुकरिया कछू बकत ती तो का कछू गलत कत ती?

बेर-बेर, उनके मन में, आज से पैले एकई बात तीर की तरयै गड़ी रात ती कि जोई बिगार रई प्रिया खौं। हम नई चाऊत ते कै वो कछू नौकरी करै। पर जरा वे कऊ बाहरै गये कै लौट कै पतौ चल के बाने प्रियाय कौनऊ स्कूल में हजार पांसौ की नौकरी अई शुरू करा दई या कौनऊ नओ कोर्सई करवे भेज दओ। लौट कै आऔ तो पता चलो मोड़ी मताई के सगै सो रई और वे भड़भड़ात फिर रये कै...। कछू कऔ तो पैले वासैं निपटौ। "काये तुम कछू नई करन चाऊत तौ तुमसे जादाँ पढ़ी लिखी मौड़ी भी बस केवल तुमाई सेवा में ठाड़ी रयै रात दिनाँ?"

भीतरै फिर कऊँ एक टीस सी उठी तो वे नीचै चले आये और मन बदलबे कै लाने कार धोंन लगे। पर बावजूद इस सबके जाने काय उनै लगी कै डुकरिया यदि कछू कत ती तौ का गलत कत ती? उनकी जौ बात में, सच कई जाय, तो दम नई हती कै बई के मौड़ी खौं भड़कावे के कारन वे कभऊ व्याव के बात चैन सै नई कै पाये और जंइसै वेर-वेर उनकी नौकरी लग तई हती तों छूट जात ती, काये के उनकौ मन घर मैई धरौ रत तौ। वे चाऊत ते कै प्रिया उनई के संगै रयै और वौ मताई के कारण तैय्यार नई हती कऊं जावे। मन सै। कत ती बा तुम तौ चार दिना पैले जिन्दगी में आये। सताइस साल की तौ वई नै करी। बाप नैं बाको संग छोड़ दऔ। भईया अलग जा बसे। ऐसे में बई ने हमाये नाव से जौ मकान खरीदो कै मर जाय तौ मौड़ी मारी मारी न फिरै। तुम भी तौ जई लालच से व्याव खौ तैय्यार भये ते कै मुफ्त कौ मकान रैवे है जा बड़े शहर में। कार दैरई सगाई में। लड़की सुन्दर है पढ़ी लिखी। और आज तुम चाऊत कै...........

मताई की तरफ झुकाव और पति की तरफ जुम्मेदारी ने प्रियाय दो भागन में बाँट दऔ तौ। जइसै उनै लगतती कै जब तर जौ रांड जिन्दा है तब तर...।

लेकिन अब लगत कै उनकी सोचई गलत हती। अब घर में कैसौ सन्नाटो पसर गऔ। चिन्टु खौ खिलाने, बैलाने तो अकेले उनै। स्कूल लै जानै, ल्यावने तौ उन्हें। होम वर्क करावनै तौ उनैं। बजार सै साग भाजी ल्यावनें तौ उन्हें और प्रियाय कऊ जाने तो उनै सगै जाने और वौ भी मोड़ा सगै ले जाने। पैले चिन्टू घर खेलत तौ रत तौ।

'हे भगवान जौ कैसी आफत आ गई। हमै का वर गऔ तौ कै.......... जिन्दारत आदमी कौ मोल आदमी काये नई समझ पाऊत। उनकी तरैय्यां भर आई हैं। ऐसी उनैं लगी तो अपनी कमजोरी प्रिया पै प्रकट न होय, उननैं अपनी मोबाइल निकार के बाप खौं लगाऔ। 'पिताजी जा तरफ आऔ तो इतै आइयो। बड़ौ बुरऔ लग रऔ। तेरई के बाद मेमान् लौट गये। सन्नाटौ डरौ घर में। आप नै ठीक कई ती। जब तर हम लोग रत तब तक तुम लोग काँ मोल समझ पाऊत। बूढ़े बढैन कौ। और जब वे नई रऊत तब। 'जियत न डारौ कौरा, मरत बनाउत चौरा।" आप ठीक के रये तै कै सास में मताई देखते तौ कछू परेशानी पड़ती अई नई। लेकिन तुम तौ हर बात कौ दोस बई कौ देत रये।"

कार जानै कब की धुब चुकी ती। दादा से बात करकै उनके मन में तनक तसल्ली सी भई। लिफ्ट कौ बटन दबा कैं वे अपने काम्पलैक्स के दरवाजे के पास पौंचे। बाहर उन्होंने डुकरिया के नाम की लगी नेम प्लेट कालई हटा कैं अपनै नाम की पलेट लगाई ती। अचानक उन्हें जानै कैसी लगी। दरवाजो खोल के वे भीतर गये और डुकरिया के नाम की प्लेट ढूँढ़ के बाहरै लौटे। 'ठक ठक ठक........

कीलें ठोके जाने की आवाजें सुन कै, भीतर रोटी बना रई प्रिया और उनकौ मौड़ा चिन्टू बाहर आओ, तौ हक्को वक्कौ सौ बाप खौ अपने नाम की पिलेट हटा कै, पुरानी पलेट ठोकते देख कै, पूँछन लगौ, डैडी जौ का कर रये। नानी तौ अब हैई नइयाँ तौ..........

'नई बेटा हमसै बड़ी गलती हो गई। वे हैं। कऊँ नई गई। वे कऊँ जैं तौ भी हम उनैं कऊँ जानई नई दें।' वे हमाये मन सै थोड़ी कऊँ जा सकती। जौ करकै हम उनसें माफी मांग रये। फिर वे झरझर बहने लगी आँखन सैई भीतरै गये और श्रीमती तिवारिन की फोटू के सामने ठांड़े हौकें हिलक हिलक कै रौन लगे, "हमैं माँफ कर दो अम्मा। भौत बड़ी गलती हो गई हमसै। हम नासमझ हते। काँ समझ पाये तुमाओ मोल तुमाये जिन्दारत भये।"

पिता और पति खौं इस तरै बिलख-बिलख कै फोटू के सामने ठाँड़े रोऊत देख प्रिया और चिन्टू भी उनसे लिपट के हिलकन लगे। ऐन ऐसई टैम में पतौ नई काये उनें लगौ जैसे फोटू में वे हंस रई। खुशी सें रोउत भई।

- पूर्व जज/अधिवक्ता, उच्च न्यायालय

६८, विनय नगर-१, ग्वालियर-१२

बुन्देलखण्ड में किसानी के प्राचीन संसाधन

- डॉ. कुँजीलाल पटेल 'मनोहर'

आज से कुछ दशक पहले तक ग्रामीण अंचलों में खेती किसानी, मेहनत-मजदूरी, बंजी-व्यापार, आवागमन आदि सब कुछ पारम्परिक रहा है। खेती-किसानी के सारे संसाधन एवं उपकरण लकड़ियों के होते थे। लकड़ी और मिट्टी से मानवीय जीवन में उपयोग के सारे उपकरण बनाये जाते थे। हँसिया, खुरपी, कुल्हाड़ी, टोंगिया, झारौ, परबाई, करैया, लोइया, निहाई, थैंतौ, कुसिया, पाँस, साम, हल्ल, बरछी, भाला, कीला, गुलमेखा, बसूली, अरकसिया, फर्रका, चटकना, परात, टियट, आदि वस्तुओं में लोहे का प्रयोग होता था। उस समय मनुष्य की आवश्यकताएँ बिल्कुल सीमित हुआ करती थीं। इसलिए लकड़ी, लोहा और मिट्टी के सामानों के आधार पर जीवनयापन की सारी सुविधायें जुटाली जाती थीं। कामकाज का जातियों के आधार पर श्रम विभाजन समाज में सामंजस्य स्थापित करता था।

ग्रामीण अँचलों मे जीवन की तीन आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान मुख्य थीं। रोटी मानें दाल रोटी, कपड़ा मानें देशी उन्नालत्ता और मकान मानें देशी कच्चा मिट्टी का खपरैल घर, इतनी आवश्यकताओं में ग्रामीण अंचलों के लोगों की जिंदगी सादगीपूर्ण वातावरण में 'ना ऊधौ का लेना और ना माधौ का देना' के आधार पर आसानी से सुखपूर्वक गुजर जाती थी। स्थानीय लोगों के आपसी सहयोग से सारे कामकाज सम्पन्न हो जाते थे। मौद्रिक लेनदेन की अपेक्षा वस्तु विनिमय की परम्परा सब जन हिताय एवं सब जन सुखाय थी। शादी-विवाह जैसे बड़े-बड़े कामकाज तन-मन-धन सहित आपसी जन सहयोग से सम्पन्न होते थे। उस समय सभी गाँव आज की सहकारी संस्थाओं से लाख गुना अच्छे थे।

मनुष्य जन्म से ही अनुकरणवादी रहा है। आज से दो-ढाई दसक पूर्व से पारम्परिक खेती के संसाधनों का ही अन्त नहीं हुआ, बल्कि हजारों कलाओं और लाखों बुन्देली के शब्दों का हमेशा के लिए उन्मूलन हो रहा है। खेत-खलिहानों में हल, बक्सर, रहँट, तरसा, ढेंकुली, दाँय, कोपर, पचा, जुँआ, आदि उपकरण कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं। यह अन्दाज सहज ही लगाया जा सकता है कि जितने उपकरण खत्म हो गये हैं उनके सहायक पुर्जे कितने रहे होंगे? जितने पुर्जे इन उपकरणों के होते हैं उनसे ज्यादा शब्द बुन्देली शब्द भण्डार से हमेशा के लिए विलुप्त हो चुके हैं। इसलिए आज जरूरत है ग्रामीण क्षेत्रों में अन्तिम सांसें गिन रहे वृद्धजनों से सुन-सुनकर, पूँछ-पूँछकर इन विलुप्त होते शब्दों को संकलित कर बुन्देली शब्दभण्डार में सम्मिलित करने की। इस सम्बन्ध में मेरे एक छोटे से प्रयाशानुसार कुछ शब्दों की जानकारी प्रस्तुत आलेख के माध्यम से अन्य सुधीजनों को इंगित करने के लिए काफी होगी।

पारम्परिक खेती का प्रमुख तथा मुख्य उपकरण हर या हल है। यह लकड़ी का बढ़ई द्वारा बनाया जाता है। हल के प्रमुख अंग हरीश, अकुरिया, परेथौ, मुठिया आदि मुख्य होते हैं। हल को खींचने के लिए उसे जुआँ से बाँधा जाता है। हल के अन्य उपकरण हरेनी, गड़खील, गैंगरौ, काँटे, हरकटे, कुसिया आदि मुख्य हैं। किसान इसी से अपने खेतों में जुताई-बुवाई का काम करता आ रहा है।

खेती का हदूसरा उपकरण बखर या बक्खर है जिससे खेत की बखराई या बखरनी की जाती है। बक्खर लोड़, डड़िया, हरैनी, दतुआ, पछखील, मुठिया, निचखुट, पिछखुट, पाँस, कुरौरी आदि पुर्जों से बनता है। खेत में कांस और गुँदला खत्म करने के लिए बखर से बखरनी करना पड़ती है।

खेती बाड़ी की सिंचाई के लिये किसान तरसा, दौरिया, ढुकरू एवं रहँट या राँट का प्रयोग प्राचीनकाल से करता आ रहा है। सर्वाधिक पुर्जे रहँट में होते हैं। आज रहँट कहीं भी दिखाई नहीं देते। रहँट में भौंरी, भौंरा, सिंगारे, बदरौट, गदैलौ, अहूँटन, बैंड़ा, नांन, माझी, जेर, चौइया, बखिया, ग्याँगरौ, गुनौ, माल, किलवारी, अरा, पई, भैंसा, मलमलौआ, कोंठा, गुर्रा, नँदन, साम, सामा, पनरा, पनरिया, तरौधा, घरियाँ, बकोंड़ा, जूना, पचरिया, ओंगन, थमला, नीछर, बिरौल आदि इसके सहायक अंग होते हैं। रहँट के साथ ही उसके आंगिक शब्द आज लोक प्रचलन से विलुप्त हो गये हैं। रहँट की भाँति रबैया या गुड़ैया भी सिंचाई का एक साधन था, जो केवल उथले-कुओं अथवा कुइयों में चलता था। कहीं-कहीं ऊँचाई पर स्थित पटियों तक पानी पहुँचाने के लिये गुड़ैया का प्रयोग करना पड़ता था।

किसान आवागमन तथा ढोबा-कड़ोरी के लिए मुख्यतः बैलगाड़ी का उपयोग करता रहा। बैलगाड़ी तीन प्रकार की - गड़वा, धंचरा गाड़ी और तँगड़िया बनाई जाती थी। गाड़ी में धुरा, भौंरी, परगज, चका या पहियां, पुठी, गर्रा, आड़िया, पटिया, बांगर, ज्वाँरी, उटेना, नक्की, उलरुआ, सामा, हल्ल, पट्टे, सैला, पचाई, जोत, पटरी, चखील, दाव या दबना, जाखरी या पाखरी, किरौ, उटना, आदि पुर्जे होते हैं।

जिस स्थान पर खेत से काटकर गहाई के लिए फसल रखी जाती है उस जगह को खरयान, खरयाना या खलिहान कहा जाता है। खेत से लाँक की पुरीं या करपा बनाकर पहले खलियान में सैका लगाया जाता है। खरयान के बीच में लकड़ी की मैड़ी गाड़ी जातीहै। उसके चारों ओर लाँक की पुरी खोलकर खड़ी कर दी जाती है। मेड़ी में गड़ाउन लगाकर बैलों के गले में बांधकर घुमाया जाता है जिसे लाँक टोरना और दाँय करना कहा जाता है। लाँक टूटकर बारीक भुसभुसी हो जाती है। फिर उसका ढेर करते हैं, जिसे सेड़ लगाना कहते हैं, तिवारौ लगाकर टुकनियां या उसेंड़ों में भरकर उड़ावनीं करते हैं। भुसा अलग उड़ जाता है, अनाज अलग

हो जाता है। फसल की कुछ गाँठें गेहूँ के साथ रह जाती हैं जिसे डठरुवाई कहते हैं। बारीक भुसा लरोंसी तथा उससे मोटे ढेर को भुसा कहते हैं। फिर नाज की छरवाई होती है, इसके बाद साफ अनाज का ढेर लगाते हैं, जिसे रास कहते हैं, भुसा का ढेर भुसौर कहलाता है।

बुन्देलखण्ड में ग्रामों के अधिकांश लोगों के घर कच्ची दीवारों के होते हैं। गीली माटी के गोंदा बनाकर उनसे दीवार बनाई जाती है, जिसे चोय धरना कहते हैं। दीवारों के ऊपर बीचो-बीच लम्बा लकड़ी का लठा, उसके आड़े मध्य में साधने के लिए म्यारी रखी जाती है। म्यारियाँ आवश्यकतानुसार घर की लम्बाई एवं लठा की मजबूती के अनुरूप दो या दो से अधिक लगाई जाती है। घर कम लम्बा है तो एक ही म्यारी में काम चल जाता है। बीचों बीच अतराई इसके बाद ऊपर से नीचे को ढलान बनाने के लिये कुरवा या कुरैयाँ लगाई जाती हैं। दीवार के बाहर कुरैयों को साधने के लिए लकड़ी के मरुआ तथा खपरछैंका बकौंड़े तथा कांस की जोरियों से बांधे जाते हैं। कुरैयों के ऊपर पतरी-लम्बी सिजवा, धबा, करधई, कैमा, धबई; आदि की खाडू चपटी बिछाकर मावली के बकोड़ों से बांधी जाती है। इसके बाद मिट्टी के खपरा और घरियों के घर की दोनों पलानी छाई जाती है। खपरा और घरियाँ या उल्टे खपरों के बीच गई होती है, जिससे पानी बहकर नीचे उरौतिया से गिरता है। इस प्रकार बनता है किसान के गाँव का मकान। घर को अच्छा बनाने के लिए छपाई, लिपाई और पुताई की जाती है।

जरूरत के अनुसार घर से लगकर दुगई, उसारी, मोटी लकड़ी के थमला-थुनियाँ लगाकर या पीलपारे बनाकर माल, अतराई, कुरैयाँ बाँधकर उस पर खाडूखपरा छाकर बना लिये जाते हैं। आँगन को बखरी बनाने के लिए चारों ओर एक दो घर बनाकर बांकी जगह इकवाई-परदिया उठाकर उसकी दोई पलानी पर दो-दो, चार-चार खपरा छा दिये जाते हैं। द्वारों में चौखट लगाकर किवारे-किबरियाँ आदि सुरक्षा के लिए लगा दिये जाते हैं।

मालपानी धनधान्य रखने के लिए मिट्टी के बण्डा, कुठियाँ, मड़ुलियाँ, डारियाँ, खौंड़ा, पिटरे आदि बनाये जाते हैं। सभी के मुहाँने सकरे बनाकर उन्हें ढकने के लिए गीली मिट्टी के चीपनुमा ढकनों से मुहानों को ढक दिया जाता है।

किसानों की खेती-बाड़ी सम्बन्धी कार्यों में सहायता के लिए गाँवों में परजाप्रथा का प्रचलन है। परजा कहलाने वाले लोग किसान के कामकाज में सहायक होते हैं। लकड़ी सम्बन्धी कार्य, बढ़ई, लोहा सम्बन्धी कार्य लुहार, मिट्टी के बर्तनों का कार्य कुम्हार कपड़े धोने का काम धोबी, बुलाउआ, टिरउआ तथा हजामत का कार्य खवास, पूजापाठ का कार्य पंडित, पानी भराई का कार्य ढीमर, बांस के बर्तनों का कार्य बंसकार, जूता-चप्पलों का कार्य चौधरी करते रहे हैं। ये सभी परजापौन या कमीन कहलाते हैं। कृषि उपज से उनको अनाज दिया जाता है। अनाज की मात्रा बिजवार अथवा जोत के हिसाब से दी जाती है। इसे कमनौत कहा जाता है। इसके अतिरिक्त तीजत्यौहारों तथा शादीविवाह के अवसरों पर कमनौत के लोगों को सपरिवार निमंत्रित कर भोजन कराया जाता है तथा नेगचार में नामना देने का प्रचलन है। नामना में रुपैया, पइसा तथा वस्त्राभूषण दिये जाते हैं लेकिन सहकारिता की यह व्यवहारिकता अब पूर्णतः खत्म हो रही है।

बुन्देलखण्ड का किसान साजसज्जा का बड़ी ध्यान रखता है, वह अपने बैलों को विशेष अवसरों पर खासतौर से सुसज्जित करता है, जैसे विवाह-बरातों, मेलों-ठेलों, तथा न्योते हकाई में सपरिवार जाने के पूर्व तँगड़िया या छोटी बैलगाड़ी को अच्छी तरह से सजाया जाता है। पटियों के ऊपर प्याँर बिछाकर उसके ऊपर पाखरी बांधी जाती है। गर्मियों में गाड़ी के ऊपर घरौंदा के आकार में बांस की फंसटिया लगाकर उसके ऊपर कसकर तिरपाल बांधी जाती है।

किसान अपने बैलों को नहला, धुलाकर उन्हें नाथ, चौरासी, घुंघरू, गलगलियाँ, घंटा, घंटियाँ, मौरी, मोरपंखों के गजरा पहनाता है। रंगीन कपड़े का पलैंचा काँदौल से लेकर पिछले पाँव के ऊपर तक लटकाकर बांध देता है। बैलों के सींग सजाने की परम्परा भी रही है। इस प्रकार किसान अपने बैलों को विशेष अवसरों पर नाँदिया की तरह सजाता है। बैलों के चारों पैरों के खुरों में नाल ठुकवाये जाते हैं जिससे बैल फिसलते नहीं है और खुर हमेशा सुरक्षित रहते हैं।

बुन्देलखण्ड का किसान तीजत्यौहारों, सामाजिक तथा धार्मिक पर्वों को बड़ी शालीनता और तन्मयता पूर्वक पूरी आस्था से सपरिवार मनाता है। उसका पूरा जीवन परिश्रमी, निष्कपट, ईमानदार, भाग्यवादी तथा परमसुखी और पूर्णतः आत्मनिर्भर रहता है। बुन्देली किसान के प्राचीन संसाधन अथवा उपकरण अब धीरे-धीरे विलुप्त होने लगे हैं।

- ३३/५५८, रेडियो कॉलोनी के सामने, छतरपुर (म.प्र.)

बसंती गीत

- सियाराम अहिरवार

पाहुन आए बसंती मोरें, केशरिया रंग घोरें।
गलियन में फुलवार लटक रई, महक गईं हैं खोरें।
पाहुन...
कदली और कमल दल आए, कालिंदी के दोरें।
अमुआं बौर लटक रये नीके, हाथ खड़े दोऊ जोरें।
पाहुन...
भौंरा गुनगुन राग सुना रओ, कलियन डारै डोरें।
कोयल राग बसंती गा रई, दयें काजर दोऊ कोरें।
पाहुन...
पट पुष्पित सरसों के फूले, फगुआ रंग में बोरें।
अमलताश की ओढ़ चुनरिया, आन खड़े हैं दोरें।
पाहुन आए बसंती मोरें, केशरिया रंग घोरें।

- ढोंगा, टीकमगढ़

भीकमपुर के भिखारी

- आदित्य कुमार तिवारी, 'टिन्कू'

भौत दिना पैलऊँ की बात है। भीकमपुर गाँव में दो भिकारी हते। उन दोई जनों में एक हतो पाँउन सें पाँगरौ अर एक हतो आँखन सें आँदरौ। सो का भव कै एक दिना दोई जनें अपनी-अपनी गैल धरैं भीक माँगत फिर रये ते। सो येई बीचाँ गैल में एक जांगां उन दोई जनों की आमनौ-सामनौ परगव। सो जैंसई बे एक-दूसरे के लिंगां आये सो बैंसई बे एक-दूसरे सें भिड़ गये। सो भिड़तनई उननें एक-दूसरे खाँ पकर लव। अर है सो फिर दोई जनें उतईं कछू कहा-सुनी सी करन लगे। सो कहा-सुनी करत भये पैल आँदरे भिकारी नें पाँगरे भिकारी सें कई कै भैया मैं तौ आँखन सें आँदरौ आहौं सो मोये कौन कछू दिखात अहै। पै का करौं भैया अपने पेट के लानें कछू चून-खिचरी मांगबे तौ परबस होकें मोये चलनेईं-फिरनें आऊत। सो का होत है कै चलत-फिरत में काऊ सें नें काऊ सें मैं भिड़ई जात हौं। सो ऐंसई मैं अपुन सें भिड़ गव। सो भैयन ई बात की अपुन अब कछु बुरव नें मानियौ। अर है सो कृपा करकें भैंयन तनक मोय गैल बता दईयौ सो मैं अपनी गैल धर लऔं। सो पाँगरे नें आँदरे की बात सुनकें ऊसें कई कै भैया तनक ठैर तौ जा अर तैं कछू मोरी तौ सुन। सो ऊ जाँ कौ ताँ रै गव उर ऊनें पाँगरे सें कई कै ठीक है भैया जैंसी तोरी मर्जी सो अब बता तैं मोये काय सुनान चाउत।

सो पाँगरे ने फिर ऊसें कई कै भैया अब काहे कै तैं तौ आँखन सें आँदरौ अहै, सो तोये कौन कछू दिखात अहै ईसें तैं मोसैं भिड़ गव। सो भैया ईमें अब तोरी का खोरी। ईमें गलती तौ मोरिअई आहे काये कै ठेरौ पाँऊन सें पाँगरौ सो मैं ठीक सें चलई-फिरनईं पाऊत। अर चलत-फिरत हौं सो का होत है कै चलबे-फिरबे में मोये इतनौं लूमनें परत है कै दूसरे गैलारे खौं मोरौ धक्का लगई जात है। पै का करौं भैंयन अपने पेट के लानें कछू चून-खिचरी मांगबे तौ परबस होकें मोये चलनेई फिरनें आऊत। सो चलत-फिरत में काऊ सें मैं भिड़ई जात हौं। सो ऐंसई मैं अपुन सें भिड़ गव। सो भैयन ई बात कौ अपुन सोऊ अब कछू बुरव नें मानियौ। अर फिर का है कै अपन-तपन तौ एकई काम बारे आयें। सो जौ तौ अच्छो भव के येई बहाने अपन इतै मिल तौ गये। सो जब अपन मिलई गये हैं इतै, सो कृपा करकें भैंयन अब जा उर बता दे कै अपुनौं नाव काय है। सो आँदरे ने ऊये अपनौं नाव बताउत भये ऊसें कई कै भैया 'नैनसुख' आ नाव ई आँदरे कौ। सो पाँगरे नें आँदरे कौ नाव सुनकें उसें कई -

अरे! तैं आँखन सें आँदरौ अर नैनसुख नाव,
हरेराम! हरेराम! गुन अब रामजी के गाव।
रामजी नें तोये इतै भौतऊ नौंनौं पठाव,
मो पाँगरे की पगनन कौ तैं पगधर कहाव।
सो प्यारे भैंयन तोये मैं सँगी बनाऊन चाव,
ऐसें अपन-तपन मिलकैं दोऊ एकई संगै राव।
जा कैंसी कई हमने सो मोये तुम बताव,
मोपै बनीं नें होये तौ मनकी तुम काव।

सो आँदरे नें पाँगरे की बात सुनकें ऊसें कई कै भैया तैनें अबे मोसें जौन बात कई है सो बा तौ भौतऊ नौंनीं कई। येई के सगै कृपा करकें अब तैं मोये अपुनौं नाव सोऊ बता दै। सो पाँगरे नें ऊये अपनौं नाव बताऊत भये ऊसें कई कै भैया 'चरनसुख' आ नाव ई पाँगरे कौ। सो आँदरे नें पाँगरे कौ नाव सुनकें ऊसें कई-

अरे! तैं पाँऊन सें पाँगरौ अर चरनसुख नाव,
हरेराम! हरेराम! गुन अब रामजी के गाव।
रामजी नें तोये इतै भौतऊ नौंनौं पठाव,
मो आँदरे की आँखन कौ तैं सूरज कहाव।
सो प्यारे भैंयन तोये मैंनें सँगी बनाव,
ऐसें अपन-तपन मिलकैं दोऊ एकई संगै राव।
अपन-तपन दोऊ अब इक-दूजौ बल पाव,
भले मिले इतै अपन हाँत तौ मिलाव।

ऐंसें चरनसुख अर नैनसुख नें एक-दूसरे सें हांत मिलाव। अर दोई जनों नें एक-दूसरे सें दोस्ती कर लई। अर है सो फिर दोई जनें मिलकैं एकई संगै रान लगे। सो उनमें खूबई प्रेम हो गव अर है सो उनन की खूब अच्छी जोड़ी बन गई। सो ऐंसें बे दोई जनें हमेंसूँ सपेत कमीज-परदनियाँ पैरें, कँदन सें झोली लटकायें, हाँतन में तुमरिया-तमूरा लयें, तमूरा बजाऊत अर भजन गाऊत सब जांगां भीक मांगत फिरत राबैं। अर भीक मंगाऊती बेराँ बे कछू ऐंसौ भजन-सौ गाऊत राबैं -

प्रभु! आँदरे अर पाँगरे की जोड़ी पुकारे,
आये चरनसुख-नैनसुख झोली पसारे।
चून-खिचरी मिलै कछू भाग सें हमारे,
गुनगान करें दीन-दुखी दाता तुम्हारे।
तुमईं जनम-दाता अर तुमंई पालनहारे,
तुमई जीवन-दाता अर तुमई रखनवारे।
तुमई मोरे जीवन के हौ इक सहारे,
तुमई मोरी नैया कै इक हौ खेवनहारे।
मोरी पार करौ नैया फँसी मँजधारे,
दया करौ दीनबन्द दीनन के प्यारे।
करियौ सब पै दया प्रभु, दै-दै अपुनौं हेत।
करत-भरत सब जात हैं, अपुन सबै-सब देत।।

ऐंसें दोई जनें हमेसूँ गाऊत-बजाऊत चल-फिरकैं सब जांगां सें भीक माँगकैं ल्याबैं। अर भीक में जो कछू चून-खिचरी उनें मिलै सो ओई में बे अपनौं गुजारौ करत रायें। अर है सो ठलवाई में बे दोई जनें एक-दूसरे सें हँसी-मसकरी अर ठलमसें करत भये खूब मजे सें अपनौं समय बिताऊत रायें।

ऐंसें उनन की एक मजेदार बात जा है कै एक दिना बे

रोटी बनाबे-खाबे की बेराँ भीक माँगकें लौटे। अर आनकें दोई जनें अपनी झुपड़िया में बैठ गये। अर है सो उतई बैठे-बैठे फिर बे कछू बतियाऊन सौ लगे। सो बतियाऊत भये पैल चरनसुख नें नैनसुख सें कई कै ये हो नैनसुख भैंयन। अपन रोजऊँ-रोज खिचरी खा-खा कें अपनौं पेट भरत रात हैं। नें होये तौ आज अपन ऐंसौ करबू कै खिचरी नें बनाकें अच्छी खीर बनैबी-खैबी। सो नैनसुख नें चरनसुख के मौं सें कछू अच्छी चीज बनाबे-खाबे की बात सुनकें भारी अचरज में परत भये दाँतन सें उँगरिया दबालई। अर है सो उँगरिया दबायें-दबायें मनई-मन ऊ कछू समज में नईं आई आ। सो तनक फिरकें कईयौ तुम काय कै रये ते। सो चरनसुख नें नैनसुख सें फिरकें कई कै हव भैया। अबै मैंने खीर बनाबे-खाबे की बात तौ आ करी ती। सो नैनसुख नें भौतऊ अचम्बे में परकें चरनसुख सें कई कै ये जू भैयन! तुम जा तौ बताव कै जा खीर होत कैसी है। सो चरनसुख ने ऊसें कई कै नैनसुख भैयन सुनों। खीर ऐंसी होत है -

दुग्ध चाँउर अर शक्कर सँगै, नाना मधुर मसाले।
गड्डबड्ड कर सब डबला में, आगी पै खूब पकाले।।
बगला जैसो रंग सपेत, अर खुशबू महके खूब प्यारी।
मौंपै धरतन जीभ कात, जा खीर है मीठी भारी।।

सो चरनसुख के मौं सें खीर कौ बखान सुनकें नैनसुख नें इकदम उकतात भये ऊसें कई -

रय कैंसौ बगला अर सपेत रँग, कैंसी महक अर खुशबू आबै।
तनक बता दईयौ कै रूप खीर कौ कैसौ राबै।।

सो तुरतई चरनसुख नें अपने एक हाँत खौं बगला घांई टेढ़ौ करकें नैनसुख सें कई -

पकरौ हाँत टटालौ मोरौ, ऐंसई बगला मानौं।
ऐंसई रूप नैनसुख प्यारे, मीठी खीर कौ जानौं।।

सो नैनसुख नें तुरतईं उकतात भये चरनसुख कौ टेढ़ौ हाँत टटोलो। अर है सो हाँत टटोलत भये ऊनें चरनसुख सें कई-

टेढ़ौ हाँत टटोलो तोरौ, टेढ़ौ रुख अब जानी।
टेढ़ी खीर चरनसुख प्यारे, नैनसुख-जा पहचानी।।
खान-पान मल-त्याग सुरँग, मौं सें जात तरे खौं।
टेढ़ी खीर के खातन भारी, आफत बिदै गरे खौं।
ईसें नौंनीं खिचरी प्यारे, मौंसें सूदी जाय गरे हौं।
कछू देर लौ पेट में राबै, फिर निकरै झट्ट तरे हौं।
चरनसुख भैया मजे सें रानें, अर मजे सें रोजऊँ खिचरी खानें।
जा नैनसुख की सूजबूज मानें, अब टेढ़ीखीर खौं नईं ललचानें।

सो नैनसुख की मजेदार सूजबूझ समेत ऊकी मजामौज भरी बातें सुनकें चरनसुख इकदम जोर सें खूबई ठिलठिला परो। अर है सो चरनसुख की जोरदार ठिलठिली सुनकें खूबई मजे सें ऊ नैनसुख खुदई ठिलठिलान लगो। ऐंसें खूब मजे सें ठिलठिलात भये बे 'भीकमपुर के भिखारी' उठे अर अपने खाबे-पीबे कौ इंतजाम करन लगे। किसा हती सो पूरी भई कव प्यारे जू कैसी कई।

- वार्ड ६, तिवारी मुहल्ला, शाहगढ़
जिला सागर म.प्र.

बुन्देली गजलें

- महेश कटारे 'सुगम'

(१)

कहाँ गये बेर मकोरा कक्का
ढेढस और ककोरा कक्का

दोना पातर कितै हिरा गये
डबुआ और सकोरा कक्का

हंडिया चदुआ चकिया चूले
इनको भऔ डढोरा कक्का

ढोरन खों अब नईं बाँधत हैं
डेंगुर और टकोरा कक्का

सपनें कैसीं बातें हो गईं
बूंट बाल उर होरा कक्का

(२)

मानौं कै नईं मानौं बेटा
आ गयौ बुरऔ जमानौं बेटा

नईं रै गऔ कानून कायदा
हो रऔ सब मनमानौं बेटा

दान दायजौ बीमारी में
बिक गऔ गुरिया गानौं बेटा

जे सब हैं प्रानन के प्यासे
कोट कचरी थानौ बेटा

जस, पइसा कौ लालच ऐसौ
'सुगम' न कोउ अघानौ बेटा

(३)

जा सूखा की साल रामधई
बन गई है जंजाल रामधई
मैंगाई मँगरे पै चढ़कें
ठोकर फिर रई ताल रामधई
बिना दवाई खांस खांस कें
मर गओ रामदयाल रामधई
चारई तरफ धिंगाने हो रये
नोंने नंइयां हाल रामधई
जीवन हो गऔ बोझ 'सुगम' अब
हम तौ हैं हम्माल रामधई

- हॉस्पिटल कैम्पस, कुरवाई, जिला विदिशा (म.प्र.)

बुन्देली चौकड़ियाँ

- डॉ. राज गोस्वामी

नंगे पाँव दौर गइ राधा, सुनी कृष्ण पै बाधा।
सबनें पूँछौ कै काँ जा रइ, बोली वे नइ जाँदा।
जाके हरि के हिय सें लग गइ, चिपकीं घंटा आधा।
'राज' मिलन अब छिन में होतइ, छिन में आतइ बाधा।।

बृज की छोरी खौं नइ छोरें, श्याम पकर झक झोरें।
बातन बातन हँस कें चूमें, वे आँखन की कोरें।।
जानें कैसें खुल गव गजरा, बिखरे फूल बटोरें।
'राज' श्याम खोबा भर लै गए, सूंघत लेत हिलौरें।।

- सिविल लाइन, विदिशा (म.प्र.)

बुंदेली लोकगीतों में स्त्री की वेदना

- सत्या घोष

सभ्यता के विकास की आरंभिक अवस्था से ही स्त्री को पुरुष की तुलना में कमतर, कमजोर और पुरुष पर आश्रित नागरिक के रूप में ही देखा गया है। एंगिल्स ने ऐतिहासिक दृष्टि से इस मानसिकता को परिवार नाम की इकाई के जन्म से जोड़कर इसकी व्याख्या की थी जिसके तहत अर्थोपार्जन का दायित्व पुरुष ने उठाकर स्त्री को प्रजनन और गृहस्थी के कामकाज का भार सौंप दिया। इस प्रकार वह पूरी तरह से पुरुष की आश्रित हो गई।

सामाजिक व्यवस्था में स्त्री का भोग्यास्वरूप ही निर्धारित किया गया जिसमें न उसे बोलने की आजादी है, न मन इच्छा से कुछ करने की आजादी है, सिर्फ सेवा ही उसका धर्म है। पति, परिवार की सेवा, उसकी इच्छावासना की पूर्ति उसका प्रथम और अंतिम धर्म। यही हमारी स्त्रियों के खून में हजारों वर्ष से मिलाया गया जो जिर्राफ की भाँति न सिर्फ औरतों की बल्कि पूरे समाज की गर्दन लंबी कर गया। औरतों ने भी मान लिया कि ऊपर बैठा ईश्वर औरतों की किस्मत ऐसे ही लिखता है। किस्मत अच्छी होती तो औरत का जन्म ही क्यों मिलता।

समाज में स्त्री की इस प्रकार की स्थिति के अनुसार ही साहित्य में स्त्री को स्थान दिया गया है। वेदों में, पुराणों में, पुराने नए लेखन में स्त्री कहीं भी अनुपस्थित नहीं है। कहीं वह दासी के रूप में है तो कहीं उसे देवी के उच्चासन पर बिठा दिया गया तो कहीं वह पितृसत्तात्मक समाज के खोखले नियमों को चुनौती दे रही है, बुंदेली गीतों पर दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि इनमें भी स्त्री की समाज में स्थिति का हर पक्ष दिखाया गया है। यह बुन्देली साहित्य न केवल स्त्री को समाज में हो रहे उसके शोषण से अवगत कराता है, जिसे वह परंपरा के नाम पर लगातार झेलती आ रही है, बल्कि यह साहित्य उस शोषित स्त्री की आवाज भी बन रहा है जो अब तक मूक थी।

आज भी घर में पुत्र का होना 'बाजी जीतना' माना जाता है और पुत्री का जन्म 'बाजी हारना' कहलाता है। निम्नलिखित गीत में पुत्र जन्म की रात्रि 'सोने की रात' होती है और पुत्री जन्म होने पर 'बज्र की रात' जान पड़ती है। कन्या पैदा होने पर जिठानी और सास सीधे मुँह नहीं बोलतीं, पतिदेव भी नाराज होकर पराए घर जा सोए हैं, ससुर खलिहान में जा बसे हैं। भारतीय नारी की कैसी विडम्बना है -

जा दिन पूत तुम जनम लये हैं,
सो भई है सोने की राति। सुनौ जू.....।।
जिठानी मोरी हँस-हँस बोलें
ससुर लुटावत रास। सुनौ जू.....।।
जा दिन बेटी तुम जनम लये हैं
सो भई है बजुर की राति। सुनौ जू.....।।
सास जिठानी मुखहूँ न बोलें,
ससुर बसे खरियान। सुनौ जू.....।।
सैया रिसा कें पर घर सोये...।।

स्त्री मात्र के प्रति दुराग्रह और भेदभाव हमारे धर्म, रीति-रिवाजों, साहित्य, कला तथा परंपराओं में जाने-अनजाने और प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से विद्यमान है। लड़की की जगह लड़के की कामना करना, लड़की के जन्म को अशुभ मानना, बेटी को बोझ और पराया धन समझना, शिक्षा आदि बातें प्रत्येक व्यक्ति को सहज ही संस्कारों में मिल जाती हैं। हमारा सामाजिक जीवन, धार्मिक मान्यताएँ, पाठ्यपुस्तकें, कथा-कहानियाँ और अन्य साहित्य इन मान्यताओं को पुष्ट करते हैं। हम भी अन्याय और शोषण को रीति-रिवाज और परंपरा समझकर जारी रखते हैं।

चंदेल काल में पुत्री का विवाह एक समस्या थी इसी वजह से कन्या पैदा होते ही पलंग के पाये से दबा दी जाती थी। इस समस्या का संकेत तत्कालीन इतिहास और साहित्य में मिलता है तथा कई लोकगीतों में भी स्पष्ट है। निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

जिन घर रै है बेटी री कुंआरी,
उन घर काहे की नींद, सुनो जू।
जिन घर में है सियानी बिटिया,
बाप मताई खाँ सोच, मोरे लाल।
माता कहै कुँअला गिर जैहौं,
बाबुल कहै विष खाँय मोरे लाल।
बीरन कहै जोगी बन जैहै,
भौजी कहै कितै जायँ, मोरे लाल।

इन लोकगीतों में एक और विसंगति को उभारा गया है जो समाज में दिखती है - बेमेल विवाह। विवाह के समय लड़के-लड़की की उम्र को नज़रअंदाज किया जाता है, इसके परिणाम लड़की जीवन भर भोगती रहती है। निम्नलिखित गीत की पंक्तियाँ इसी बेमेल विवाह का संकेत दे रही हैं -

बारा बरस की मोरी लड़लड़ी, असिया बरस के दमाद।
आँगन किचकिच भीतर किचकिच, बुढ़ऊ गिरे मौं बाय।
सात सखी मिल बुढ़ऊ उठाबैं, बुढ़ऊ सेंदुर दवो बगराय।।

इसी प्रकार हमारे समाज में पुरुष वर्ग की अनियंत्रित और गर्हित कामपिपासा से उन्मत्त हो उठी पशुता से बचने के लिए स्त्री अपने प्राणों का बलिदान ही कर देती है, क्योंकि शोषित स्त्री स्वयं ही जिन्दगी भर कलंकित रहकर नहीं जीना चाहती, उसके अंदर यह सोच पितृसत्तात्मक समाज ने ही विकसित की है।

मथुरावली की गीत कथा में आदर्श सतीत्व का उदाहरण मिलता है। मुगल सरदार मथुरावली के सौंदर्य पर इतना आसक्त है कि वह किसी भी मूल्य पर उसे छोड़ना नहीं चाहता। तब मथुरावली सतीत्व रक्षा का उपाय ढूँढ़ निकालती है -

जा रे मुगल के पानी भरि लिआ
प्यासी मरे मथुरावली।

महाराजा वीरसिंह देव ओरछा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- डॉ. के. पी. त्रिपाठी



महाराजा वीरसिंह देव प्रथम का जन्म सन् १५६६ ई. में ओरछा के रानीमहल (वर्तमान रामराजा मंदिर) में हुआ था। उनके पिता महाराजा मधुकर शाह एवं माता महारानी गणेश कुँवर थी। महारानी गणेश कुँवर रामभक्त थीं, जो सन् १५७४ ई. में अयोध्या से राम, लक्ष्मण एवं सीताजी की मूर्तियाँ ओरछा ले आईं थी। यह मूर्तियाँ (विग्रह) वहीं हैं, जिन्हें उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने अयोध्या में रामजन्मभूमि पर मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठित कराया था। ऐतिहासिक तौर पर ओरछा के रामराजा मंदिर में प्रतिष्ठित यह विग्रह सबसे प्राचीन हैं। इनसे प्राचीन विग्रह (प्रतिमायें) भारत के अन्यत्र मंदिरों में प्राप्त नहीं है। ओरछा के रामराजा भगवान महारानी गणेश कुँवर के आराध्य थे, जिन्हें महल के ही एक कक्ष में राम राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। एक राजा के रूप में उन्हें जागरण समय, शयन समय सलामी दी जाती थी। उनके लिये सुरक्षा प्रहरी नियुक्त रखे गये थे। उक्त व्यवस्था वर्तमान में भी यथावत जारी है।

वीरसिंह देव के पिता महाराजा मधुकर शाह निर्भीक योद्धा एवं धर्म ध्येय आस्था के पक्के थे। उनका राज्य पिछोर सीपरी, कछौआ, बड़ौनी, भसनेह से धसान नदी के पूर्व में सम्पूर्ण डंगई क्षेत्र में था। वह रामानंदी तिलक लगाते थे। तिलक लगाये हुये, अकबर के दरबार में जाने पर वह मधुकर शाह से चिढ़ता था। परन्तु मधुकर शाह ने तिलक लगाना न छोड़ा और न सम्राट अकबर की परवाह की। इस कारण मधुकर शाह और अकबर में सदा अनबन रहती थी। अकबर के समकाल भारत में ऐसे दो ही राजा थे जो उसके दबाव में नहीं आये थे। प्रथम थे महाराणा प्रताप सिंह राजस्थान और दूसरे थे महाराजा मधुकर शाह ओरछा। १५९२ ई. में मधुकर शाह मुगल सेना से लड़ते हुये नरबर के जंगल में बीरगति को प्राप्त हो गये थे। सन् १५९२ में मधुकर शाह के निधनोपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र रामशाह ओरछा के राजा बने थे। शेष ७ पुत्रों को जागीरें दी गई थी। जिनमें चौथे पुत्र वीरसिंह देव को बड़ौनी की जागीर दी गई थी। बड़ौनी दतिया के पश्चिम में १० कि.मी. की दूरी पर पहाड़ों एवं जंगलों के मध्य में है।

महाराजा रामशाह भी धार्मिक प्रवृत्ति के सरल शान्त राजा थे। उनमें राजशी वैभव प्रभाव एवं जुझारूपन तथा दृढ़ निश्चय का अभाव था। जिसका लाभ उठाकर बुन्देलखण्ड क्षेत्र ही के वीहट-बावनी कालिंजर, भांड़ेर, काल्पी के सरदार सिर उठाने लगे थे। गढ़ाकोटा में गकतूम जाति प्रभावशाली हो गई थी। शाहाबाद में धँधेरे, करैरा में पवांर, पाथर कछार में रघुवंशी एवं रामपुर में कछवाहें अपने अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने लगे थे। तात्पर्य कि महाराजा रामशाह के समय ओरछा राज्य छोटी-छोटी २२ सत्ताओं में विभक्त हो गया था, जो केन्द्रीय ओरछा राजसत्ता की कमजोरी का ही कारण था।

वीरसिंह देव- जागीरदार बड़ौनी जो दृढ़निश्चयी, पराक्रमी, दबंग, निर्भीक, निडर, जुझारू, प्रभावशाली, तलवार के धनी एवं कुशल व्यूह रचनाकार थे। उन्हें अपने पिता मधुकर शाह द्वारा स्थापित राज्य की एकता का विखंडन चुभन पैदा करने लगा था। इस कारण वह बड़े भाई रामशाह से असन्तुष्ट होकर, भाई प्रतापराव एवं इन्द्रजीत सिंह को साथ मिलाकर बड़ौनी के समीपवर्ती पवां, भांड़ेर, करैरा, बेरछा, ऐरछ एवं जालौन क्षेत्रों के सिर उठाते सामंतों का दमन कर, उन्हें अपने आधीन कर लिया था। उन्होंने केलारस, हथनौरा को अपनी जागीर में मिला लिया था। इसके अतिरिक्त मींणा एवं जाटों का दमन किया था।

वीरसिंह देव द्वारा बड़ौनी जागीर का विस्तार किया जाना, जब मुगल सम्राट अकबर ने सुना, तो उसने आसकरण कछवाहा एवं दौलत खां को उनके दमन हेतु आदेशित किया; साथ ही रामशाह ओरछा को भाई के दमन में शाही सेना की मदद करने का निर्देश दिया था। सम्राट अकबर के निर्देशानुसार रामशाह बुन्देला, आसकरण कछवाहा एवं दौलत खाँ अपनी संयुक्त सेना लेकर बड़ौनी पहुँचे। भांड़ेर से हसन खाँ, ऐरछ से अब्दुल्ला खाँ बेरछा से हरदेव पवांर, पवां से राजाराम पवांर और मीणा, जाट सरदार भी वीरसिंह देव के दमन को बड़ौनी में एकत्र हो गये थे। वीरसिंह देव को जैसे ही अपनी घेराबन्दी का पता चला तो वह इन्दुरखी के कृपाराम गौर के साथ संलग्न जंगल में चले गये थे।

ओरछेश महाराजा रामशाह ने सम्राट अकबर का साथ दिया तो वीरसिंह देव बड़ौनी उनसे नाराज होकर मुगल इलाकों में लूटमार करने लगे थे तथा अकबर के लिये सिर दर्द बन गये थे। इसी समय सन् १६०१ में लम्बी उम्र हो जाने पर भी सलीम, जो सम्राट बनने के लिये बेताब था, न बन पाने के कारण उदंड हो गया था। उसने सम्राट की आज्ञाओं की अवहेलना करना प्रारंभ कर दिया था। सलीम अपने सिंहासनारोहण में सेनापति अबुलफजल को बाधक समझता था। इसलिये वह विद्रोही होकर, इलाहाबाद के किले में जा पहुँचा। वहाँ उसने अपने को भारत का सम्राट घोषित कर लिया था।

सलीम के विद्रोही हो जाने पर, अकबर ने अबुल-फजल को दक्षिण भारत से फौरन आगरा वापिस लौट आने का आदेश दिया। तुजुके जहाँगीरी में उल्लेख है कि सलीम ने विचार किया अबुल फजल आगरा पहुँचकर पिता को मेरे विरुद्ध सलाह एवं सहयोग देगा, तो अच्छा रहेगा कि ऐसा उपाय किया जाय कि शेख आगरा पहुँच ही न सके। इसके लिये सलीम ने बड़ौनी से वीरसिंह देव को इलाहाबाद बुलवाया। वीरसिंह देव अपने साथियों सरदारों से मंत्रणा कर इलाहाबाद जा पहुँचे। वहाँ सलीम ने उनसे कहा कि अबुल फजल तुम्हारे क्षेत्र की सीमा के समीप से गुजरता हुआ आगरा पहुँच रहा है। वह आगरा पहुँच कर मेरे विरुद्ध सम्राट को सलाह देगा। आप मेरे मित्र हैं। ऐसा करो कि शेख मेरे पिता (अकबर) से मिल ही न सके। इस क्रम में तुम

मेरी सहायता कर दो, तो जब मैं दिल्ली का सम्राट बन जाऊँगा तब तुम्हें ओरछा का राजा बना दूँगा।

डॉ. बैनी प्रसाद ने अपने ग्रंथ 'जहाँगीर' पृ. ५० पर उल्लेख किया है कि सलीम की सलाह मानकर वीरसिंह इलाहाबाद से लौटे और ५०० घुड़सवारों के साथ सिंध नदी के वनाच्छादित क्षेत्र से गुजरते आगरा मार्ग पर स्थित आंतरी गांव जा पहुँचे थे। इसकी खबर बर्की चौकी पर आसद खाँ को लग गई थी, जिसने शेख अबुल फज़ल को सावधान भी कर दिया था कि आगे वीरसिंह देव हैं उनसे न लड़ना। परन्तु शेख जो शाही सेना का सेनापति था, बहादुर था लेकिन हठी भी था, जो वीरसिंह देव की परवाह न किये बिना आगे बढ़ता ही रहा। जैसे ही वह नरबर और आंतरी के मध्य की परायछे चौकी पर १२ अगस्त १६०२ शुक्रवार को पहुँचा तो तो बुन्देला घुड़सवारों ने उसे घेर लिया तथा वीरसिंह देव के पास चलने को कहा। इस पर शेख क्रोधित हो उठा और उन्हें अपशब्द कहने लगा। तब घुड़सवारों ने हाथी पर बैठे शेख को साँगे मार कर नीचे गिरा दिया था। उसी समय वीरसिंह देव ने आगे बढ़कर, भूमि पर पड़े शेख से उनके साथ चलने को कहा। शेख पुनः क्रोधित होकर उनसे उलझ पड़ा तो क्रोध में आकर वीरसिंह देव ने तलवार के एक ही वार में उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। कटे हुये सिर को अपने सरदार चम्पतराय बड़गूजर के साथ सलीम के पास इलाहाबाद भेज दिया था। (वीरसिंह चरित्र-चिरंजीलाल माथुर, पृ. २३) इ.एम.एच.४, पृ. १५४०. वीरसिंह देव द्वारा शाही सेना के सेनापति अबुल फजल का वध किया जाना सुनकर सम्राट अकबर दुखी हुआ। उसने त्रिपुर खत्री राजा को, वीरसिंह को पकड़ने का निर्देश दिया। मुगल सेना जैसे ही उन्हें पकड़ने बड़ौनी आई तो वह भांडेर के जंगलों में चले गये थे। ओरछा दरबार रिकार्ड रजिस्टर ८३ में उल्लेख है कि वीरसिंह देव आगे आगे चलते जाते थे और पीछे से चलती आती मुगल सेना को परेशान करने के लिये कुओं के पानी को विषाक्त करते जाते थे। इस कारण शाही सेना उन्हें न घेर सकी न पकड़ सकी।

अकबर ने पुनः सन् १६०४ ई. में त्रिपुर खत्री राजा के साथ मानसिंह, गौहद के जाट, अब्दुल्ला खाँ एवं हसन खाँ को वीर सिंह के पकड़ने को भेजा था। उस समय वीरसिंह देव ऐरछ के किले में थे। जैसे ही शाही सेना ऐरछ पहुँची तो बेतवा के घाट पर वीरसिंह के सरदारों से मुकाबला हो गया था, परन्तु वीरसिंह देव मुगल सेना को चकमा देकर किले के अंदर से रानीघाट से निकल कर बेतवा नदी में पहुँचे और नदी के किनारे किनारे भाग कर दतिया बड़ौनी क्षेत्र में जा पहुँचे थे।

शेख अबुल फजल के कत्ल एवं सलीम के विद्रोही होने के गम में १३ अक्टूबर १६०५ को सम्राट अकबर की मृत्यु हो गई थी।

सलीम जहाँगीर नाम से भारत का सम्राट बन गया था। जिसने अपने मित्र वीरसिंह बड़ौनी को आगरा बुलवाया और उन्हें ओरछा का राजा घोषित करते हुये, अपने मुगल साम्राज्य के भांड़ैर, काल्पी, जालौन एवं धामौनी परगने, जो ओरछा राज्य के संलग्न थे, दे दिये थे। (चिरंजी लाल की पुस्तक 'वीरसिंह चरित्र' पृ. २४) सम्राट जहाँगीर ने जैसे ही वीरसिंह देव को ओरछा का राजा घोषित किया तो महाराजा रामशाह ने विद्रोह कर दिया था। अंततः जहाँगीर ने अब्दुल्ला खां एवं हसन खाँ को ओरछा भेजा जिन्होंने सन् १६०५ ई. में ओरछा राजगद्दी पर वीर सिंह देव को आसीन करा दिया था तथा रामशाह को ३ लाख रुपया वार्षिक आय की 'बार' जागीर दी गई थी।

वीरसिंह देव ३६ वर्ष की आयु में सन् १६०५ में ओरछा के राजा बने थे तथा २२ वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् सन् १६२७ ई. में ६१ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गये थे। उनका स्मारक (मुकरवा) बेतवा नदी के तट पर अपूर्ण सा परन्तु वास्तु स्थापत्य की भव्यता अपने आगोश में समाहित किये बेतवा की दहार में खड़ा हुआ है। २२ वर्ष राज्य शासन संचालन के दौरान उन्होंने स्थापत्य कला-साहित्य, न्याय एवं जनहिताय- प्रजा सुखाय-जनप्रबंधन के ऐसे बेजोड़ कार्य किये कि जिनके कारण उनकी कीर्ति अमर हो गई है। वह इतने प्रभावशाली हो गये थे कि बुन्देलखण्ड जनपद के ही नहीं बल्कि दिल्ली सम्राट के बड़े बड़े सरदार, नवाब, वीर योद्धा जैसे आसकरण कछवाहा, अब्दुल रहीम खानखाना, दौलत खाँ, अब्दुल्ला खां, हसन खां त्रिपुर खत्री, महावत खां, खानजहां, राजा जय सिंह एवं राजसिंह उनके सामने बौने पड़ गये थे। उन्हें कभी किसी की सेना ने घेराबंदी कर सकी न पकड़ सकी थी। उनके समय ओरछा राज्य (बुन्देलखण्ड) की ओर सिर उठा कर देखने का साहस किसी पड़ोसी, गैर क्षेत्रीय राजा नवाब ने नहीं कर पाया था। उन्होंने जो चाहा सो किया। जिधर तलवार घुमाई उसे फतह किया। गढ़मंडला के गौड़वानी राज्य का विस्तार धसान नदी तक हो चुका था। खटोला का सूरजशाह गौंड़ बुन्देलखण्ड क्षेत्र के २६ गौड़वानी सूबाई किलों की देखभाल करता था। महाराजा वीरसिंह ओरछा ने धामौनी के किले का पुनर्निर्माण करा कर, वहाँ अपनी सशक्त सेना रखी और गौड़ों को नर्मदा नदी के पार खदेड़ दिया था। उनके ओरछा राज्यान्तर्गत ८१ परगना १२५००० ग्राम थे, जिनसे वार्षिक राजस्व आय २ करोड़ रुपया थी। वीरसिंह देव के राज्य विस्तार विषयक, ओरछा दरवार रिकार्ड रजिस्टर ३५ में उल्लेख है कि -

'इत जमुना, उत नर्मदा, इत सिंध उत टौंस।
वीर सिंह देव सौं लरन की, किय़ैं हती हौंस।।

महाराजा वीर सिंह देव ने ओरछा राज्य विस्तार के साथ साथ अपार धन भी संग्रहीत किया था। जिसका उपयोग उन्होंने चमत्कारी स्थापत्यों तालाबों, बावड़ियों, मंदिरों, महलों, एवं बागबगीचों के निर्माण में व्यय किया था। बीर सिंह देव ने जितने आश्चर्य जनक एवं बेजोड़ स्थापत्यों का निर्माण कराया था, उतना चंदेलों को छोड़कर किसी राजा ने नहीं कराये थे। उन्होंने लीक से हटकर बुन्देला वास्तु शैली में भूल भुलैयाँ से सुदृढ़ किले, महल, मंदिर एवं सरोवर बनवाये थे, कि 'इंडियन आर्कीटेक्ट ग्रंथ' के रचनाकार पर्सीब्राउन ने उन्हें बुन्देला स्थापत्य शैली का जनक कहा है।'

वीर सिंह देव ही एक ऐसे कुशल पराक्रमी योद्धा थे, जिन्होंने विघटित ओरछा राज्य को संगठित, विस्तारित, एवं शक्तिशाली

बना लिया था। उन्होंने माघ कृष्ण ५ सं. १६७५, सन् १६१८ को अपनी ५२वीं जयन्ती पर ५२ स्थापत्यों की आधारशिला रखी थी। उनके ५२ स्थापत्य निम्न हैं जो विश्व के पर्यटकों को लुभाते हैं -

किले (७) - किला झाँसी, धामौनी, करैरा, दतिया, कुड़रा, गढ़मऊ एवं कुड़ार। कुड़ार में पहले यशोवर्मन चंदेल का बनवाया हुआ पत्थरों का किला था, उसका पुनर्निर्माण करा कर वीरसिंह देव ने भूल-भुलैया सा किला महल बनवाया था, जो अपने स्वरूप का भारत में एक ही है।

महल हवेलीं (१५) - जहाँगीर महल ओरछा, नौ चौका महल ओरछा, नरसिंह (सतखंडा) महल दतिया, चित्रकोट ओरछा, नौबत खाना ओरछा, हम्माम ओरछा, शहर पनाह ओरछा, शिकारगाह ओरछा, कूँचगढ़ी, काशी हवेली, कुंजहवेली मथुरा, गया में धर्मशाला, हवेली शिवराजपुर, सिन्ध नदी के किनारे शिकारगाह, दिनारा की कोठी।

तालाब (४) - वीरसागर दतिया, सतखंडा महल के पास, वीर सागर पृथ्वीपुर के पास वीर सागर ग्राम में, सिंह सागर कुड़ार, देव सागर दिनारा बनवाये थे।

बावड़ी (७) - बड़ौनी की बावड़ी, कटेरा की बावड़ी, दतिया की बावड़ी, उगरा की बावड़ी, सिरौल की बावड़ी, दिल्ली में चौपरा एवं चंदेवा बेर दतिया में बनवाई थी।

घाट (३) - विश्रान्त घाट मथुरा, कालीदह घाट मथुरा, इमला घाट मथुरा में धर्म प्रेमी तीर्थ यात्रियों की सुविधा हेतु बनवाये थे।

बगीचे (४) - फूल बाग ओरछा, बुन्देला बाग वृन्दावन, चतुरायन बगीची वृन्दावन, व्यास बगीची वृन्दावन बनवाये थे।

मंदिर (१२) - केशव देव मंदिर मथुरा, चतुर्भुज मंदिर ओरछा, धूम शिवाला ओरछा, वनखण्डी मंदिर ओरछा, धामेश्वर मंदिर सिंध नदी के तट पर, देवी मंदिर भाड़ैर, विश्वेश्वर मंदिर काशी, भानु मकरंद मंदिर ऐरछ, गणेश मंदिर बैधनाथ, लाड़ली जी का मंदिर बरसाना, देवी मंदिर रामगढ़ (दतिया), बाँके बिहारी जी का मंदिर वीर सागर तालाब के बांध पर वीरसागर ग्राम में बनवाये थे।

वीर सिंह देव के बनवाये यह स्थापत्य उनकी कीर्ति को प्रदर्शित करते हुये आज भी खड़े हैं और पर्यटकों को आकर्षित कर रहे हैं।

वीरसिंह देव श्रेष्ठ दानवीर थे - सन् १६१४ ई. में वीरसिंह देव मथुरा की तीर्थ यात्रा पर गये थे। वहाँ विश्रान्त घाट पर ८१ मन सोने का तुलादान देकर, उक्त सोने को ब्राह्मणों, पंडों पुजारियों में वितरित करा दिया था। उनकी दानवीरता के कारण लिखा गया है-

"बलि बोई कीरत जमीं, करण करी दो पात।
सींची विरसिंह देव ने, जब देखी कुम्हलात।।"

साहित्यकारों एवं कलाकारों के संरक्षक एवं आश्रयदाता - महाराजा वीरसिंह देव श्रेष्ठ साहित्यकारों एवं नृत्यकला प्रवीण नृत्यांगनाओं के आश्रयदाता थे। उनके समय ओरछा में एक कवि मित्र मिश्र थे, जिन्होंने इन्साईक्लोपीडिया जैसा बड़ा ग्रंथ वीर मित्रोदय लिखा था, जिसमें धर्म-कानून न्याय एवं नैतिकता जैसे अनेक विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। कवि केशवदास तो उनके दरबार के दरबारी कवि ही थे, जो हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन युग के अंतिम कवि थे। रस मय नख शिख एवं श्रृगार काव्य के वह अद्वितीय कवि थे। भाषा का चमत्कार दिखाते हुये उन्होंने ऐतिहासिक काव्य ग्रंथों की रचना की थी जिनमें रतन वावनी (१५८०) एवं वीर सिंह चरित्र (१६०७) ऐसे ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ है। वीरसिंह चरित्र ग्रंथ में वीर सागर तालाब की रमणीयता विशालता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य पर २२ पद बिल्कुल सटीक लिखे हुये हैं। जब कि ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ एवं धार्मिक काव्य ग्रंथ इतिहास के आधार ग्रंथ नहीं माने जा सकते क्योंकि ऐसे ग्रंथ व्यक्तिपरक एवं भावना, आस्था परक होते हैं। उन्होंने रसिक प्रिया (१५६१), रामचन्द्रिका (१६०१ ई. में) राय प्रवीण के आग्रह पर कवि प्रिया (१६०१), नख शिख (१६०२), विज्ञान गीता (१६१०) में एवं जहाँगीर जस चंद्रिका की रचना सन् १६१२ ई. में की थी।

राय प्रवीण उनके दरबार की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी थी। मयूर नृत्य में वह विशेष प्रवीण थी। श्रेष्ठ नर्तकी के साथ ही वह कुशल काव्य रचनाकार भी थी।

सर्वश्रेष्ठ न्यायवादी - महाराजा वीरसिंह देव के ११ पुत्र एवं १ पुत्री कुंज कुँवर थी। प्रथम और दूसरे पुत्र जुझार और पहाड़ सिंह ओरछा के राजा बने थे। तीसरे धामौनी के जागीर नरहरिदास थे, चौथे तुलसीदास को गड़का (समथर) की जागीर, पाँचवें बैनीदास को पहारी की जागीर, छटवें हरदौल को बड़ागाँव झाँसी की जागीर, सातवें पुत्र भगवान राव को पलेरा (बाद में दतिया) आठवें चंद्रभान को कूँच (गरौठा), नौवें किसन सिंह को देवराहा, दसवें बाघराज को टहरौली, ग्यारहवें पुत्र माधौसिंह को खरगापुर की जागीरें दी गई थी। पुत्री कुंजा का ब्याह बेरछा (दतिया) में किया था।

इन पुत्रों-पुत्री के अतिरिक्त लोक जनश्रुति में एक बारहवें पुत्र जगतदेव का नाम लोक प्रचलन में सुना जाता है। कहीं कहीं ओरछा राज्य रिकार्डस में पुत्र परमानंद के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। संभवतः परमानंद बुन्देला ही स्थानीय घरू नाम जगतदेव से विख्यात हैं। 'वीरसिंह देव का न्याय' बुन्देलखण्ड जनपद के लोगों में कहानी किस्सों के रूप में सुनने को मिलता रहता है।

उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुये कहा जा सकता है कि वीर सिंह देव महान पराक्रमी एवं वीर योद्धा तो थे ही, साहित्यकारों एवं कलाकारों को संरक्षण, आश्रय एवं सम्मान भी देते थे। दानवीरों में वह श्रेष्ठ दानवीर थे, तो न्याय के क्षेत्र में भी वह एक ही 'न्यायवीर' थे।

वह बेजोड़ 'बुन्देला स्थापत्य शैली' के जनक थे। उनके बनवाये किले, महल एवं मंदिर चाहे वह बुन्देलखंड क्षेत्र में देखा चाहे भारत के अन्य भागों में सभी आश्चर्यजनक हैं। चंदेलों के महलों-मंदिरों का स्थापत्य तो दर्शनीय है ही, चंदेली स्थापत्य वस्तु से हटकर वीरसिंह देव ने अपने स्थापत्य 'बुन्देला वास्तु' में स्थापित किये थे। जिनके कारण ओरछा आज विश्व के पर्यटन स्थल मानचित्र पर स्थापित हुआ है।

- भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़

बुन्देलखण्ड के अप्रतिम प्रेम तपस्वी : ईसुरी

- डॉ. सरोज गुप्ता

प्रेम के सच्चे साधक, सौन्दर्य के कुशल पारखी, बुन्देली माटी के सपूत ईसुरी अपने क्षेत्र के अप्रतिम लोककवि रहे हैं। रूप सौन्दर्य से लेकर ऐन्द्रिक उत्तेजना के दृश्य, वैचारिक सत्यता, जन-जीवन के आदर्श, विश्वास एवं कलाओं का चित्रण ईसुरी ने अपने काव्य में बखूबी किया है। ऐसे दैवीय प्रतिभा सम्पन्न ईसुरी की फागें जिसने भी सुनी, सभी के मन में उनके जीवन को जानने की जिज्ञासा जागृत होती। स्व. श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य जी ने पाठकों की जिज्ञासा का समाधान 'प्रेम तपस्वी' उपन्यास लिखकर पूर्ण किया। लोककवि के जीवन चरित की टूटती, बिखरती इतिहास की कड़ियों को प्राप्त प्रामाणिक तथ्यों से जोड़ा, अपनी कलात्मकता से संजोया तथा इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों पर कल्पना का रंग उड़ेलकर उपन्यास को अत्यन्त सजीव, सरस एवं आकर्षक रूप प्रदान किया। 'दिव्य जी' का जीवन बुन्देलखण्ड में बीता, इसी कर्मस्थली का इतिहास व संस्कृति उनके उपन्यास का आधार बनीं।

उपन्यास में बुन्देलखण्ड के बगौरा, मेंढ़की गाँवों को केन्द्र बनाकर आसपास के जनजीवन की एक ऐसी अनौखी क्रान्ति का उल्लेख किया जो लोक साहित्य एवं लोकचेतना द्वारा मुखरित हुई। उपन्यासकार को शायद लोक साहित्य को बहुआयामी दिशा देने वाले ईसुरी की उपेक्षा की बात गले नहीं उतरी इसीलिए वह लोकदर्शी ईसुरी के जीवन के अनछुए प्रसंगों को टटोलने, उनके अज्ञात जीवन पर शोधपरक अनुशीलन करने तथा ईसुरी का समग्र चित्र प्रस्तुत करने हेतु तत्पर हुए, जिसमें उन्हें आशातीत सफलता मिली।

इस उपन्यास का कथानक जन सामान्य के उथल-पुथल के बीच अनेक घटनाक्रमों को साथ लिये बुन्देलखण्ड अंचल को समग्रता से व्यक्त करता हुआ, कस्बाई समाज के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों, विद्रूपताओं को रेखांकित करता हुआ आगे बढ़ता है। उपन्यास के पात्रों की विशिष्टता एवं विश्वसनीयता लोक जीवन के अंतरंग परिचय से तथा लोकजीवन की गहरी सम्वेदनशीलता और आत्मीयता से उपलब्ध होती है। सभी पात्रों की निजी विशेषतायें हैं। पात्र जैसे हैं उनको उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है, समाज के सभी वर्गों और स्तरों के पात्र हैं, जो हमारे मन पर आस्था की गहरी छाप छोड़ते हैं।

कथानक का प्रारम्भ अत्यन्त रोचक एवं प्रभावी वातावरण की सृष्टि करता है। ईसुरी की माँ रजउ से कहती है "इतनी बड़ी लड़की" नंगी उघारी आ जाती है। तेरे बाप-माँ कैसे हैं जो तुझे कपड़े लत्ते भी नहीं पहनाते। बाहर यों ही भेज देते हैं। जा, भाग जा, कपड़े पहिनकर आना, तब खेलना। नंगी उघारी न घर से बाहर निकला कर, नहीं तो किसी दिन कोई चील-कौआ तुझे उठा ले जावेगा। समझेगा कि तू कोई खाने की चीज है। बेसन की पीड़ सी बनी है।" उक्त कथन द्वारा स्पष्ट है कि रजउ बचपन में अद्वितीय रूपवान थी। बचपन के साथी रजउ व ईसुरी की अन्तरंगता, सहजता व एक दूसरे के प्रति लगाव को देखकर रजउ की माँ अपने पति मनसुखलाल से कहती ये दोनों एक दूसरे को एक घड़ी को नहीं छोड़ते न जाने इनका पूर्व जन्म का संस्कार है क्या? रजउ के पिता कहते 'पूर्वजन्म का संस्कार इस जन्म में तो नहीं चलेगा। ईसुरी दूसरी जाति का, रजऊ दूसरी जाति की। इन दोनों का साथ छुड़ाना पड़ेगा। कुछ और बड़ी हुई नहीं कि लोगों की उंगलियाँ उठने लगेंगी, कानाफूसी होने लगेगी।' रजउ के साथ खेलते-खेलते ईसुरी के मन में प्रीति का स्फुरण जागृत होने लगा। रजउ की सुन्दर देह में अलौकिक छवि के दर्शन कर उसके हृदय में प्रणय के बीच अंकुरित होने लगे, अनहद नाद झंकृत होने लगा। किशोर रजउ का ईसुरी के घर आना-जाना बन्द हो गया। शादी-ब्याह की चर्चाएं प्रारम्भ होने लगीं। ईसुरी न मिल पाने की टीस, कसक छटपटाहट लिए व्यथित होकर कभी दोस्तों के साथ तो कहीं दली के घर जाने लगा। इस उपन्यास में बुन्देलखण्ड अंचल के जन जीवन, परिवेश परम्पराओं, लोक मान्यतायें का सहज रूप 'दिव्य जी' ने प्रस्तुत किया है।

रजउ का सम्बन्ध कानूनगो के लड़के बब्बू से तय हो जाता है। शादी बुन्देली रीति-रिवाज, गाजे-बाजे, हँसी-मजाक, नाचरंग के साथ सम्पन्न होती है। समधी कानूनगो अपनी समधिन रानी बहू के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, घूँघट की ओट में हास-परिहास करते हैं। यहाँ की प्रथा परम्पराओं की रीति-नीतियों का संकेत कर लेखक ने लोकरंग में रंगी जीवन्त व प्राणवान् संस्कृति का वर्णन किया है। पंडित गंगाधर की रसमयी फागें सुनकर सारा जन समूह झूमने लगता है। रंग में भंग होता है ईसुरी की फागों से....। रजउ के नाम से फागें सुनकर कानून गो भड़क जाते हैं। सारा वातावरण विचित्र उदासीनता से ओतप्रोत हो उठता है। शादी की सारी हलचल शान्त हो गयी। कानाफूसी का दौर प्रारम्भ हो गया - "लड़का रजउ का प्रेमी है, यह बात सभी लोगों के सामने उजागर हुई। विदा के समय रजउ का क्रन्दन सारे घर में गूँजने लगा। भोलानाथ जी इशारा करके ईसुरी को घर ले जाकर खूब पीटते हैं। इतना कि वह बीमार पड़ जाता है। ईसुरी का जीवन 'दुख ही जीवन की कथा रही' की तरह बीतता। ईसुरी का विवाह रामनाथ की बेटी लक्ष्मी के साथ हुआ 'जो कुछ साँवली थी और मुँह में चेचक के दाग भी थे। मुखमण्डल में एक ऐसी छवि थी, एक मधुर सी मुस्कान जो देखते ही आँखों को अपनी ओर खींच लेती थी।' रजउ गौने के लिए आती है। अक्ती का त्यौहार सभी मिलकर मनाते। 'ईसुरी' रजउ से मूक दर्शक की तरह मिलता है। उपन्यासकार ने अंचल की संस्कृति, समस्याओं को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भाषा और शैली दोनों पर बुन्देलखण्ड अंचल का प्रभाव है। समय, समाज की ऐसी परिस्थितियाँ दिव्य जी ने निर्मित की कि पाठक यह जानने के लिये उत्सुक हो उठता है, कि अब क्या होगा? रजउ का मौन पाठक के मन में सहानुभूति पैदा करता है।

ईसुरी के आत्मीय मित्र दली के चरित्र पर सभी शक करते हैं। फागें ईसुरी गाता परन्तु नाम दलपति का होता। कानून-गो व पटवारी उस पर मुकदमा चलाते हैं। ईसुरी उसे रुपये देकर मदद

करता। ईसुरी के माँ-बाप ईसुरी को कोसते मारते-पीटते हैं। ईसुरी एक निष्ठ साधक की तरह साधना करता। हर क्षण, हर पल रजउ को याद करता, फागें गाता। ईसुरी की प्रतिभा, विलक्षणता एवं कवित्व को जागृत करने में दली का सहयोग सराहनीय है। वह सच्चे मित्र की भूमिका निभाता है। जेल की सजा सुनायी जाने पर, ईसुरी के फूट-फूटकर रोने पर वह समझाता हुआ कहता है, 'बेटा! रो मत! मुझे सजा ही होगी तू अपनी फागें गाना न छोड़ना और निखार के साथ आगे आना। तेरे में एक होनहार कवि छिपा है एक कलाकार। एक प्रेम तपस्वी। लोग तेरी प्रतिभा का, तेरी प्रज्ञा का, तेरी साधना का लोहा मान लें। प्रेम करना भी अपराध है क्या? प्रेम प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है।' आँसू पोछ। अखाड़े में ताल ठोक कर कूँद। मैं जेल जाऊँ तब यह याद रखना।' उपन्यासकार ने बोलचाल की सहज भाषा के द्वारा सहज अभिव्यक्ति एवं आत्मीयता को बड़ी सरलता से प्रस्तुत किया है। कथन में रोचकता एवं नाटकीयता आ गयी है। पात्रों के चरित्र विश्लेषण में मनोवैज्ञानिकता का पुट दृष्टव्य है। पात्रों के शाश्वत भाव सजीव हो उठे हैं।

ईसुरी का मन विक्षिप्त है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के तूफान उसके मानस को मथते हैं। अपने मन की बात रजउ तक पहुँचाने को बेचैन है। रजउ की विदा के बाद उसका मेंढकी में कोई जीवन न रह गया। वह आवारा जैसा सारे गाँव में चक्कर काटता। दीवानगी की हद पार करता हुआ, रजउ के एक-एक शब्द को तरसता हुआ, प्रेम, दैहिक प्रेम से परे आत्मिक प्रेम की साधना में रत, सत्यं, शिवं, सुन्दरं की प्रतिष्ठा में लीन, अपनी अनन्त क्षमताओं को लुटाता हुआ, प्रेम की असीम शक्ति को अपने में समेटे इधर-उधर घूमता रहा। किसी ने कहा, खाना खा ले। खा लेता। कोई कहता, फागें सुना, फागें सुनाता। एक दिन फागें सुनते-सुनते एक गाड़ीवान ईसुरी से बोला, चल तुझे बगौरा घुमा लाऊँ। ईसुरी बैठ गया। बगौरा पहुँचकर गोपाल पण्डित से मिला। वह ईसुरी का मजनुई रूप देखकर दंग रह गये। "फटा, कुर्ता, मैली कुचैली धोती, बढ़े हुए रीछों जैसे बाल।" ऐसा रूप देखकर पण्डित ने उसके लिए कपड़े लिए, वेशभूषा अच्छी कर ठाकुर जंगजीत सिंह के यहां ले गये। ठाकुर साहब ने फागें सुनी और कारिन्दा नियुक्त कर लिया। उपन्यास की भाषा अपनी धरती के रूप, रंग, गंध और यहाँ तक कि उसकी ध्वनि से भी मण्डित होकर सामने आयी है। आंचलिक मुहावरे लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग लोकरंगत में प्रस्तुत हैं। परिच्छेद के प्रारम्भ अनूठे सूक्ति कथनों का प्रयोग कर लेखक की वचन विदग्धता, उक्ति वैचित्र्य का परिचय स्वतः ही मिलता है। मानव जीवन के अनुभवों का निचोड़ दिव्य जी के साहित्य की विशेषता है।

समय का चक्र तीव्र गति से चलता है। कानून गो साहब, ठाकुर जंगजीत सिंह, ठाकुर पहाड़ सिंह, गोपाल पण्डित सभी राजनीति के दावपेंच में माहिर हैं। एक दूसरे को नीचा दिखाने के षड़यंत्र में व्यस्त हैं। रियासतों की स्थानीय राजनीति को पुट देने में सिद्धहस्त दिव्यजी ने कूटनीति की चालों चापलूसी, आर्थिक लाभ के लिए फेंके गये पासों, पुलिस प्रशासन के अत्याचार, जेल भेजने के कुचक्रों को बड़ी साफगोई से पाठकों के समक्ष रखा है। आंचलिकता के गहरे रंग से सराबोर यह उपन्यास कई प्रश्न चिन्ह उपस्थित करता है। गाँव की हलचल के साथ मस्तराम ठाकुर जंगजीतसिंह को खबर देता है कि सारे जानवर बड़े गाँव कानीहौद में हैं तथा बगौरा-बड़े गाँव सीमा का तूदा गायब है। ठाकुर साहब क्रोधित होकर अपने कारिन्दे ईसुरी को आदेश देते हैं कि वह कानूनगो को बुलाकर लाये। ईसुरी तर्क-वितर्क करता हुआ कानूनगो के घर पहुँचता है। दैवयोग से रजउ द्वार खोलती। बब्बू आता, दोस्तों को बुलाकर फागें सुनता और ईसुरी को नींम के पेड़ से बाँधकर खूब मारता। रजउ ईसुरी की चीख सुनकर बाहर निकलती और चिल्ला-चिल्ला कर सबको धिक्कारती है। पूरे उपन्यास में रजउ तटस्थ दर्शक की तरह मौन रहती है। उसकी अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं। यहाँ रजउ का मौन मुखर होता है। अनुभूति की ऐसी विह्वलता की व्यक्ति स्वयं के प्रति निष्ठावान होकर निज को एक सन्देश की तरह प्रतिष्ठित करता है। प्रिय का मुखर मौन शक्ति देता है। स्नेह का बोध बांटता चलता है। रजउ का आना ईसुरी को सुखद लगा। पीड़ा से कराहते हुए ईसुरी को वैद्य के निरीक्षण में रखा जाता है। आदर्श नायक की ऐसी दुर्दशा कष्ट, वेदना पाठक को झकझोर देती है। ईसुरी के माँ-बाप-पत्नी उसे देखने आते हैं। टूटते-बिखरते परिवार की व्यथा कथा देखते ही बनती है। सहानुभूति व्यक्त करती हुई लक्ष्मी बहुत कुछ कहना चाहती, मगर ऐसी हालत देख मन मसोसकर रह जाती। अब वह पिता के साथ न जाकर ससुराल जाती है। सास-बहू के झगड़े से लक्ष्मी की मौत हो जाती है। उपन्यासकार ने गाँवों के वर्तमान परिवेश, समाज एवं राजनीति के अनेक सामान्य अनुभवों को अनेक सामाजिक सरोकारों को बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत किया है। घटनायें स्वाभाविक रूप से घटकर कथानक को वास्तविक बनाती हैं।

बगौरा षड़यन्त्र का केन्द्र बन जाता है। तत्कालीन शासन व्यवस्था के आभ्यन्तर चित्र दिव्य जी ने उकेरे हैं। रियासती जीवन को 'दिव्य जी' ने बहुत नजदीक से देखा-परखा तथा भोगा था, इसीलिए वह अपने उपन्यासों में अत्यन्त सजीव, सार्थक एवं सटीक चित्र प्रस्तुत कर सके हैं। कानूनगो दोनों ठाकुरों को लड़वाकर अपना उल्लू सीधा करता है, और अपने ही रचे जाल में स्वयं फँस जाता है। वह ठाकुर जंगजीत के कारिन्दे ईसुरी को हटा कर अपने बेटे बब्बू को कारिन्दा नियुक्त कराता। कुछ ही दिनों में बब्बू की कुएं में गिरकर मौत हो जाती। ठाकुर साहब चतुराई के साथ लाश निकलवाकर बड़े गाँव के कुएं में फिकवा देते। सब अपने आप को बचाते। इस कुचक्र में गोपाल पण्डित और ईसुरी को जेल होती है। उपन्यासकार ने घटना की विविधता जीवन की व्यापकता, सामाजिक तथ्यों की सजीवता एवं वास्तविकता को यथार्थ रूप देकर बड़े संश्लिष्ट ढंग से प्रस्तुत किया है। वर्णन की शैली इतनी सशक्त है कि बुन्देलखण्ड अंचल की रूपरेखा स्पष्टतः परिलक्षित होने लगती है।

प्रेम मनुष्य का सबसे कोमल व उदात्त भाव है। यह हमें दूसरों को समझने, चिन्ता करने और दूसरों के लिए जीना सिखाता है। दर्ली फकीराना अंदाज में अचानक प्रकट होता है। ईसुरी से

जेल में मिलता। फागों का आनन्द उत्सव जेल में देखता। कैदी, जेलर सब प्रसन्न हैं। जहाँ ईसुरी वहीं फागों की बहारें, वासन्तिक छटा....। दली पण्डित गंगाधर से मिलकर ईसुरी को जेल से बाहर लाने में सफल होता है। राजा साहब उसे सम्मानित करते। पण्डित गंगाधर रजउ और ईसुरी की शादी बड़ी धूमधाम से करते। दिव्य जी पात्रों को कभी-कभी ऐसी परिस्थितियों में उलझा देते तथा तिनके का सा सहारा देकर विषम परिस्थितियों के भँवर में पड़े हुए पात्र का भी उद्धार कर देते हैं। बब्बू की मृत्यु के बाद रजउ के जीवन में अंधकार ही अंधकार था मगर दली एवं पण्डित गंगाधर के प्रयास से विधवा विवाह के समर्थन द्वारा समाज की रूढ़िवादी परम्परा में प्रगति का नया उन्मेष हुआ। उपन्यास सुखान्त है, पाठक ईसुरी व रजउ के मिलन से हर्ष विभोर हो उठते हैं। 'मार्ग में जो सुख है, मंजिल में कहाँ?' ईसुरी को मंजिल मिल ही जाती है। सच्चे प्रेमी दिन-रात, उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रिय का ही सानिध्य चाहते। सामाजिक निषेध के फलस्वरूप वह अपनी तीव्र भावाभिव्यंजना द्वारा प्रेम की पराकाष्ठा को प्राप्त कर मंजिल पर पहुँच ही जाते। प्रेमतपस्वी की साधना सार्थक होती है। जहाँ पहुँचकर उन्हें अपनी प्रियतमा में राधा-मोहन की छवि ही दिखायी देती है।

'ईसुर गिरधर रयँ राधा में, राधा रयँ गिरधर में।'

पुस्तक : प्रेम तपस्वी (उपन्यास)- अम्बिका प्रसाद 'दिव्य'

- सहायक प्राध्यापक, शास.स्व. स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता - महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

रूप गर्विता नायिका

- प्रस्तुति : भगवानदास सभापति

दोहा - चन्द्र और चन्द्राहिनी की समता जिये जान।
वरनौ लघु बुद्धि से सुनहू धीर धर ध्यान।।

सैर - उत पूर्ण कलाधारी, शशी उदय वैम्य पर।
सम्पूर्ण कलाधारी, शशी मुखी एक इधर।।
था चन्द्रग्रहण वा दिन पजन प्रमा भर।
दुवदा दो चन्द्र राहू दो चन्द्र देख कर।।
होकर दुचित्त भत्य भाव को गओ विशर।
ऐ चन्द्र आज दो क्यों सोचत सिहर सिहर।
एक है गगन बिहारी दूजा धरनि विहर।

छंद- सोचत विचारत मन ही मन है वास्तव चन्दा किधर।
मैं क्या करूँ कैसा करूँ, जाऊँ उधर या कि इधर।
मन कौ बुझै बिन नेकहू उर चैन नाहीं पर सके।
राहू विसूर मनही मन निसचय नहीं मन में जके।।

सैर - उत नील गगन अचल इत नील पटम्ब बर।
तारन समूह उतहै, हीरन हैं कई इधर।
हो बुविध्य मान समता, रमता सनेह शर।
झलकत है माधरी इत उत सुधा रेश झर।
है अटल शुभ विधु की यह सम्पदा समर।
कहै वै अनन्त विध की यह रचना अजर।।

- सरानी दरबाजे के बाहर, छतरपुर

काव्यमय पुस्तक समीक्षा -

सोरठा छंद

- कुँ. शिवभूषण सिंह गौतम

मुंशी देवी प्रसाद, भारतेन्दु युग के सुकवि।
किये कवित अनुवाद, कवि प्रीतम उपनाम से।।१।।
जनम कानपुर जान, आनि बिजावर में बसे।।
विविध विषय अनुमान, गद्य पद्य बीसक लिखे।।२।।
मन सुबिचार बिचार, कवि कृतियन उद्धारवे।
पुरखन सुजस प्रचार, यहि प्रकार ते करैगे।।३।।
साल सवा सौ बाद, करी प्रकासित पुस्तकें।
श्री राजेन्द्र प्रसाद, कवि कुल कुशल प्रपौत्र भे।।४।।
छंद सुललित बखान, श्री उद्धव बृज आगमन।
फाग बुन्देली जान, बहु श्रुत बहु प्रचलित कथा।।५।।
सोलह बारह मान, कुल अट्ठाइसकला की।
चौकड़िया पहिचान, सौ ऊपर इकइस लिखे।।६।।
तिनकह देखे छान, शिथिल छंद इकतिस मिले।
संपादन कम जान, नहि यहिमह कवि की कमी।।७।।
प्रथम एक दो तीन, रचना छंद बिचारिये।
बृजागमन लिखि दीन, प्रथम छंद अंतिम चरण।।८।।
एक कला कम कीन, बाधा प्रवल प्रवाह में।
ताते छंद मलीन, इहौ लिखिय बृज-आगमन।।९।।
फाग दूसरी लीन, प्रथम चरण ही टेक में।
दोष असंगत कीन, भ्रमवश शुक ते शुक्र भे।।१०।।
कथा भागवत ज्ञान, व्यास परासर शुक कहे।
शुक्राचार्य महान, देव विरोधी दैत्य गरु।।११।।
ते हरि कथा बखानि, दोष असंगति जानिये।
शुक आचार्य बखानि, लिखे दोष दूषण मिटै।।१२।।
तीसर फाग बिचार, यहिमह दुइ मात्रा अधिक।
पर-कहँ देहु निकार, सुधर जाय दूसर चरण।।१३।।
यहि विधि छंद बिचार, आगे के कर लीजिये।
ते तस करिय सुधार, अब अगले संस्करण में।।१४।।
बृथा बढ़ै बिस्तार, ताते संक्षेपहि कहे।
संपादन को भार, सुधी जनन को सौंपिये।।१५।।
छंद शास्त्र को ज्ञान, अरु भाषा मर्मज्ञ हो।
कर तिनकी पहिचान, पुस्तक उन कर दीजिये।।१६।।
गरिमा के अनुरूप, अब आग्र रचना छपैं।
प्रीतम की दबि रूप, परिचय के संग छापिये।।१७।।
नहीं अन्यथा हेतु, सहज भाव पाती लिखी।
कवि प्रीतम कुल केतु, साधुवाद 'भूषण' भनत।।१८।।

कृति : श्री उद्धव बृजागमन, कवि - मुंशी देबी प्रसाद प्रीतम
जन्म : ४ जनवरी १८७३ ई., मृत्यु - २५ अगस्त १९३६ ई.
पृष्ठ : ८+३४, मूल्य - ५० रुपये
प्रकाशक : श्री राजेन्द्र कुमार खरे, बैंगलोर-६६, कर्नाटक

- अन्तर्वेद, कमला कॉलोनी, छतरपुर

वन्दे माधव

- डॉ. श्रीमती प्रमोद पाठक, डॉ. पुष्पा दुबे

बुन्देलखण्ड में भक्त कवियत्रियों की दीर्घ परम्परा रही है इसी परम्परा में भक्त कवियत्री राजामाता श्रीमती प्रेमलता जी के गीत 'वन्दे माधव' नामक पुस्तक में संग्रहीत है, लगभग १८१ गीतों में लोकगीतों की बहुत सी विधाएं पुस्तक में प्रकाशित हैं। श्रीमती प्रेमलता जी का जन्म १८८० में उत्तर प्रदेश के विजयपुर ग्राम नटर्रा (कुलपहाड़ के पास) जिला महोबा के जमींदार परिवार में हुआ। मात्र ७ वर्ष की आयु में आपका विवाह बाँदा जिले की भैंसोंदा रियासत के चौबे महराज छत्रसाल जू देव के साथ १८८७ में सम्भव हुआ किन्तु दुर्भाग्यवश ३६ वर्ष की आयु में पति श्री महाराज छत्रसाल जू देव का निधान हो गया। श्रीमती प्रेमलता जी के कोई संतति भी नहीं थी। अतः अब जीवन पूर्णतः राधा माधव के प्रति समर्पित हो गया। संसारिकता से दूर भक्ति के सागर में मन डूब चुका था। अतः मान प्रवणता गीतों के माध्यम से प्रस्फुटित हो गई। बुन्देलखण्ड में प्रचलित सोहरे, बधाई, वनरा, गारी, गजल, भजन, कार्तिक, होली फाग, सावन आदि गीतों की रचना कवियत्री ने की। विशेषता यह है कि गीत लोकशैली में निबद्ध होते हुए भी साहित्यिक विशेषताएं रखते हैं, जिससे कवियत्री की साहित्यिक व धार्मिक चेतना का प्रमाण मिलता है। स्वभाव से धार्मिक होने के कारण कवियत्री के जीवन का आधार धार्मिक अनुष्ठान रहे हैं लोक विश्वास लोक परम्पराएं उत्सव पर्व के अनुष्ठान आदि का चित्रण कवियत्री ने लोकगीतों में प्रभूत मात्रा में उद्घृत किये गए हैं।

मानव जीवन का महत्वपूर्ण पहलू जन्मोत्सव है जन्मोत्सव पर सोहर गाए जाते हैं, कृष्ण जन्म पर संपूर्ण ब्रजमंडल आनंद उल्लास से परिपूर्ण है।

कहती रोहिणी मैया, सुनो ब्रज वनिता
मोरे आज भए नंदलाल, सुनो ब्रज वनिता हो
तो मंगल गाओ तो सोहर गाओ हो।

यशोदा ने नंदलाल जना है तो रोहिणी मैया आग्रह करती हैं विप्र को शीघ्र बुलाओ शुभ समय में शुभ संस्कारों को सम्पन्न कराना है। इन अवसरों पर जात, कर्म, कुलदेव का पूजन, गोदान, द्वार पर सगुन सतियाँ धराना कपिला गाय के दूध से बालक का स्नान कराकर पीताम्बर से पोंछना गाय के गोबर से महल लिपाना, मोतियों के चौक पुराना, कलश धराना, चंदन पटली पर बैठा कर अर्ध्य दिलाना, छटी पुजाना, ब्रजरानी की आँख अँजवाना कन्हैया को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करना। जन्म संस्कारों के अन्तर्गत आता है कवियित्री के लगभग २१ पदों में जन्म संस्कार से संबंधित सोहरे एवं बधाई गीत है।

कन्हैया के जन्म पर ब्रज में बधाई तो बज रही सम्पूर्ण ब्रज के लोग उत्साहित हैं ब्रज वनिताओं ने भी अनुपम श्रृंगार किया।

आज बधाई श्याम सुन्दर की। घर घर से वनिता बन आई
बेंदी भाल आड़ केसर की।
माँग सिंदूर तरुकला कानन,
नैनन कज्जल छवि बेसर की
अँगिया अंग कसी छवि छाजै
फूल हार माल मातिनकी
निज निज मेल मिली सब गानें।
देय बधाई श्याम सुन्दर की
प्रेमलता मिल नाचत गावत
करत निछावर यशुमत सुत की।। (वन्दे माधव पृ. ११)

पचासी वर्ष की उम्र में यशोदा ने लाल जो जना है ब्रज में आनंद उत्सव व प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं है, नंदयशोदा हीरे मोती व गोदान कर रही हैं यह आनंद ब्रज तक सीमित नहीं है। सुर नर मुनि शिव ब्रह्मादि देवता भी जै-जैकार कह रहे हैं -

सुर-नर मुनि सब जै-जै बोले उर आनंद उपजाए
जै धुन छाय रही ब्रज ऊपर शिव ब्रह्मा मिलि आए।
(वन्दे माधव, पृ. ५)

बधाई केवल कृष्ण जन्म पर ही नहीं गाई जा रही, उधर वृषभानु सुता की छटी पर भी मंगलगीत गाए जा रहे हैं।

आज छटी वृषभानु सुता की, चलो बधाएँ चलिए हो।
००　　००　　००
करत निछावर जो मन भावत, लखि लखि भानु दुलारी हो।
(वन्दे माधव, पृ. ८)

ए जू नंद नंदन ब्रजराज, आज बनरा बन आए जू
ए जू जरकस सोहै पाय, मौर मणि जड़ित सुहाए जू।
००　　००　　००
ए जू कानन कुण्डल देख, भानु कोटिन सरमाए जू।
ए जू विहसन अति छवि देत दसन दामिनिहि लजाए जू।
ए जू गले मुक्तन की माल मनहुँ बकपांत सुहाए जू।।
(वन्दे माधव, पृ. १७)

कृष्ण और राम से संबंधित गारियाँ बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक प्रचलित हैं, बारहमासी, गारियाँ पुस्तक में संग्रहीत है। राम कृष्ण का श्रृंगार, विविध लीलाएं, ऋतु परिवर्तन के साथ मनोदशा का वर्णन, गारियों का वर्ण्य विषय है।

चलो सखी मिल देखन चलिए, सीता के पति आए मोरे लाल।
कीट मुकुट मकराकृत कुंडल, कोटिन भान लजाए मोरे लाल।
मड़वा भास गए रघुनंदन, सब सुख सुकृत मनाए मोरे लाल।
देख छटा रघुनंदन जूरी, आनंद मंगल छाए मोरे लाल।
धन-धन भाग्य सुहाग सिया जू के, जिन ऐसे पति पाए मोरे लाल
प्रेमलता मिथिलापुर युवतिन, काम धाम विसराए मोरे लाल।
(वन्दे माधव, पृ. १६)

इन्हीं गारियों के बीच राधा जी कृष्ण की अधिष्ठात्री नित्य विहारिणी चिर नवीना, नित्य प्रकाशिनी है उनका स्वरूप भी संपूर्ण रासमंडल के साथ वर्णित है। रास लीला में प्रवेश पाना तो देव-दुर्लभ है -

रास हो रचे सदा सेवा कुंज में नंदलाल राधे संग में।
००　　००　　००
कोऊ भेई-भेई करके नाचे, कोऊ अधरामृत को चाखे

गोपियों को दधि बेचने जाना है, लेकिन विवशताएं बहुत हैं, एक तो मटकी भारी है, दूसरे माखन चोर राह रोकता है तीसरे उमर भी कम, वे चोरी से जाती है तो पायल बज उठती है जिससे कृष्ण को संकेत मिल जाते हैं, ऊपर से यमुना हिलोरें ले रही है। कृष्ण के रूप माधुर्य का दर्शन पाने के लिये प्राण भी बेचैन है।

जसुदा के कन्हैया कैसे मिलें,
oo oo
सुन सजनी री बिन देखे कल नहिं परै
बाको प्रीत निबहिया कैसे मिले
oo oo
सुन सजनी री माखन चोरयो, मन चोरयो,
रस रीत जनैया कैसे मिले। (वन्दे माधव, पृ. १०२)

कार्तिक गीत में कवियत्री की उद्‌भावना अत्यंत सुंदर बन पड़ी है, नारी-नारी एक दूसरे के रस रग का अनुभव कर सके, इसके लिए जरूरी है एक दूसरे का रूप धारण करना, राधा कृष्ण, से कहती है एक बार मैं तेरी बाँसुरी बजाना चाहती हूँ ताकि मैं तुम्हारी लीलाओं के आनन्द का अनुभव कर सकूँ।

श्याम तेरी मुरली नेक बजाऊँ।
जोई जोई तान भरी मुरली में
सोई - सोई गाय सुनाओं

एक बार तुम मेरा वेष धारण करो तब मेरी पीड़ा को जानोगे।

तुम्हरे सिर माखन की मटकी
मैं मिल ग्वाल लुटाऊँ
तुम दधि बेचन जाओ वृंदावन
मैं मग रोकन जाऊँ

कोऊ दोउन को सुख झांके, छक रहीं श्यामा के गुण गाके,
कोऊ नूपुर सम्हारे दूजे ढंग में।

कृष्ण की बाँसुरी में जड़ चेतन एकाकार हो जाता है, उस बाँसुरी की तान को कौन नहीं सुनना चाहेगा। एक सखी पूंछती है तुम सत्य बताओ लाल तुम्हारी इतनी कोमल बहियाँ हैं फिर तुमने गोवर्धन कैसे उठाया? वही कृष्ण वेश बदलकर राधिका से मिलने चले आते हैं तब आनंद और रस वर्षा अपार होती है-

रस भीने लाल, रस भीनी लाली रस भीनी लली।
oo oo oo
रस भरे नैन रसई को कजरा, रस की बात रसई को झगड़ा
रस भरे सुमन रसई को गजरा। (वन्दे माधव, पृ. ५०)

इसी प्रकार भजन, दादरे, गजलें सावन फागें आदि कृष्ण राधा की लीलाओं से सराबोर हैं। राधाकृष्ण के रूप माधुर्य को अपने नेत्रों में भला कौन नहीं बसाना चाहेगा?

सखि मैं तो नैनन श्याम बसाऊँ।
ये बहु रमनी रमन बिहारी,
चंचल द्रगन रमाऊँ सखि मैं तो...
श्याम स्वरूप अनूप अमित छवि
पुतरिन बीच छिपाऊँ।।...
दर्शन त्रसित रहत द्रग निसि दिन,
राय सुधा तिन पाऊँ सावी
प्रेमलता नित जुगल विहारी
त्रिरख निरख सुख पाऊँ। सखी...

गजलों में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन तो है ब्रजभाषा एवं उर्दू भाषा का भी प्रभाव है। राधाकृष्ण की होली का रंग और आनंद अद्‌भुत है -

बरसाने आज मची होरी बरसाने...
ग्वाल बाल सब सखा संग लिए
oo oo
अबीर गुलाल भरे झोरी बरसाने.....
भामिनी वेश बनाए सावन को
नचवत है कर बर जोरी बरसाने...

(वन्दे माधव, पृ. ११२)

कुछ फागें परम्परित हैं, बहुधा बुन्देलखण्ड में और कृष्ण लीलाओं के साथ जुड़ी हैं कहीं कहीं सावन की झड़ी में कृष्ण राधिका प्रेम रस में विभोर है। तब युगल मूर्ति का सौंदर्य अपूर्व हो जाता है।

ठाड़े दोई भीजैं हो कदम तरे, राधे और नंदलाल।
कौन बरन प्यारी स्यामा हो।
कौन वरन घनश्याम।
oo oo
उर सोहे वन माल वाम अंग प्यारी सोहे हो
सोहत जोड़ी विशाल
oo oo
सोहे लता द्रग कुंजै हो
संग सोहे ब्रजलाल, प्रेमलता कर जोरे हो
छक छवि होत निहाल (वन्दे माधव, पृ. ११६)

प्रेमलता जी के गीतों की विशेषता यह है कि कहीं इनमें लोक गीतों का सा माधुर्य है तो कहीं मध्ययुगीन कवियों की सी आलंकारिक वृत्ति भी। कृष्ण राधा राम सीता की लीलाओं पर मुनि वृंद देवगण व ब्रह्मा महेश आदि भी न्योछावर है -

ब्रह्मा, विष्णु, महेश निरख मन मोहना निरख मन मोहना हो।
अहो स्तुति करत बने ना भए सब मौना भए लखि मौना हो।

(वन्दे माधव, पृ. २)

कवियत्री लीलाओं का सर्वत्र साक्ष्य भाव से चित्रण करती है जिससे भक्ति की गहनता का अनुमान लगाया जा सकता है। अलंकारों का सहजता से आना कुछ नवीन प्रयोग भाषा में मय्ययुगीन बोध दिखाई देता है। उपमा रूपक अनुप्रास का सहज विन्यास गीतों को और भी सुन्दर बना देता है।

रस झेलत खेलत युवतिन में,
मानो गज मतवारो हे (वन्दे माधव, पृ. ११६)
हिलन मिलन को रंग बनो,
अरु रस की उड़त गुलाल (वन्दे माधव, पृ. १०६)
कीट मुकुट मकराकृत कुंडल, कोटिन भान लजाए मोरे लाल
oo oo
रतनारे नैनन में कजरा चितवन चित्त चुराए मोरे लाल।

(वन्दे माधव, पृ. १८)

अधिकांश लीलाओं के वर्णन में नख-शिख सौंदर्य वर्णन में साम्य होते हुए भी गीतों का माधुर्य लोक शैली की गेयता वर्णन में साहित्यिक सौष्ठव गीत संग्रह को महत्वपूर्ण सिद्ध करता है।

पुस्तक : वन्दे माधव

- नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर (म.प्र.)

नाक लीला

- डॉ. देवदत्त द्विवेदी

चौरासी लाख जी धारियन में मान्सन भर की येसी अनोखी नाक बनी कहाइ जौन तनक में हल्की बड़ी होत रात है, येइ सें सिन्सारी के मुन्सेलू औ बाइ हरें अपनी अपनी नाक बचाबे के चक्कर में सबरी जिन्दगानी काढ़ देत, तोउ मोका बखत परे नाक धोको देइ जात। मान्स की देह बनाबे बारे बिधाता नें तो बड़ी चतुराइ सें नाक हों चैरा के बीचउँ बीच ऐन मों के ऐंगर ऊपर हों चिपकाव है। जी सें साँस लेबे ओ छोड़बे के सगै सगै खात-पियत की चीजें सोउ सुँगात जाबें। सोसी अगर नाक मौ में कँऊँ दूर और जाँगाँ लगी होती तौ कौ जाने मान्स का-का खा पी जाते, काय कै जब खाबे के पैलाँ साजी बुरइ बासइ न मिलती तो सरौ खते सबइ गुटक जाते जा नाकइ की थराइ जानों कै मों को सुबाद नइँ बिगरन पाउत।

हमें लगत नाक बनवाबे बारे हों खुदइ जो अन्दाज नइं हतो कै बे इतनी ऊँची चीज बना रय। काये कै इत्ते बड़े शरीर में नाक मान्सन की चहेती बन जेय। अब देखो एक अकेली नाक पै मान्सन ने कितनी ओर नाकें चिपका दइँ जौन बड़बे-कटबे भर के कामें भर आउतीं, इनमें घर की नाक, बंस की नाक, जात बिरादरी की नाक, गाँव की नाक, जेठन की नाक, देश की नाक और न जाने कित्ती नाकें ई राइ भरी नाक पै थोप दइँ, कै ई ने मान्स की <u>नाक में दम कर दइ।</u> जे बनउवर नाकें येंसीं नाजुक होतीं हैं कै ससरीं बिना हथयार-पड़यार के कट जातीं और कउँ कटबे सें बचइ जाँयें तो नेंचीं तो होइ जाती हैं। मों बुरयँ बोल जाय, हाँत कछू कुकरम कर डारै, कै गोड़े कुगैल चल जाँय, उनको कछू न बिगरै, नैची हुइये तौ नाक, येइसे मान्स नाक नेंची होबे हों भौतइ डरात रात चाय <u>नाकन चना चबावने परें</u> पै नाक सो ऊँची राखहें।

जो पतो आज लो नइँ पर पाव कै मान्सन की जे बन्न-बन्न की नाकें परमेसुर ने ठेंकै बनाईं कै कौनउ करमन सें बनी आँईं है। काउ की बड़ी नाक, काउ की हल्की नाक, काउ की चौरी नाक तौ काउ की चपटी नाक, काउ की लम्मी नाक, काउ की मोटी पकोरी कैसी नाक, काउ-काउ की तो येसी साजी नाक होत है कै बे देखत मैं भौतइ साजे सलौने लगत, अच्छी साजी सुवा की चौच कैसी नाक सें साँसउँ खूपसूरती बढ़ जात है। अपने देश में तो बाइ बिन्नू हरें नाक सजाबे के लाने सौने के पछारू पइँ रातीं कभउँ डेमलकाट पुंगरिया, कभउँ खील, लौंग, नथुनिया, बेसर, झुलनियाँ और न जाने का का गाँने सुनारन ने चला दय कै अब मइँने नइँ नइँ चीजें लेतइ रातीं तोउ-नाक सें फुरसतीं नइं हो पाउतीं।

नाक की चिन्ता में मान्सन कौ चैन सें जीवौ दूभर हो गव, अपनी अपनी <u>नाक राखवे</u> के लाने <u>नाक की सुद में</u> न जाने कित्ते खटकरम करबे हो जुटे हैं। कोउ-कोउ तो <u>खैबे हों खजरीं-ठेलबे पहार</u> घाँईं काढ़-मूँस कै बियाव-बन्ज में चौक-दसटौन में अदाधुन्द खरचा कर डारत। काय कै नाक नेंची होबे के डर सें बिना हिम्मत की हिम्मत करकें ठांडे हो जात हैं। येसे मान्स जब देखो जब साव कक्का के दुवारे ठाड़े मिलें, अब देखो साव जू बापौती की ऐकइ सात पैला की बिजवार बाइ बड़ी पटिया है जो ओइये गाँनें धर लो, पै रुपइया सो पाँचइ हजार चाँने हैं, तुमइँ बताव दद्दा उतइँ चेटका पै तो परे न रेंय, उनकी किरिया केताग तौ करनइँ परै, उनें गंगा जू सोउ लुवा जानें, फिर दिन तेरइँ करने नइँतर जात बिरादरी ओ चार हितुवा नतैतनन हों जा नाक कैसें दिखाइ जेय, बे हमाइ नाक पै न थूकें।

नाक की लीला अपार है, नाक हो नांक के तौ कोउ कौनउँ काम करइ नइं सकत, मान्सन के सबइ काम काज नाक के नाँय माँय चलत फिरत हैं। येसो लगत कै कउँ नाक न होती तो मान्स पूरो सुतन्त हतो, अबे तो ई घिनउं नाक को गुलाम सो है। साँसी पूँछो तो मान्स राज काज के कानून कायदा ओ धरम करम से जादां नाक सें डरात, कैसउ साना होय नाक के साँमूँ सब ढिलया जात। देखबे में भली बैल घाँइँ नाथ, कै ऊट कैसी नकेल, पैरे मान्स नइँ दिखात पै जा पक्की मानो कै मान्स नाकइ के बस में कहाव, नातर और की की मजाल हती कै मान्स हों नबा लेंतो। नाकइ बचाबे हों तौ जियत भर गन्नेटीं खानें परतीं ओर तो सब दन्द फन्द करके निपटा लेत हैं।

अगर की दार जात बिरादरी की बनी बनाइ लीक सें काउ के परबार की गाड़ी को पइया तनक नाँय सें माँय हो गव तो जान लो ऊने बिरादरी की नाक नेंची करा दइ कहाइ और फिर <u>पियत के न खात के - बने फिरें जात के</u> सबइ जने नेंचो दिखाबे हों तुल परें। देखो भइया तुमने पूरी बिरादरी की नाक नेंची करा दइ। जा कैबे बारन हों एक किसा रटी है बिरमा जू की सभा में शंकर जू ने उने उठकें राम राम नइँ करी ती, ओइ सें दक्ष प्रजापति बेजाँ नाराज हो गये हते। कछू दिनन में जब उनने जग्ग करी तो सबइ देवतन हों निवतो दैकें बुलावो, पै ऊ पुरानी खुन्स सें शंकर जू हो नइँ बुलाव तो, तोउ उनकी बड़ी बिटिया सती हों चैन न परी बे बिना बुलायें अपने बाप के घरे जग्ग में पौंच गईं, पै जब उते काउ ने बैठबे की लौ न कई न दक्ष मौं बोले और न कौनउँ बैनन नें कछू कइ-सुनी सो उनहों भौतइ बुरव लगो। तोउ बे जग्ग के मड़वा तरें चली गइँ उतै देखो सो सब देवतन के जग्ग भाग को पनवारो लगो तो अकेले शंकर जू को जग्ग भाग न हतो अब तो बे भोतउ पछतानीं सौसन लगीं करिये तो का करिये। उतै अपने पति की कइ न मानी इते पूरी बिरादरी में हलकुवाट हो गइ। जब सगे बापइ ने नाक नेंची करवा दइ तो ओर काउ सें का कइये सो उनने उतइ ठाँड़ें-ठाँड़ें प्रान छोड़ दय ते।

येइ बात पै रामायन में जा चौपाइ लिखी है

।।यद्यपि जग दारुन दुख नाना - सब ते कठिन जाति अपमाना।।

ई जमाने में तो नाक बचावौ भौतइ कठन हो गव अपुन चाय कैसउ लीक - लियाकत से चलौ, येंन मान मरजादा सें रव, पै कछू जने तोउ नाक काटबे हों पजो पजाव छुरा खलीता में धरें,

दाँत देखत फिरतइ रैंय। उने तनक सो कौनउँ छुद्दा भर मिलो और उनने बाँसे सें पोंछ लइ, को जाने का बात है कै मान्सन हों पराइ ऊँची नाक देखी नइँ जात उनें जी उर पिड़ो रात कै हमाइ नाक से ऊँची काउ और की न हो जाबे, सो पराइ नाक नेंची करबे को मौका ढूँढ़तइ फिरत रात और छींकत की छिनारो लगा कै पराई नाक पकरइ लैहों। फिर तौ कित्तउ बड्डी नाक होय कटतन में तो झेलइ नइँ लगत।

कैउ जनें अपनी नाक पै सोने चाँदी कौ पानी धरवा लेत कै आठ धात सें मड़वा लेत, जी सें उनकी नाक पै कौनउ हँतयार नइँ चलत। जौन काम करबे सें कौनउँ गरीब-गुरवा की नाक कट जेय ओइ काम करबे पै उनकी नाक हों ढका लौ न हुइये, जबइँ तौ नाक की लीला न्यारी है। घिरना, पिरेम, बदनामी, बड़बाइ, मान-अपमान सबइ नाक सें जुरे हैं। येइ सें नाक के मामले में कोउ ढील नइँ देत। काय कै नाक के रूप बरन बरन के रंग बारे सोउ होत कभउँ खतरनाक सें खतरनाक हो जैहे तो कभउँ खीर में सौंज मठा हो नियारे दिखेंहें। कैबे वारे तो भरी अथाइ में मों पै कै डारत ऊ हल्का की तो कब बात की बात पै उतइ टका से प्रान दे दये ते पै नाक नेंची न होन दइ ती और जे बड़ेदा पहार सो शरीर लयें फिर रये तोउ आँन गाँव सें नाक कटा कैं आ गये। जी ने अपनी नाक न बचा पाइ ऊ तो जियत में मरे घाँइँ जानो चाइये।

अब तो जाँ देखौ जाँ हर जाँगा हर काम में नाक घुसी फिर रइ। काउ को काउ सें अच्छो ढ़ारमेर होय तौ कात कै बे तो उनकी नाक के बार हो रये और कोउ काउ को पछारो करे तो कै चलें उननें तो ऊ की नाक पकर लइ साजे में नाक बुरय में नाक, दुख में नाक, सुक में नाक। ई नाक के मारे मान्स को निबाव नइ रै गव, शरीर कौ कौनउँ आँग कट जाबे, हाँत पाँव, डँगरिया कान, ओंठ भली आँख लौ फूट जाबे, तौ कनवाँ, लूला, लँगड़ा, बूँचा कहाय पै नकटा बेशरम कोउ न कैय। पै बारी नाक बिना कटे नकटा नकटी कहाउन लगत।

हमें लगत नाक लीला की चाट बैठी तिरेता जुग में। जब लछमन जू ने रावन की बैन सूपनखा की नाक काट लइ ती। तबइ सें नाक के भाव दूने-चौगने हो गये। अब रामलीला होय चाय रासलीला, नाक लीला हों ऐकउ नइँ पा रइँ, और दिना कोउ रामलीला देखन जाँयें चाय न जाँयें पै जिदना सूपनखा की नाक कटबे की लीला हुइये उदना तो गाँव भरे को ठट्ट अटक के जुरें, बाइ हरन के तो झला के झला अलबद्ध के उदना की लीला में टूट परें, जब लीला बारी सूपनखा रावन हों सुना सुना कैं गा चले -

।।मेरी तो नाक गई सो गई - अब अपनी नाक सँभाँलो तुम।।
।।जग में जब ऊँची नाक नहीं- तो नकटा नाक धरालो तुम।।

तो इत्ती तान तान थप्पी बजहैं कै बैरा लो जग परें।

असल में पराइ नाक कटत देखे में और काटबे में भौतइ मजा मिलत है, लछमन जू ने तो ऊ की बेसरमियाइ पै तनक सी फुनइ काटकै सबक सो दव तो, पै अब तो मान्स बाँसे सें पोंछन लगे। ई कलजुग में तौ नाक काटबे की चलनसी चल परी। बागी भँड़या लौ मान्सन की नाक काटन लगे। कछू जनें तो अपनी जाँग की खाल सें नाक बनवाँयें अबे दिखाउत फिर रय।

पैलउँ घट बड़ काम हो जाबे पै कै अपनी अटका उर्ज निपटाबे के लाने नाक रगड़ने परत ती। कै काउ के सामू घिसने आउत हती और बैर बुराइ मानबे वारे बड़ी सान से कव करत ते कै हमने सौ सौ बेर नाक न रगड़वा लइ तो हम फलाने न कहाँयें। अब तो मान्स हाँत धो कै नाक के पछारू पर गये, कोउ तनक खुन्स में खिसयाकें तान तान कैं बोल गव तो जान लेव सुनइया की नाक कट गइ कहाइ, गम्म खावे वारे से पुरा परोस के तुरतइँ कै चलें काय हो पूँच ड़ार कें काय भग आय कछू अपनी नाक की खबर तो करते, तौ घरइया कैहैं नकटा के संगे को नकटा होबे ऊ तो जानो मानो राँड़ को साँड़ आय उये न अपनी नाक को डर न पराइ नाक की खबर।

हर गाँव में एक न एक येसो जनबा जरूरइ होत जी के ऐंगर नाक को बियोंत लेबे बारे अकल को फीता होत है। कै जो काम करें सें ई की नाक कटी कै नइं कटी ओ कटी तो कित्ती कटी। पाँच पंचायत में ओइ अन्दाज सें बे जान बुजक्कर बता चलें कै देखो भइया नककटो तो भव है पै अबे कछू कसर है, नाक बच सकत, कजात जो पिरवा भुमानी की मड़िया लो कथा सुनकें घर पीछू एक एक जने की कच्ची पक्की पंगत करा देबै तौ नाक कटबे सें चार पंच बचा लेंहें और ई की चिलम पाट की खुलासी हो जैहै। रै गइ रमुवाँ की बिदन्त सो ई के लरका ने तो गाँव भरे की बाँसे सें कटवा दइ, इये कछू दिनन भोगन भींजन देव जब सीक लग जैय और निपटबे कैसो बतकाव करन लगै सो फिर देखी जैय। जौलो जो जिनकौ भरो है बे जौनई की नाक पकरें उनइं की देख लैन दो, ऊ में पुछा पुच्छवल को कौनउँ काम नइयाँ नाक दूर न हँसिया अबइ सबरो निनोरा हो जातो, पै इये लछुवा घाँइँ नाक पै माछी बैठारने सो बैठारें रन दो बा कैसी कन लगत बेसरम की नाक पै रूख जमो - उये छाँयरो भव। जे काम सब के बस के तो होत नइयाँ ऐकादइ घिना जात बिरादरी के मौंचोर होत नकटन के कौन नियारे गाँव आ बसे हैं।

जुगन जुगन सें नाक मान्सन के तन कौ और भीतर बायरे को हाल-चाल बतावे बारी मसीन को काम करत आ रइ है, बे तो नाक फुलेंय बैठे, बे तो नाक सकोरें फिर रये और कोउ कौनउ काम टेनुवां करबे हो ढ़िलया रव होय तो कब जात हैं बे तो नाक गुड़या रय उनकी मन्सा नइँ दिखात।

येसइ सोखी बगारबे बारे हों लम्मी नाक बारो, घमंडी हो ऊँची नाक बारो, अपने काम सें काम राखबे बारे हो नकचड़ा, लालची हो लार टपकाउत फिर रव कैबे में कोउ चूकत नइयाँ। कोउ-कोउ तो कौंड़ो तापत में सुना चले अरे दाउ हमारो समदेला साँसउ बड़ौ दमदार है, परों बुड़की के मेला में जब पैलेपार के कछू धुंगन नें हिड़ोरा लो होड़ा हिचकी मचा दइ सो ऊने येसे झलकारे कै सबरे अपनी सी नाक लैकैं खूँसंइ उल्टे गोडन लौट गये ते। और अगर कभउँ काउ ने मौका बखत पै थोरी भौत मदद कर दइ तो समजो कै बे उनको बड़ो जस मानहैं कै भइया जू अपुन ने मोरी नाक बचा लइ ऊ नकचड़ा ने तो कौनउँ कसर नइँ छोड़ी ती बा तौ अपुन ने हमांइ नाक राख लइ नइँतर मरबो हो गव तो।

का मजाल कै कोउ नाक बारी लछमन ढ़डींच नाँक जाबे, तुम चाय देश परदेश चले जाव, चाय बाबा-बैरागी बन कें पहार पै सब जाव और चाय हाकम हजूर हो जाव, नाक संगै पछयानी रैहै, नाक के डर सें दिन के काम रात कें और रात के काम दिन कें भलाँइँ करन लगो पै नाक को टपका कैसो डर हर घरीं बनोइ रैहै। काय कै बैपारी गाहक की नाक काट रये, नेता जनता की नाक काट रये तो कउँ मन्दरन में पंडा पुजारी भकतन की नाक काट रये, भँड़या बदमास कानून की नाक काटबे लगे। तोउ रोज की रोज नइ नाक जमत आ रइ और नाकलीला में न नाक हारी मान रइ न कटइया, रावन कैसे मूँड़ कटबे जमबे को खेल मचो है।

नाक के राँडू-राग को रावला मान्स हों जियत भर तो पैरत सो पैरत हेइ मरे में लौ पाछो नइँ छोड़त। मान्स भलो सरग राजा हो जाय, चेटका पै बड़ी बड़ी दूबा जम जाय, पै ऊकी नाक इतइँ अमर बनी रैहै, जबइँ तौ अपने जेठन-बड़न की नाक बचाबे के लाने मान्स बिना हियाव को हियाव करकें उल्टे सूदे काम मुड़या लेत। काय कें तनक चूका परो सो गाँव बारे कै उठत अरे अपनी न सइ जेठन की नाक तो बचाउते। सात पैरी की नाक कटा रइ।

परमेसुर ने कछू धरम-करम बारे साजे मान्सन की असल मौका पै नाक का बचा लइ अब तो मन्दरन में नाक बच आबे की बिनती करबे बारन के सिवाय कोउ जातइ नइयाँ। जी की जैसी नाक ऊकी ऊसी बोलना वंदना। कोउ पांच रुपइयाको भोग चढ़ाकें अपनी नाक बचाबे की टेर लगा रये, तो कोउ कथा पुरान बोल कें नाक राखबे की विनती कर रये। अब भगवान बड़े दरोगा की नाँईं चक्कर में फँसे दिखा रये कै भगवान सोचत हुयें का करिये नाक काटबे बारे और बचआबे बारे दोइ जने दच्छना चड़ा रये। आखर की को भोग लगाइये।

जिनकी अपनी नाक नइँ होत बे पराइ नाक लगाकें नक्कूखाँ बने फिरत रात और येसे मान्सन सें बड़ी नाक बारन हों बड़ो डर बनो रात। काय कें कउँ बे ऊँची नैची करतूत कर बैठें तो किबइँयन हों तो जाइ कानें कै किले को पारवा नाक कटी किलेदार की कभउँ कभउँ ई बड़ी नाक वारन की नाक और बड़ी सोउ हो जात। कौनउँ काम करतादार ने अच्छो काम करो सो कान लगत राज को सिपाइ-नाक बड़ी राजा की और सेर पछारे सिपाइ - राजा की धाक सवाइ।

नाक येसी बड़ी कै सबसें बड़ी हो गइ। येइ सें मान्स अपनी नाक पै माछी लो नइँ बैठन देत। पै का करिये नाक सें शरीर के ओर सबरे आँग बुरइ मानें बैठे। नाक सबकौ संग देत अगर दुख में मान्स की आँखें टप्प टप्प अँसुवां बहाबे तो नाक सोउ संगे बहान लगत, और कउँ आँखन हों चसमा की जरूरत पर जाबे तो नाक आँखन को चसमा अपने ऊपर लाद लेत। इत्तो सब करत भय पै सरदी जूड़ा में कउँ नाक ने छीक मार दइ, कै कौनउ अच्छे काम की बेरा सहजू छींक आ गइ तो जान लो असगुन हो गव कहाव। कैउ जने तुरतइँ टूट परें इये अवइ छींकने तो तनक देर हों नाक पकर लेते तो सब काम न निपट जातो।

रमुवाँ ने अपनी बड़ी मौड़ी हों पड़बे के लानें सहर में का पोंचा दव गाँव भर ऊ की तरकना करन लगो। अरे रमू सियानी समानी बिटिया हो गइ सो पीरे हाँत करबे की जुगत लगाव जो अच्छो लगत कै बा सहर भर में हुँदरयात फिर रइ। काय हों गाँव भरे की नाक कटवा रये। कछू नैचों ऊँचो हो गव तो नाक पै लत्ता डारने परें। ओइ में कछू ये से हुज्जतया सोउ होत, जौन छिंगरी कौ छला नाक में पैरे-नाक भली फट जाय की बात पै अड़े रात। ऊमें उनकौ चाय जौन हरजा निकसान हो जाय पै बे अपनी मन को करकें मानें। धरै चाये राइ भरे बाली बच्चे उगारे आँग फिरत रौंयें, चाय सिलेट पिन्सल हों झूँकत रौंयें। पै जी नइँ पिघलत बे नाक के नाँव पै सबरी कमाइ बहाकें रीते पराते घरे आ कें पर रैहैं, काय कै मेरवारन में नाक तो ऊँची है घर भली फूटो डरो।

जितनी अकल अपनी नाक बचाबे हों चानें आउत ऊसें दूनीं चौगनी हिकमत पराइ नाक काटबे हों लगावने परत, जा बात ऐन समज में आ गइ कै जिनकी नाक कट जाय बे नकटा दूसरन हो नकटा बनावे कौ चक्कर चला उतइ रात।

कैबे को मतलब जो कै जिये देखो ओइ पराइ नाक काटबे हों मूँड़ जिवरा बाँदें फिर रव है। ई सें नाक के चक्कर में काउ हों न परो चाइये। नाक पकर कै रै जाबे सें आज लो काउ को भलो न गव हुइये, ऐई सें नाक लीला कौ परदा गिरा कें अच्छे काम करनें। अब हम तो जौ नाक पुरान इतइ बन्द कर रय। अपुन सब जने गुनियां गुनत रइयो।

- बड़ामलहरा, जिला छतरपुर (म.प्र.)

गारी (चेतावनी)

- डॉ. आर.बी. पटेल

करबे सेवा बमनौरा लाल री, आये हते इसी साल री।।
हम तो पर गये भोरे भारे,
लड़कन खो जो हम ललकारे
सुनबे नई भगत है बारे,
डाँटे मारें तो होत लड़े प्यार री, आये हते इसी साल री।।
जैसे तैसे भीतर आये,
कॉपी खोली कलम उठाये,
लिखबे खो तैयार दिखाये,
उन्हें लिखने ने एकऊ लानरी, आये हते इसी साल री।।
अनुशासन में रहिबो करिये,
गृह कारज ध्यानइ में धरिये।
खेल खेलबे तत्पर रहिये।
कहे ठलुवा जो कैसो चिल्लात री, आये हते इसी साल री।।
कहे अन्जान बने सो कहना,
निशदिन शिक्षा देते रहना,
नित्य नियम खो पालन करना,
कछू होवे न इनको बिगाड़ री, आये हते इसी साल री।
करवे सेवा बमनौरा लाल री, आये हते इसी साल री।।

- बजरंग नगर कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

समोच्चारित भिन्नार्थी बुंदेली शब्द

(गतांक से आगे...)

- सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

- आयस = आज्ञा
  आयुस = उम्र, बड़ी आयु हो
- आदि = प्रारम्भ
  आदी = आधी, आदत वाला
- अटाचड़ी = छत पर
  अट्टाचड़ी = ईर्षा
- अँकवार = बाहुपाश
  अकबार = अखबार
- आन = आकर, पराए
  आँन = सौगंध, प्रतिष्ठा, मर्यादा
- अन्न = अनाज
  अन्य = और, दूसरा
- अचार = मसालेदार खटाई
  आचार = आचरण
- ऊँचे = उच्च स्तर के
  ऊँचें = बहुत ऊपर
- उतारो = नीचे करो
  उतारौ = न्योछावर
- उचकावौ = उछालना
  उचटावौ = ऊपर फेंकना, व्यवधान करना
- ओर = दिशा, पक्ष में
  और = एवं, तनिक अधिक
- ओंठ = अधर
  औठ = अटपट
- ओद = गीला
  औद = अवधि
- कीको = चीखा
  कीकौ = किसका
- काड़ौ = निकालो
  काढ़ौ = क्वाथ
- कहलाने = मुरझाये, कहलाये
  कहलानें = कहलायेंगे
- करया = कमर
  करिया = काला
- काँच = पारदर्शी ठोस पदार्थ
  काँछ = कमर में खुसा धोती का भाग
- काँसे = धातु का नाम
  काँसें = कहाँ से
- काँसौ = काँसा धातु
  काँसों = कहाँ से
- काने = एक आँख का
  कानें = कहना है
- कटैल = काटने वाला, काटी हुई
  कठैल = गहोई वैश्य
- कोस = दो मील
  कोष = खजाना
- कॉंनो = एक आँख का
  कॉंनों = कहाँ तक, 'आ' की मात्रा
- कुँची = पुताई में लगने वाली
  कुची = चाभी
- कँहन = कहने का ढंग
  कहन = भविष्यवाणी
- कोरे = बिना लिखे, बिना छुए
  कोरें = नयनों के कोने
- कोरन = आँखों के किनारे
  कौरन = रोटी के टुकड़े
- को = कौन
  कों = किसको
- कड़ाई = कठोरपन
  कढ़ाई = करइया, बेल-बूटे काढ़ना
- किनें = किसको
  कीनें = किसने
- कड़वो = कड़ुआ
  कढ़बौ = निकलना
- खोर = गली
  खौर = आड़ा तिलक
- खेरौ = गाँव का अंतिम पुरा
  खैरौ = कत्थई रंग का
- खार = नमक,
  खार खावो = नाराज होना
- खाजे = मिठाई का नाम
  खाजै = खा जायेगा, खाज को
- खूँत = लकड़ी की नोक
  खूँतवौ = अंगार को तोड़ना
- खाती = बही खाता
  खातो पीतो = खाता हुआ, समृद्ध
- गोरा = अँग्रेज
  गौरा = पार्वती, सफेद पत्थर
- गारी गावौ = गीत गाना व्याह में
  गारी दैवो = गालियाँ देना
- गढ़िया = गढ़ी, छोटा महल, हवेली
  गड़िया = लेंड़ू, गाड़ी वाले, गड़िया घुल्ला की, भड़िया लुहार में गाड़ी वाले, गाँडू
- चड़ाव = विवाह की रस्म
  चढ़ाव = चढ़ाई
- चेत = सावधान हो
  चैत = माह का नाम
- चरू = चरने की जगह
  चुरू = अँजुरी
- चिपकवौ = चिपकना
  चिवकवौ = लिपटना, भेंट करना
  चिपटवौ = जोर से आलिंगनबद्ध होना
- छानो = तलाश की, खोजा
  छानौ = ग्रहण करिये, छानिए
- छोर = किनारा
  छौर = दाढ़ी बनाना
- जोइ = व्यतीत की, प्रतीक्षा की
  जौइ = यही
- जो = यदि
  जौ = यह, जवा
- जूँठी = प्रयोग की हुई शेष
  झूँठी = गलत, असत्य
- जानो = जान-समझ लिया
  जानों = जहाँ तक
- जंगला = खिड़की
  जंगली = गंदा, नियमहीन
- जिये = जीवित रहे
  जियै = जिसको, प्राण को
- झोर = घना जंगल
  झोंर = समूह
- टेंव = घिसो
  टैव = आदत
- टोंका = छेद
  टौंका = शैतान बच्चा
  टौका = छोटा कार्य
- ठप्पइ = समाप्त
  ठप्पौ = शान, रुआव
- डबिया = डिब्बी
  ढबिया = छत
- डाँड़ी = तराजू की डंडी, दाँडी
  ढाँढ़ी = नाटक का सूत्रधार, कथा व पात्र का परिचय कराने वाला।
- ढको = ढका हुआ
  ढकौ = ढकिये, धक्का

- ढँड़कावौ = गोल वस्तु आगे बढ़ाना
  ढूड़कावौ = तरल भरे बर्तन को पलटाना, तरल को गिराना
- तरा = सितारा
  तराँ = प्रकार, ढंग
- तीतौ = तेज मिर्च का स्वाद, तीखा
  तींतौ = गीला
- तो = था
  तौ = अब, फिर भी, तिस पर भी
- तड़कौ = सवेरा
  तड़को = जोर की आवाज होना
  तड़का = बघार
- ताड़ = डाँट, देखरेख
  ताड़ = वृक्ष
- तोर = तेरा, तोड़
  तौर = तरह
- ताकौ = उसका
  ताको = देखा है
- तुमन कौ = तुम लोगों का, तुम्हारा
  तुमनकों = तुम लोगों को
- दइत = दे रहा हूँ
  दईत = राक्षस
- दँइया = बेर, दफै, वार
  दइयाँ = अफसोस, विधाता
- देयँ = दिए हुए
  देंय = बदन
- देखो = देखा
  देखौ = देखिए
- दोरें = दरवाजे पर
  दौरें = दौड़ रहे, दौड़ पड़े
- धकयावौ = धक्का मारना
  धुकयावौ = पहिचान न पाना
- धरो = विश्वासनीयता, प्राप्य
  धरौ = तौल बराबर करना, पा संग सम करना
- नन्हें = छोटे को
  निन्नें = बिना कुछ खाए
- नन्नों = छोटा सा
  निन्नों = खाली पेट
- नावौ = गिराना
  नैवौ = जुयें में बैलों का जोतना
- परिया = ढेली, भेली
  परइया = लेटने वाला, तरल निकाले की परी
- परया = पारी से चढ़ने वाला ज्वर
  परियाँ = अप्सरायें
- पपीरा = पपीहा
  पपीरी = सीटी
- पासंग = तौल बराबर करने हेतु रखा गया वजन
  प्रसंग = कथा का विशेष अंश
- पूँठौ = किताब का आवरण
  पुट्ठौ = पीठ का ऊपरी भाग या दफ्ती
- पाश = बन्धन
  पास = समीप
- फुचकवौ = कपड़ों को धीमें से फीचना
  फिचकवौ = फेंकना
- वात = हवा, वायु रोग
  बात = चर्चा
- बिलो = बिलैया
  विलौ = चूहों का बिल
- बासी = बीते कल की पकाई हुई
  वासी = निवासी, रहने वाला
- वनआई = बनकर के आई
  बनियाई = बनियों की प्रकृति
- बाँड़ी = बिना पूँछ की
  बोंड़ी = कली
- बानौ = व्यापार की वस्तुएं
  बानो = भेष,
- वड़याई = कुछ अधिक
  बड़वाई = प्रशंसा
- बँधान = बाँध
  बन्धान = हर माह प्राप्त हो जो
- बही = हिसाब की कापी/पुस्तिका
  वही = बह ही
- व्यारें = उचित समय पर, समय रहते
  बयारें = हवायें
- बमककौ = उछलना
  बमकावौ = गिराना फैलाना
- बेगार = फालतू कार्य
  बिगार = बुराई हो जाना
- बरको = शेष, बचा हुआ
  बरकौ = दूर हटो, बचिये
- ब्याँन = प्रसव, जन्म देना
  बयान = कथन
- बजे = समय, जाने माने
  बजै = कारण
- बाकी = शेष
  वाकी = उसकी
  बाँकी = अनोखी
- बेला = काँसे का कटोरा, फूल का नाम, समय
  बैला = बैल
- बारी = खेत की रक्षक बाड़, जाति
  वारी = कम उम्र की
- बेंक = उपजाति, आस्पद
  बैंक = खजाना
- बेरा = समय
  बैरा = जिसे सुनाई न दे
- बंदी = कैदी
  बंधी = बही, रसीद बुक
  बँधी = नियमित
- बहरे = जाति, कम सुनने वाला
  बहरें = छंद
- बूट = जूता
  बूँट = पेड़ सहित हरे चने
- वारा = झाडू खजूरकी, वारह
  वारावाट = बर्बाद
- वमनाँट = ब्राह्मणों का वर्ग
  वमनोंट = ब्राह्मणपुरा
- वुकनी = मसालों वाला नमक
  विकनी = कंचुकी
- बड़याव = थोड़ा ज्यादा सा
  वत बड़याव = बातों में झगड़ा
- बरी = मुक्त, जली हुई
  बरीं = बुंदेली व्यंजन
- वेद = चार वेद, आर्य ग्रंथ, ग्रहण पूर्व का प्रभाव, प्रभावकाल
  वैद = वैद्य
- बाजे = वाद्य
  बाजै = बजती है
- भान = सूर्य
  भाँन = आभास, अनुमान
- भेंटें = उपहार
  मेटे = मिले हुए, भेंट किए हुए
- भुरकवौ = महीन चूर्ण ऊपर डालना
  भुकरवौ = नाराज हो जाना
- भावौ = अच्छा लगना
  भाँवौ = घुमाना, बिलोवौ
- भनक = आभास
  भिनक = व्यवस्था रहित
- मान = आदर, सम्मान
  माँन = रूठना
- मनाई = मनाया जाना
  मनाही = मना होना
- मादा = स्त्री
  माद्दा = अनुभव

- मेर = दोस्ती
  मैर = कुल, कुटुम्ब के देव
- मचवावौ = बुरे तरीके से फैलाना
  मिचकावौ = पलक झपकाना
- माँगे = मँहगे
  माँगें = माँगने से, माँगते हैं
- माय = माता
  माँय = उधर, कुलदेव/देवी का प्रसाद
- मिलकवौ = दीपक का जलना
  मिलकावौ = पलकें झपकाना
- महाराज = पंडित
  महाराजा = गद्दीधारी राजा
- मोटो = जो मोटा हो
  मौटौ = काली माटी वाली जमीन
- मोपै = मुझ पर
  मोंपै = समक्ष
- मोरो = मेरा
  मोरौ = मोड़िए, भाँइए, मथिए
- मोसम = मेरे समान
  मौसम = ऋतु
- मोरी = मेरी
  मौरी = लकड़ी का सिर गट्ठा
- माँस = गोश्त
  मान्स = मनुष्य
- माते = ढीमर
  मातै = माई को
- मुकरवौ = कहकर बदलना, मुँह मोड़ना
  मुकरवा = राजाओं का श्मशान स्थल
- माँगौ = मँहगा, माँगिये
  माँगो = मांगा है
- मोरे = मेरे, हमारे
  मौरे = आमों में मौर/फूल आना
- रवइया = व्यवहार
  रिवइया = रहने वाला
- राते = रहते
  रातै = रात को
- रातरात = रहते रहते
  रातइरात = रात ही में
- रेत = बालू
  रैत = रहते हैं
- रहन = रहने का ढंग
  रिहन = कर्ज के बदले रखना
- लाटी = रीझी हुयी, मुग्ध
  लाठी = डंडा, छड़ी
- लाक = लायक, योग्य
  लाँक = कटी हुई फसल
- लिवइया = लेने वाला
  लिवउआ = विदा कराने आने वाले
  लबइया = दूध पीता बछड़ा
- लड़यावौ = लाड़ प्यार दिखाना, बचपना करना
  लिड़यावौ = हिम्मत हारना
  लड़आवौ = झगड़ा करके आना
  लड़वावौ = लड़ाई कराना
- लगे = समीप
  लगै = मारो
- लोरी = बच्चों को सुलाने का गीत
  लौरी = पद या उम्र में छोटी
- लोटकें = लेटकर के, आराम करके
  लौटकें = वापिस होकर
- लवार = झूठा आदमी
  लिवार = खरीदने लेनेवाला
- सारो = सम्पूर्ण
  सारौ = पत्नी का भाई
- सुदयावौ = लक्ष्य साधना
  सुदआवौ = याद आना
- सिमइया = सिलाई करने वाला
  सिमइयाँ = खाद्य सामग्री
  समइया = पर्व, उत्सव
- सइ = सही
  सई = शर्त लगी
- साँचो = सत्य
  साँचाँ = आकृति देने का साँचा
- सैलावौ = बढ़कर पूरा पड़ना
  सेहलावौ = सहलाना
- सेर = पुरानी तौल का बाँट लगभग एक किलो
  सैर = गायन पद्यति/शैली
- सुस्ती = आलस
  सुस्तीं = फुरसत
- सायवान = दुगइ
  साहबाँन = लोगों को सम्बोधन
- सेवौ = पोषण करना
  सैवौ = सहन करना
- सद्द = ताजा
  सिद्द = सिद्धि प्राप्त
- सादी = बिना बनावट सादगी पूर्ण
  शादी = विवाह
- सठयावौ = बूढ़ा हो जाना
  सटयावौ = मीठी बातें करके कुछ प्राप्त करना
- सकरी = खाद्यान्न लगी वस्तु
  सँकरी = संकीर्ण
- सँकरे = जूँठे
  सँकारे = संकीर्ण
- सो = फिर, तब, सदृश
  सौ = एक सैकड़ा
- सत्त = सत्य
  सत्व = सार
- सबरी = सम्पूर्ण
  शबरी = रामभक्त भीलनी
- साधें = संभाले हुए, इच्छायें
  सादें = गर्भ के आठवें माह की रस्म
- साँसो = सच्चा
  साँसौ = साँचा ढालने का
- साँचे = सत्यवादी
  साँचै = सत्य को
- साँकरे = संकीर्ण
  साँकरें = जंजीर
- सोइ = वही
  सोई = सोती हुई
- साइ = तरह
  साई = अग्रिम
- सिंया = सिलाई की
  सिया = सीता जी
- सुनार = सुंदर औरत
  सुनाँर = सोनी
- सोर = प्रसव बाद की अपवित्र अवधि
  शोर = हल्ला गुल्ला
- सोंट = पीटना
  सोंठ = दवा का नाम
- हरइ = कम वजन की
  हरइँ = धीमे से
- हुयै = होगा
  हुये = हो गये हैं
- हाँते = पंजे की छाप
  हाँतै = हाथ में
- हारे = थके हारे हुए
  हारै = खेत को
- हारो = जो हार गया हो
  हारौ = थका हुआ
- हँसमुख = प्रसन्न चित्त प्रकृति का
  हंसमुख = हंस सदृश मुख वाला
- हाँनी = नुकसान
  होंनीं = जो होना है।

- आदर्श मार्ग, शुक्लाना, छतरपुर

जान पाँड़े

- राघवेन्द्र कुमार उदैनियाँ 'सनेही'

अपने बुन्देली लोक साहित्य में कछू ऐसे चरित्र हैं जौन नकली बनावटी विद्वानन की करतूतन हाँ उजागर करत। जैसें - लाल बुझक्कड़, ऊँट कटारे बैद आदि। कौनउँ कितनउँ टेड़ी मेड़ी, एचकतानी चक्करदार मसस्या काए न होय सबरन कौ रेडीमेड हल देवे में जे इतने चांड़े रात कै मान्स उनकौ ऊ हल सुनके दाँतन तरें उँगरियाँ दबाकें रै जात और उनकी ऊ बात हाँ मान लेत।

आज सोउ अपुन हाँ कवउँ-कवउँ ऐसे मान्स जुर जात जिनें अपुन कैइ बैठत कै भइया तुम तो बड़े लाल बुझक्कड़ हो।

सो उनइँ घाँईं हैं अपने जे जान पांडे।

''अदँरा की लात खदरा में'' जौ अहानौ जान पाँड़े के लाने ऐंसौ फिट बैठत के का कानें।

कबउँ-कबँउ सबयार अँगूठा छाप मान्स कोनउँ ऐंसी बात कै जात कै बा संजोग सें सई बैठ जात औ ओइ दिना से ऊ मान्स जान पाँड़े बजन लगत। समाज में ऐसे जान पाँड़न की कमी नइँयाँ। सबइ के ऐंगर पास हुँइयें, पै उनें ढूड़ौ।

ऐंसइ एक किस्सा है। जौन कैनात की तराँ कइ जात। हम अपुन सै बता रए -

कैनात एसी है कै - दस पाँच गाँवन के असफेर में कऊँ काऊ की गइया, भैंसिया कै कोनउँ चीज-बसत हिरा जाय तो ऊ जाँन पाँड़े के ऐंगर दौरो-दौरो जात। जान पाँड़े पैलाँ सें जान पांडे ना ते, इते लो पौंचबे की बड़ी लम्बी किसा है। पैलाँ बे चीजन के हिरावे कौ पतौ बताउत ते। ओइ के संगै कबउँ कबउँ सगुन बिचारत रात ते।

जैसें - एक दाँईं काउ ने उनसें पूँछी ''पाँड़े जू हमनें आज अपने खेत की गुड़ाई करी का पानी बरसै''

उपलवृष्टि भइ धरा सिरानी ''पाँड़े जू चट्ट से बोले''

जब आदी रात लौ पानी की एक बूँदइ ना गिरी तौ पाँड़े जू घरवारी सें बोले ''चल महरानी सँगै चल'' और सब रात ऊके कुआ सें पानी खेंच खेंच खेत हाँ सींचत रये। दूसरे दिना जब कोउ और सगुन बिचरवाबे आओ सो पाँड़िन भौजी भीतरइ सें बोलीं ''जो कउँ पानी कौ सगुन बिचार रये होव तो अपने बलबूते बिचारियो मैं तो पानी खिंचवाबे ना जेंव।''

तब से पाँडे जू ने सगुन बिचारवौ छोड़ दओ।

पै एक दाँई पाँड़े जू अपनी ससरारे गये।

कई जात कै ''घर घरबारी सें ससुरार सारी से''

पै पांडे जू की ऐसी ससुरार ना ती। दो सारे भर हते जब बे ससुरार के गेवड़े गाँव की नदिया पार कर रये ते तबइँ उनके पेट में दबाव बढ़न लगो। पाँड़े जू एक पेड़े की ओट करकें तीतुर लरावे घाँईं बैठ गये। नेचैं खदनियाँ में कछू जनीं पाँड़े जू घाँईं पैला सें बैठीं तीं और आपस में बतया रइँ तीं जनीं हरन के बारे में कओ जात कै बे निपटान ऐंगर ऐंगर बैठीं आपस में बतयाती हैं। हाँ कोनउं गैलारो ऊ तरप सें आ जा रओ होय तो ओइ भलाँईं खासैं खकारै, उनें का लेंनें देंनें।

''आज मटेलनी में बस पाछली रोटि अइ बची ती। कउँ सास ने मटेलनी उगारकें देख लई तौ रनताभोर मच जेहै'' खदनियाँ में बैठी एक जनीं कै रइँ तीं।

''काये? का आज सास हाँ रोटी नइ दइ'' दूसरी जनीं बोली।

''अरे बा तो दिया बाती लिसतनइँ रोटी-रोटी चिल्यान लगत औ ओई वै सीक देत जात'' बहू झार पौंछ कें रोटी ना बनाइये, मौत औ मैमान कौ कौनउँ भरोसौ नइयाँ''।

'अरी तौ मैमाँन हाँ पाछली रोटी तो धरी'

'अरी ना री ऊ तो गइया और कुत्ता को कौर कहाउत। पाछली रोटी खाये सें बुद्‌दी भ्रष्ट हो जात। कऊँ मैमान पगला गओ तो।' पाँड़े जू हाँ ई में सें एक आबाज जानी पैंचानी सी लगी। वे पैचान गए कै जा तो उनके सारे की महरारू की आवाज आय।''

निपट-सुरज कें जब पाँड़े ने ससरार की देरी पै पाँव धरो सो सारज सकपका गई, सोचन लगी हाय राम अब का हुइये। पै पाँड़े जू ने तुरतइँ उए ई धरम संकट सें उबार लओ, बोले - 'मोरी फिकर ना करौ, मटेलनी में जौन पाछली रोटी है ओइ दै दइयो'।

सरज अचम्बो खा कें रै गई। कै पाँड़े जू पाछली रोटी के बारे में कैसें जाँन गये। सवेरो होतनइ ऊने सबरेंहार पुरा परोस में कै दओ कै पाँड़े जू बड़े ग्यानी हैं। आँगूँ पाँछू की सबइ बातें जानत हैं। तबइँ परोस के गदेरे के गदा हिरा गये ते सो ऊने तुरतइँ पाँड़े जू के पाँव पकर लये। पाँड़े जू जब ससुरार आ रये ते तो उनें किले के ऐंगर गदा चरत दिखा परे ते सो उननें बता दये और गदा मिल गये। बस बे पाँड़े से जान पाँड़े हो गये।

पै अबे तो पाँड़े जू के भाग में राज कौ सम्मान बदो तो सो उनें मिलो ई तरां। कै रानी कौ नौ ला़ा हार हिरा गओ तो सो राजा ने जान पाँड़े हाँ बुलवाओ और हुकम दओ कै सात दिना के भीतर हार कौ पतो बताओ नइँ तौ घिची कटवा दइ जै। जान पाँड़े कौ दिन को चैन और रातन की नींद हराम हो गइ। एक दिना पूरी रात जग कें जब सबेरें कौआ बोल रये ते बे जप रये ते 'आजा री निंदिया भोर कटे घिचिया'।

जीनें हार चुराओ तो उये पतौ पर गओ कै हार खोजवे कौ जिम्मौ जान पाँड़े के ऐंगर है। सो वा सात दिनन सें पाँड़े जू के अगल-बगल चक्कर काट रई ती। ऊकौ नाँव निंदिया हतो, ऊने पाँड़े जू को कओ सुनो सो चौंक गइ, तुरतइँ पाँड़े जू के पाँव पकर लये। कान लगी कै मोय बचा लो।

निंदिया ने बताओ कै हार ओउ नें चुराओ औ रानी की नहानी के पथरा के नेंचें लुका दओ तो पै मोरो नाँव नाँ लइयो।

सबेरे राजा के सिपाई पोंचे। जान पाँड़े अकड़ गये। बोल परे जान पाँड़े कौनउँ राजा आजा के ऐंगर नइँ जात, जाओ रानी की नहानी के पथरा के नैचें हार मिल जैहै।

ससुरार सें पांडे जानपाँड़े बनकें लौटे और तब सें जौन जोतिस की दुकान खोली सो आज लौ चल रइ।

- सरानी दरवाजा, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त २००६ पर डॉ. बरसैंया की सम्मति

बसन्त तो ऊँसई भौत सुहावनो औ सुखदायी होत। सबरी प्रकृति हँसत, खिलखिलात, उन्मत्त दिखाई परत। आम, टेसू, सेमर, जैसे तमाम पेड़-पौधा, जाने कित्ती बेलें-लतायें, नाना तरां के फूलन से लद जातीं। ऐसो लगत जैसे भीतर को सबरो आनन्द औ उल्लास लुटाओ जा रओ। फसलें लहलहातीं, पक्षी चहचहाउत, किसान मजदूर, सबई वर्ग के लोगन के मन आनन्द से हुलसन लगत। गाउँन-गाउँन, गली-चौराहन में नगड़िया ढोलक ठनकन लगत। फागन के सुरन सें वातावरण गुंजरित हो जात। जगा-जगा रंगी-बिरंगी गुलालन के ढेर सज जात। ऐसो लगत जैसे प्रकृति और समाज के लोगन के मन एक हो गये होंय। सबई रंगीन, सबई मस्त।

मस्ती के ऐसेई वातावरण में तुमाओ 'बुन्देली बसन्त' आकै मजा कौ दुगुनौ कर देत। दस सालन सें जा बसन्त बराबर छप रओ - जा साधारण बात ना होय। सबरे पढ़े-लिखे लोग जा शिकायत करत कि बुन्देली भासा, साहित्य, संस्कृति, लोककाव्य, लोकरीति रिवाज, परब-त्यौहार, व्यंजन, पहनबौ, ओढ़बो, सब कछू हमाये आज के जीवन सें दूर भओ जात। नई पीढ़ी तौ ऊके बारे में भौतई कम जानत। ऊके लानें, ऊके मन में न तो प्रेम है औ न कौनऊ आकरषण। उनें लगत कै भागमभाग की जा जिन्दगी में ऊकौ कछू महत्व नईं रै गओ। व्यावसायिक जमाने की कारोबारी दुनिया में सब कछु लाभ-हानि की नजर सें देखो जा रओ। खास कै बुन्देलखण्ड के पढ़े लिखे लोग ऊकी उपेक्षा करत। धन्यवाद कै गाँव के भइया-बैनन कौ, जो अपने जीवन में अबै भी बुन्देली भाषा, संस्कृति, लोक साहित्य खों जिन्दा रखे हैं। सादी-ब्यावन में, पर्ब त्यौहारन में अबै सोई उतै बुन्देली के राग-रंग, पुराने रीति-रिवाज, लोकगीत सुनबे खों मिल जात। उनई सें पुरानी बातन को कछू अंदाज लगत। नई तौ सहराती नयी अंग्रेजी सभ्यता ने तो ऊखाँ लीलई हतो। ऐसे में तुमाऔ जौ बुन्देली बसन्त ऐसो लगत जैसे भारी गरमी से हैरान प्रानी खों ठंडी छाँव मिल गयी होय। प्यासे को पानी मिल गव होय। भूखे को गुरीरी मिठाई मिल गयी होय। ऐसो लगत जैसे बुन्देली भाषा, साहित्य, संस्कृति को बचावे, पनपाबे के लाने जो नौनो उपाय करो गव होय।

भौत पैलउँ कुंडेश्वर (टीकमगढ़) सें 'मधुकर' और 'लोकवार्ता' निकार कें ईको बचाबे औ बढ़ाबे को, दूर-दूर पैचान कराबे को उपाय करो गव तो। दूर-दूर बुन्देली को फैलाव भव तो। ऊके बंद होबे के बाद करीब-करीब सन्नाटौ सो रव, इते-उते बीच-बीच में लोगन ने कोशिश करी पै उत्ती सफलता नई मिली। ऊकी पूर्ति भई सागर विश्वविद्यालय से निकरबे वारी 'ईसुरी' पत्रिका सें। भौत दमदार पत्रिका हती, डॉ. कान्तिकुमार जी ने भौतउं सूझबूझ और परिश्रम से ऊकौ लगातार कई साल निकारौ, जाने काँ-काँ से खोज-खोज के सामग्री ऊमें छापी, देश भर के पढ़ैयन-विद्वानन में ऊकी खूबई चर्चा रई। दुरभाग सें कछु दिनन बाद बा सोई बन्द हो गई। फिर सन्नाटौ रओ, ऊ कमी की पूर्ति जा 'बुन्देली बसन्त' से भई।

मैं १० साल सें ईखों देख पढ़ रओ हों। हिन्दी साहित्य, इतिहास, पुरातत्व दर्शन आदि विषयन के लेख तो छपतई हैं, सबसें बड़ी बात है बुन्देली भाषा साहित्य, संस्कृति कला, पुरातत्व इतिहास, प्रकृति दर्शन, चिन्तन आदि जीवन समाज के सबई पक्षन की बातें एक संगै लोगन तक पौंचाबो कित्तऊ पुरानी बातन कौ नओ, नओ समाधान सोई मिलत, नई नई बातें निकर कें आउतीं। ईकी बहुरंगी गद्य-पद्य की सामग्री ऐसी लगत मानौ प्रकृति को बहुवर्णी रूपरंग सामने आ गओ होय।

एक आदमी सबरी बातन कौ जनवा नहीं हो सकत। **ई बुन्देली बसन्त** के पढ़बे सें पढ़बे बारो कई बातन को जनवा हो सकत। ईके प्रकाशन सें बुन्देली भाषा साहित्य, संस्कृति को जैसे नओ जीवन मिलो होय। लिखइयन कों, पढ़इयन कों, खोज करइयन कों, विद्वानन कों, सबई को बड़े काम की उपयोगी सामग्री मिल जात। जौ पूरी तरां से शोध पत्रिका आय। ऐई साल २००६ की पत्रिका में कइयक लेख पढ़कें मन गद-गद हो गओ। भौत सारे लेख बड़ी मेंनत और खोज से लिखे गये। साहित्यकारन के बारे में, स्थानन के बारे में, इतिहास की घटनन के बारे में, लोकभाषा, लोकजीवन, लोककला के बारे में, ढेरन नई-नई बातें पढ़बे खों मिलीं, सामग्री जुटाबे और उनमें से उच्च कोटि की छाटबे में संगई संगे सलीके सें, सुन्दरता सें छापबे में आपकी और आपके साथियन के मेहनत, समझ औ निष्ठा साफ साफ दिखाई देत। आपखां और आपके साथियन खां भौत-भौत बधाई। हम चाउत कि जा बसन्त को आनन्द हमेसईं मिलत रैबे। संगै बुन्देली विकास संस्थान के संस्थापक मुखिया श्री शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' कों सोई बधाई, जिनने अपनी सूझबूझ और लगन सें, ई संस्था के कार्यक्रमन खों देशव्यापी बना दओ। सबको ऊसे जोर दओ। अंक देखकें मन में हुलास भई सो जा चिठिया लिख दई, एक बेरा फिर बधाई।

आपको हितुआ

डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया

१२, एम. आई.जी., चौबे कॉलोनी, छतरपुर

नई-नई पोथीं अपुन के लाने

⊙ सार वचन - भानुप्रताप शुक्ला 'भानु', निवाड़ी.
प्रकाशक - नृत्यगोपालदास जी महन्त, श्री मणिराम दास जी की छावनी, अयोध्या, फैजाबाद (उ.प्र.). रु. २५/-

⊙ बुन्देली लोकगीतों में भक्ति भावना - डॉ. हरीमोहन पुरवार, संध्या पुरवार, उरई, प्रकाशक - बुन्देलखण्ड संग्रहालय समिति उरई, रु. ३५०/-

⊙ श्री उद्धव बृजागमन - मुंशी देवी प्रसाद 'प्रीतम'
प्रकाशक - राजेन्द्र कुमार खरे, बेंगलौर, रु. ५०/-

⊙ राजुल विवाह - मुंशी देवी प्रसाद 'प्रीतम',
प्रकाशक - राजेन्द्र कुमार खरे, बेंगलौर रु. ५५/-

⊙ गुलदस्त-ए-बिहारी - मुंशी देवी प्रसाद 'प्रीतम'
प्रकाशक - राजेन्द्र कुमार खरे, बेंगलौर, रु. १००/-

⊙ वाम विसमता - भानुप्रताप शुक्ला 'भानु' निवाड़ी, रु. ३०/-
प्रकाशक - नव चेतना साहित्य एवं कला संस्थान, निवाड़ी

⊙ महाबली छत्रसाल - डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र,
प्रकाशक - पंकज बुक्स, दिल्ली ११००९१ रु. २७५/-

⊙ दूर नयन से, मन के पास - श्री शारदा प्रसाद उदैनियाँ का परिचयात्मक काव्य संकलन। सं. सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष', राघवेन्द्र उदैनियाँ 'सनेही', प्रकाशक - बुन्देलखंड साहित्य परिषद, छतरपुर म.प्र., रु. १००/-

⊙ बेर-मकुँइँयाँ - राघवेन्द्र उदैनियाँ 'स्नेही'
प्रकाशक - बुन्देली साहित्य परिषद, छतरपुर रु. ५०/-

⊙ नारी जीवन के तीन पग - सं. डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी, हरिविष्णु अवस्थी, टीकमगढ़, प्रकाशक - वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, रु. १५१/-

⊙ फाग फुहार - भानु प्रताप शुक्ला 'भानु', निवाड़ी. प्रकाशक - नवचेतना साहित्य एवं कला संस्थान निवाड़ी,रु. ३०/-

⊙ नदिया तीर कछारे मेरा गाँव रे - अवध बिहारी रावत
प्रकाशक - अवध प्रकाशन मंदिर, छतरपुर, रु. ५१/-

⊙ कारे कन्हाई के कान लगी है - डॉ. अवध किशोर जड़िया
प्रकाशक- शशिभूषण, नीतिभूषण जड़िया, हरपालपुर, रु. ८०/-

⊙ गोपी गीता - डॉ. अवधकिशोर जड़िया, प्रकाशक - शशिभूषण, नीति भूषण जड़िया छतरपुर, रु. ८०

⊙ स्तुति की शब्दभूमि - डॉ. अवध किशोर जड़िया, रु. १००/-
प्रकाशक - बुन्देली विकास संस्थान, बसारी, छतरपुर

⊙ डॉ. जड़िया के श्रृंगार गीत - डॉ. अवध किशोर जड़िया
प्रकाशक - बुन्देली विकास संस्थान, बसारी, छतरपुर, रु. १००/-

⊙ नई टकसार - स्व. रामसहाय कारीगर, संपा. व प्रकाशक डॉ. दयाराम वर्मा, 'बेचैन', स्यावरी, तह. मऊरानीपुर (झांसी)

⊙ खरी-खरी - डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया, रु. ५०/-

⊙ कच्ची ईंट बाबुल देरी न दइयो - महेन्द्र फुसकेले
प्रकाशक - अकादमिक प्रतिभा, दिल्ली, रु. १५०/-

⊙ प्रकरान्तर - महेन्द्र फुसकेले, प्रकाशक - मेधा बुक्स, दिल्ली ३५०/-

⊙ दधिसार - महेन्द्र फुसकेले - प्रकाशक ग्लोबल बुक्स ऑर्गनाइजेशन, दिल्ली, रु. १५०/-

⊙ किरदार रोशनी का - किशोर तिवारी 'केशू' दमोह, रु. १००/-

⊙ कविते तुम्हें प्रणाम - सीताराम चतुर्वेदी 'अटल' सकरार
प्रकाशक - साहित्य निकेतन प्रकाशन, रु. १००/-

⊙ रघुवंशम् - विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास, छतरपुर
प्रकाशक - सरस्वती सदन प्रकाशन, छतरपुर रु. ५१/-

⊙ अप्रमेय (खण्डकाव्य)- श्रीप्रकाश पटैरिया, छतरपुर
प्रकाशक - सरस्वती सदन प्रकाशन छतरपुर, रु. ५०/-

⊙ मेरी जीवन संघर्ष कथा - लेखक चिन्तामणि वर्मा, रु. ५०/-

⊙ जीवन संदेश - चिन्तामणि वर्मा, रु. ३५/-

⊙ वन्दे माधव - राजमाता श्रीमती प्रेमलता जी, रियासत भैंसोदा

⊙ बुन्देली लोकगीत और लोकसंस्कृति - डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही',
प्रकाशक - सुरभि प्रकाशन, इलाहाबाद, रु. १५०/-

⊙ प्यार भरा संसार चाहिए - आर.एस. शाक्यवार 'स्वप्नेश'
प्रकाशक - श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, रु. १००/-

⊙ पचकौड़ी (उपन्यास) - डॉ. शरद सिंह
प्रकाशक - सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, रु. ३००/-

⊙ बुन्देलखण्ड की वीराँगनाएँ - डॉ. रामनारायण शर्मा
प्रकाशक - सन्दर्भ प्रकाशन, इलाहाबाद, रु. १५०/-

⊙ योगानुशासन - योगाचार्य डॉ. फूलचन्द्र जैन 'योगीराज'
प्रकाशक - श्री स्याद्वाद योग संस्थान, छतरपुर, रु. १००/-

⊙ कच्छप (काव्य संग्रह) - श्रीराम अग्रवाल
प्रकाशक - श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, रु. २५/-

⊙ बीसवीं सदी का बाजार - श्रीराम अग्रवाल
प्रकाशक - श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, रु. १२५/-

⊙ अन्तर्भाव (काव्य संग्रह) - श्री हरिश्चन्द्र जैन 'पुष्प'
प्रकाशक - श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, रु. ५०/-

⊙ बीते वर्ष पचास (काव्य संग्रह) - श्री रामसहाय नगाइच 'नागरिक'
प्रकाशक - श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, टीकमगढ़, रु. ७५/-

⊙ नौंनी लगै बुन्देली (बुन्देली हाइकू संग्रह) - श्री राजीव नामदेव 'राणा', लिधौरी, प्रकाशक - म.प्र. लेखक संघ, टीकमगढ़, रु. ८०/-

⊙ गुलदस्ता (गजल संग्रह) - लालजी सहाँय श्रीवास्तव 'लाल'
प्रकाशक - सौरभ साहित्य संस्थान, गुरसराँय, रु. १५१/-

⊙ बुन्देलखण्ड के अमर स्वतंत्रता सेनानी - हरिविष्णु अवस्थी, डॉ. दुर्गेश दीक्षित, प्रकाशक - आरती प्रकाशन, ३६४, आवास विकास कॉलोनी, झूँसी इलाहाबाद, रु. १५०/-

⊙ हम नदिया धार - श्री संतोष सोनकिया 'नवरस'
प्रकाशक - कमला प्रकाशन, जालौन, रु. १००/-

⊙ श्री चतुर्भुज पाठक स्मृति ग्रन्थ - सम्पादकःकपिल देव तैलंग, आर.एस. शर्मा, प्रकाशक - पाठक ट्रस्ट, टीकमगढ़, रु. १५१/-

⊙ जीवन विकास - दुर्गा प्रसाद शर्मा
प्रकाशक - जिला सर्वोदय संघ, टीकमगढ़, रु. ५०/-

⊙ गायत्री साधना-स्थिति प्रज्ञा - सं. दुर्गा प्रसाद शर्मा
प्रकाशक - बालकृष्ण अग्रवाल, झाँसी, रु. ६०/-

⊙ हिन्दू-मुस्लिम एकता ऐतिहासिक संदर्भों में - डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी
प्रकाशक - कृष्णा प्रकाशन, स्लीमनाबाद कटनी, रु. ३००/-

⊙ ज्ञानोदय स्मारिका - सं. हरिविष्णु अवस्थी, डॉ. के.पी. त्रिपाठी
प्रकाशक - ज्ञानोदय शिक्षा समिति, पठा, टीकमगढ़, रु. ५०/-

बुन्देली उत्सव २००६ में इन साहित्यकारों को सम्मानित किया गया

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००६
(बुन्देली संस्कृति हेतु)

◆ **श्री काशीप्रसाद जी महतों** – बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी, पूर्व शिक्षा मंत्री विंध्यप्रदेश, से.नि. सहायक जिला शिक्षा अधिकारी, समर्पित साहित्यसेवी एवं रचनाधर्मी श्री महतों जी का जन्म गढ़ीमलहरा, जिला छतरपुर के सुप्रतिष्ठित पान व्यवसायी महतों परिवार में श्री बुच्चीराम जी महतों के घर दिनांक ५ मार्च १९१७ को हुआ।

आपकी शिक्षा-दीक्षा, छतरपुर एवं लखनऊ में बी.ए., बी.टी. तक हुयी। आपने समस्त उपनिषदों का पद्यानुवाद ब्रह्मदर्शन के नाम से एवं श्रीमद्भगवद गीता का पद्यानुवाद करते हुए साहित्य संसार को कई काव्यकृतियाँ दी हैं जिनमें प्रमुख हैं – शान्ति शतक पदावली, शान्ति शतक दोहावली, कैकयी महान, काशी की की कुण्डलियाँ, काव्य कुंज, दीवान-ए-काशी, वंदनगान, अनुभव रत्न मंजूषा एवं संगीत मंजरी। ९३ वर्षीय श्री महतों आज भी समाजसेवा एवं साहित्य सृजन में रत हैं।

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००६
(बुन्देली साहित्य हेतु)

◆ **श्री मयूस सागरी जी** – कविवर रसखान एवं रहीम की परम्परा में उर्दू के अतिरिक्त आपने, हिन्दी एवं बुन्देली में कृष्णभक्ति विषयक रचनाओं का सृजन कर सुप्रतिष्ठित कृतियाँ – 'अनुकथन', 'अभ्यास', 'अथ', 'इबरत', 'मानस की प्रीति', 'गुरु-दक्षिणा', 'ऊर्जा', 'अब अल्फ़ाज़ बनकर जी रही हैं इन्दिरा गाँधी' तथा 'बृज-रस' नामक ग्रन्थ की रचना कर सांस्कृतिक व सामाजिक एकता की एक अनोखी मिसाल पेश की है। यशस्वी कवि एवं शायर श्री शेख अर्ब्दुर रज़्ज़ाक 'मायूस सागरी' का जन्म सागर में सन् १९४६ को श्री जऩाब हाजी शेख बाबू के घर हुआ। इन्होंने सामान्य शिक्षा प्राप्त की। अहर्निश साहित्य सेवा व साहित्यकारों की सहायता हेतु तत्पर रहने वाले सौम्य स्वभाव के धनी आप एक सुप्रतिष्ठित समाजसेवी हैं।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान २००६
(लोककला हेतु)

◆ **उस्ताद श्री जहीर खान – सारंगी वादक** – उस्ताद श्री का जन्म दिनांक ८ अगस्त १९३६ को श्री चांद खाँ साहब के घर, बाँदा उ.प्र. में हुआ। आठवीं तक शिक्षा प्राप्त कर आपने विधिवत सारंगी वादन की शिक्षा बनारस, इलाहाबाद में सारंगी के उस्तादों से ग्रहण की। बसारी महोत्सव में बांदा की एक साहित्यिक संस्था द्वारा नौटंकी प्रस्तुत करते समय बजायी गयी मनमोहक ध्वनियों व प्रस्तुतियों के कारण आपने जनमानस का मन मोह लिया। आपको सारंगीवादन में महारथ प्राप्त है। अनेकानेक संस्थाओं द्वारा आपको सम्मानित व अभिनंदित किया जा चुका है।

दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००६
(बुन्देली इतिहास हेतु)

◆ **श्री दशरथ जी जैन** – बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध समाजसेवी, स्वतंत्रता सेनानी, पूर्व मंत्री विंध्य प्रदेश एवं मध्यप्रदेश, प्रखर गांधीवादी एवं इतिहास लेखक श्रीयुत् दशरथ जैन का जन्म १५ अप्रैल सन् १९२८ को छतरपुर में प्रसिद्ध व्यवसायी श्री बाबूलाल जैन के घर हुआ। आपकी शिक्षा दीक्षा एम.ए., एलएलबी. छतरपुर एवं इलाहाबाद में सम्पन्न हुयी। व्यवसाय से वकील आप प्रतिष्ठित कुशल लेखक, सम्पादक एवं अनुवादक हैं। आपनें विंध्यांचल (मासिक पत्रिका), उत्सर्ग एवं बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम (अंक) जैसी बहुचर्चित स्मारिकाओं का सम्पादन करने के साथ-साथ सोवियत संघ का आर्थिक विकास, समाज और संस्कृति, बुन्देलखण्ड का जलियांवाला बाग, चरणपादुका, सागर से गहरे, हिमालय से ऊँचे आदि कृतियों का सृजन किया है।

अंग्रेजी भाषा में भी आपकी छः पुस्तकें प्रकाशित हैं, संस्कृत की जैन धर्म सम्बन्धी सात पुस्तकों का आपने अंग्रेजी में अनुवाद किया है। ८२ वर्षीय श्री जैन दृष्टिक्षीणता से पीड़ित हैं किन्तु उल्लेखनीय प्रेरक तथ्य यह है कि आप अभी भी निरन्तर पठन-पाठन एवं नियमित लेखन कर रहे हैं।

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २००६
(बुन्देली आलोचना हेतु)

◆ **डॉ. संतोष भदौरिया**

जन्मतिथि : १ अगस्त १९६५, हमीरपुर (उ.प्र.)

प्राध्यापक-महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

◆ प्रकाशित पुस्तकें :

स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी की प्रतिबन्धित पत्रिकाएँ,
प्रकाशक – स्वराज संस्थान, संस्कृति विभाग, भोपाल २००१
'शब्द-प्रतिबंध' (पत्रकारिता), प्रकाशक – मेधा बुक्स, नई दिल्ली, प्रकाशक – स्वराज संस्थान, संस्कृति विभाग, भोपाल २००८
हिन्दी की लम्बी कविता का कद,
प्रकाशक – वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २००६
मुक्ति संग्राम और बुन्देली कलम
प्रकाशक – मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल

◆ सम्पादन : 'स्मारिका-२०००', वीरांगना-२००१-२००५, आखर माटी-चतुर्मासिक बुन्देली फाउंडेशन

◆ देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ४० शोध पत्र प्रकाशित,

◆ सात शोध छात्रों का शोध उपाधि हेतु मार्गदर्शन

◆ सम्मान : म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वारा आलोचना विधा हेतु २००७ में वागीश्वरी पुरस्कार

बुन्देली उत्सव २००६ का प्रतिवेदन

- जीतेन्द्र सिंह 'जित्तू'

बुन्देली लोककला और संस्कृति केन्द्रित ''बुन्देली-उत्सव २००६'' का शुभारम्भ १७ फरवरी २००६ को हुआ। महाराजा छत्रसाल स्टेडियम में महाराजपुर क्षेत्र के विधायक मानवेन्द्र सिंह भंवर राजा ने तेरहवें बुन्देली उत्सव का शुभारम्भ किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता जिला पंचायत सदस्य कालीचरण पटेल ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि विधायक मानवेन्द्र सिंह 'भंवर राजा', विशिष्ट अतिथि अजीत पाल सिंह एवं अन्य अतिथियों ने महाराजा छत्रसाल के चित्र पर माल्यार्पण कर दीप प्रज्जवलित किया। मुख्य अतिथि ने रंगबिरंगे गुब्बारों को खुले आसमान में छोड़ा और खुशहाली के प्रतीक के रूप में आतिशबाजी की आवाज गूँजती रही। तत्पश्चात् शासकीय हायर सेकेण्ड्री, बसारी की छात्राओं ने मुख्य अतिथि के स्वागत में स्वागत गीत प्रस्तुत किया।

बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्ना राजा' ने सर्वप्रथम मुख्य अतिथि का पुष्प माला से स्वागत किया उसके बाद शोभालाल गुप्ता, अध्यक्ष बुन्देली विकास संस्थान, दीवान त्रिलोक सिंह, देवेन्द्र प्रताप सिंह, भारत कृष्ण देव, जीतेन्द्र सिंह 'जित्तू', शारदा शुक्ला तथा आयोजन समिति के पदाधिकारी तथा कार्यकर्ताओं ने अतिथियों का स्वागत किया।

संरक्षक मुन्नाराजा ने चिर परिचित अंदाज में स्वागत वक्तत्व देते हुए मुख्य अतिथि तथा अन्य अतिथियों का बुन्देली उत्सव २००६ में पधारने पर आभार व्यक्त किया तथा बुन्देली उत्सव के तेरहवें वर्ष में प्रवेश करने पर क्षेत्रीय जनता और सहयोग प्रदान करने वालों का आभार व्यक्त किया।

उद्घाटन समारोह के अवसर पर साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने के लिए श्री काशी प्रसाद महतों को राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान २००६ से सम्मानित किया गया इस सम्मान के लिए ११०० रुपये की नकद राशि सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल श्री महतों को भेंट किया गया, सम्मान पत्र का वाचन सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' जी ने किया। इस सम्मान को ग्रहण करते हुए काशी प्रसाद महतों ने कविता के माध्यम से बुन्देली उत्सव तथा आयोजन समिति का धन्यवाद करते हुए कहा कि यह सम्मान पाकर मुझे बहुत खुशी हुई है। श्री महतों ने बुन्देली उत्सव के आयोजन के लिये सम्मान राशि के रूप में प्राप्त ११०० रुपये तथा अपनी ओर से १००० रुपये की नकद राशि भेंट की। इस अवसर पर श्री काशी प्रसाद महतों की पुस्तक संगीत मंजरी का विमोचन विधायक मानवेन्द्र सिंह एवं संरक्षक शंकर प्रताप सिंह 'मुन्ना राजा' ने किया।

उद्घाटन समारोह में डिलाइट इंग्लिश स्कूल के छात्र-छात्राओं ने समूह नृत्य प्रस्तुत कर दर्शकों का मन मोह लिया। ग्राम बसारी के सपना रंग मंडल के कलाकारों की रणप्पा नृत्य की प्रस्तुति दर्शकों को तालियां बजाने को मजबूर कर गई। शंकर बाल मण्डल, बसारी के कलाकारों ने ढिमरयाई नृत्य की मनमोहक प्रस्तुति दी। उद्घाटन के अवसर पर रंग बिरंगी रंगोली भी सजाई गई।

मुख्यअतिथि मानवेन्द्र सिंह ने बुन्देली उत्सव में आयोजित खेल प्रतियोगिताओं का भी शुभारम्भ किया इस अवसर पर ध्वजारोहण किया गया तथा मुख्यअतिथि ने कबड्डी मैच की शुरुआत कराई तथा मुख्य अतिथि ने कुश्ती (दंगल) प्रतियोगिता का शुभारंभ पहलवानों का हाथ मिलवाकर किया। उद्घाटन समारोह के उपरांत दंगल प्रतियोगिता प्रारंभ हुई जिसमें म.प्र., राजस्थान, उ.प्र., बिहार, पंजाब, हरियाणा के प्रसिद्ध पहलवानों अखाड़े में दांव आजमाये। पहले दिन हुए दंगल मुकाबले में बाहर से आए पहलवानों ने अपनी कुश्ती के जौहर दिखाए।

तेरहवें बुन्देली उत्सव के दूसरे दिन बसारी स्टेडियम में कबड्डी और बॉलीबॉल मुकाबलों की धूम रही हजारों खेल प्रेमियों की हर्ष ध्वनियों व तालियों की गड़गड़ाहट के बीच खिलाड़ियों ने भी जबरदस्त प्रदर्शन कर सबके मन जीत लिये। कबड्डी का पहला मुकाबला सिंगरावन खुर्द (बी) और मंगरौल (ए) के बीच हुआ जिसमें सिंगरावन की टीम ने यह मैच जीता, कबड्डी के दूसरे मुकाबले में आर.बी.एस. कॉलेज, बसारी की टीम का मुकाबला बरेठी (बी) की टीम से हुआ, जिसमें बरेठी (बी) की टीम विजयी रही कबड्डी के तीसरे मैच में बरेठी (ए) का मुकाबला मंगरौल (बी) टीम से हुआ जिसमें बरेठी (ए) की टीम ने यह मुकाबला जीता, कबड्डी का चौथा मैच बसारी और पहरा की टीमों के बीच खेला गया, बेहद रोमांचक मुकाबले में बसारी की कबड्डी टीम ने यह मुकाबला जीता, कबड्डी की महिला टीम के मुकाबले में आज खुरई की टीम का मुकाबला मंगरौल की महिला टीम से हुआ उक्त रोमांचक मुकाबले में खुरई की महिला टीम ने बाजी मारी।

बुन्देली-उत्सव के तीसरे दिन कबड्डी, बॉलीबाल के सेमीफायनल और फायनल मैच खेले गये। सभी खेलों का मुकाबला बहुत ही रोचक रहा। इस अवसर पर डॉ. सुभाष चौबे अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। आज खेले गये कबड्डी का पहला सेमी फायनल बसारी और सिंगरावन के बीच हुआ जिसमें बसारी की टीम २५-११ अंकों से विजयी रही, कबड्डी के ही दूसरे सेमी फायनल में बरेठी का मुकाबला कदारी से हुआ जिसमें कदारी की टीम ४०-३४ अंकों से विजयी रही। बसारी और कदारी के बीच फायनल मैच खेला गया जिसमें कदारी की टीम ने ५ के मुकाबले १५ अंकों से इस वर्ष का कबड्डी टूर्नामेंट जीता। वहीं महिलाओं के कबड्डी का फायनल मुकाबला खुरई और बसारी के बीच खेला गया इस बेहद ही रोमांचक मैच में खुरई की टीम विजेता बनी। वहीं आज ही बॉलीवाल का फायनल मैच सागर और बसारी की टीम के बीच हुआ। फायनल मैच को रोमांचक बनाने के लिए 'बेस्ट ऑफ फाइव' मुकाबला खेला गया जिसमें संघर्षपूर्ण मुकाबले में सागर की टीम २५-२०, २८-२६, २३-२५ और २५-१६ अंकों

से विजयी रही। गिल्ली डण्डा आदि खेलों का आज हजारों दर्शकों से खचा-खच भरे स्टेडियम में समापन समारोह विधिवत सम्पन्न हुआ।

बुन्देली उत्सव के तीसरे दिन बुन्देली नाटकों, कछयाई और गम्मद बैठक का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्यअतिथि यादवेन्द्र सिंह 'जग्गू राजा' विधायक टीकमगढ़, विशिष्ट अतिथि बड़ामलहरा क्षेत्र की विधायक श्रीमती रेखा यादव रही कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री रघुराज सिंह स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बिजावर तथा अजय पाल सिंह राव साहब ने की।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि यादवेन्द्र सिंह ने कहा कि मैं इस उत्सव से हमेशा से ही जुड़ा रहा हूँ, बुन्देलखण्ड की कला संस्कृति को सहेजने वाला यह इकलौता कार्यक्रम है। ऐसे आयोजनों पर हमें गर्व होना चाहिए। ऐसे कार्यक्रमों के आयोजन में सभी को मिलकर सहयोग करना चाहिए। यह कार्यक्रम किसी व्यक्ति विशेष का नहीं बल्कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का है।

विधायक श्रीमती रेखा यादव ने अपने संबोधन में कहा कि बुन्देली कला संस्कृति और साहित्य को एक ही मंच पर साकार करने का कार्य बुन्देली उत्सव के माध्यम से किया जा रहा है और अंचल के लोक कलाकारों के अंदर छुपी प्रतिभाओं को प्रदर्शित करने के लिए इस उत्सव के माध्यम से जो मंच दिया है उसके लिये मेरे बड़े भाई 'मुन्नाराजा' तथा आयोजन समिति बधाई के पात्र हैं। बण्डा, सागर के कवि और साहित्यकार मायूस सागरी को स्व. राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान २००६ के लिये सम्मानित किया गया, मायूस सागरी को यह सम्मान उनकी कृष्ण भक्ति पर रचित पुस्तक ब्रजरज के लिये दिया गया। सम्मान स्वरूप सम्मान पत्र, ११०० रुपये की नकद राशि, शॉल श्रीफल प्रदान किया गया।

आज की प्रस्तुति में इस मंच पर बुन्देली नाटकों का मंचन किया गया जिसमें सपना संग मण्डल, बसारी के कलाकारों द्वारा सामाजिक समस्याओं को लेकर 'हमें बचाओ रे' नाटक का मंचन किया गया, शीर्षक 'नया सवेरा' नाटक का मंचन लनस थियेटर, पन्ना के कलाकारों द्वारा किया गया नाटक 'जमीदार की चाल' का मंचन एनआर जी ग्रुप पन्ना के कलाकारों द्वारा किया गया, अंधविश्वास जैसे जटिल विषय पर केन्द्रित नाटक "परो न ढोंग धतूरे में" की प्रस्तुति बजरंग मण्डल बसारी के कलाकारों ने दी और दहेज जैसे कुप्रथा और कुरीतियों को उजागर करते हुए नाटक "दहेज बनी बीमारी" का मंचन भी किया गया इसके अलावा नाटक "जैसे खाँ तैसो", "न लई न दई गत बुरई भई 'लैकें आवी' आदि नाटकों का भी मंचन आज किया गया। जिसका दर्शकों तथा अतिथियों ने खूब आनन्द उठाया। इसी तरह कछयाई गायन में जय माँ दुर्गा रंग मण्डल, भवानीपुरा के कलाकारों की प्रस्तुति अद्भुत रही। चमरयाई बैठक में लक्ष्मन अहिरवार एवं साथी श्यामरीपुरवा तथा गनपत अहिरवार व साथी, गुंदारा ने अपनी प्रस्तुतियों से बुन्देली मंच पर अपनी विशेष प्रस्तुतियाँ दी। बुन्देली पोषाक में गौरव शर्मा एवं अन्य साथियों रैंप पर अपने जल्वे दिखाये।

बुन्देली उत्सव में चौथे दिन ही बुन्देली व्यंजनों के प्रदर्शन का आयोजन किया गया जिसमें बुन्देलखण्ड के जहाँ एक ओर प्रचलित व्यंजन बनाये गये वहीं कुछ ऐसे व्यंजन भी बनाये गये जो अब लुप्त होते जा रहे हैं ऐसे व्यंजनों का प्रदर्शन कर बुन्देलखण्ड अंचल के विलुप्त होते व्यंजनों को बुन्देली उत्सव के माध्यम से परोसकर पुनर्जीवित किया गया। बुन्देली व्यंजनों के प्रदर्शन पर उपस्थित लोगों ने प्रत्येक स्टॉल में जाकर व्यंजनों का स्वाद चखा और उनका भरपूर आनन्द लिया।

तेरहवें बुन्देली-उत्सव की चौथी संध्या पर बुन्देलखण्ड की विभिन्न लोक परम्पराओं एवं लोक संस्कृति पर आधारित गायन एवं नृत्य आदि की प्रस्तुतियां हुई। कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि बुन्देलखण्ड विकास प्राधिकरण के पूर्व अध्यक्ष सुरेन्द्र प्रताप सिंह "बेबी राजा" ने किया तथा आज के कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि जिला पंचायत टीकमगढ़ के सदस्य छत्रपाल सिंह रहे। मुख्य अतिथि सुरेन्द्र प्रताप सिंह "बेबीराजा" ने अपने उद्बोधन में कहा कि यह आयोजन बुन्देलखण्ड की संस्कृति को प्रदर्शित करता है, हमारी संस्कृति समृद्ध है, मुख्य अतिथि ने आगे कहा कि मुन्ना राजा ने बसारी गांव का सर्वांगीण विकास किया है उन्होंने स्टेडियम और मुक्ताकाशी मंच का निर्माण कराकर स्थापत्य कला को भी प्रोत्साहन किया है।

प्रतिवर्ष दिया जाने वाला डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान २००६ बांदा निवासी प्रसिद्ध सारंगी वादक उस्ताद जहीर खान को प्रदत्त किया गया, उन्हें ग्यारह सौ रुपये की नकद राशि, सम्मान पत्र, शॉल व श्रीफल भेंट किया गया।

आज बुन्देलखण्ड की भूली बिसरी गायन एवं नृत्य की उन्नीस लोक-कलाओं ने 'बुन्देली-उत्सव' के मंच पर पूरी रात अपना जलवा दिखाया। गांव-देहात के तमाम कलाकारों ने अपनी प्रतिभा के बलबूते दिवारी, रावला, दलदल घोड़ी, फागें, ख्याल, कहरवा, लमटेरा, गारी, बनरे, सैर आदि को पुनर्जीवित किया। छतरपुर के भगवान दास कुशवाहा की बुन्देलखण्ड की पारम्परिक एवं विलुप्त हो रही सैर की प्रस्तुति से उपस्थित जनसमुदाय हृदय से भाव-विभोर हुआ, धनीराम वर्मा व साथी, छतरपुर की ख्याल की प्रस्तुति तो इतनी मनमोहक रही कि हजारों दर्शक भी समय का ख्याल नहीं रख पाये। बुन्देलखण्ड अंचल के गांव गांव में घर घर में शादी विवाह के मौके पर गायी जाने वाली गारी को सुनकर दर्शक भी मंच पर नीचे थिरक उठे ऐसा लगा मानो कोई विवाह का मंडप हो गारी गायन में अहिरवार कला मण्डल, बसारी, ब्रजवासी अनुरागी, छतरपुर, शंकर बाल मण्डल बसारी तथा भगवान दास अनुरागी व साथी छतरपुर ने गारी गायन की प्रस्तुतियाँ दी। लमटेरा में जय दुर्गा मण्डल, भवानीपुरा ने ऐसा भावपूर्ण माहौल बनाया कि उपस्थित जनसमुदाय भी मानो बाबा के दरबार की ओर प्रस्थान कर रहा हो। दलदल घोड़ी नृत्य ने बुन्देली के साथ भारतीय संस्कृति के पुराने सार्थक तथ्यों की प्रस्तुति के साथ मनोरंजन भी किया। दलदल घोड़ी नृत्य में बजरंग मंडल, बसारी ने प्रस्तुति दी। इसी तरह दिवारी नृत्य में दिवारी पार्टी, पचारा महोबा, मिल्ली एण्ड नीनो ग्रेंडिस प्राथमिक स्कूल, राजनगर तथा दिवारी पार्टी पठा ने पन्ना म.प्र. ने देकर दर्शकों को मंत्रमुग्ध

कर दिया तथा विलुप्त होती कला सैरों की प्रस्तुति सुनहरा सैरों पार्टी, सुनहारा पन्ना म.प्र. ने देकर दर्शकों में अपनी कला का लोहा मनवाया। इसके अलावा राजा बलवंत सिंह संगीत महाविद्यालय, राजनगर ने मल्हार अहिरवार कला मण्डल बसारी ने ख्याल और दादरा की प्रस्तुतियों से दर्शक का मन मोहा।

बुन्देली उत्सव के पांचवे दिन अश्वनृत्य का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्यअतिथि पूर्व सांसद लोकेन्द्र सिंह जी पन्ना रहे तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में वी.के. सिंह एयर पोर्ट अधिकारी, खजुराहो, अजयबीर सिंह बमरी रहे। रोमांच और मनोरंजन से भरे इस अश्वनृत्य प्रदर्शन में म.प्र. और उ.प्र. के ५० प्रतियोगियों ने घोड़ों के अनूठे करतब दिखाये। घोड़ों के करतब देखकर खचाखच भरा स्टेडियम तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। दर्शकों ने इस आयोजन का खूब लुफ्त उठाया।

शाम को बुन्देली संस्कृति के लिये महत्वपूर्ण रात रही जिसमें बुन्देलखण्ड की लोक कलाओं की भूली-बिसरी एवं प्रचलित गायन एवं नृत्यों की प्रस्तुतियां हुई। इन प्रस्तुतियों में ढिमरयाई, कार्तिक गीत, बहुरूपिया, गोटें, दादरे, बिलवारी तथा आल्हा गायन की प्रस्तुतियाँ हुई। आज के कार्यक्रम का शुभारंभ ब्रजेन्द्र प्रताप सिंह विधायक पवई ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया ने की तथा इस अवसर पर कर्नल अवधेन्द्र सिंह, सी.एस. बायम मैपक्रास्ट तथा अजयवीर सिंह बमरी विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

बुन्देली उत्सव के मंच से इतिहास के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के लिए पूर्व मंत्री तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी तथा गांधीवादी श्री दशरथ जैन को दीवान प्रतिपाल सिंह स्मृति सम्मान २००६ भी प्रदत्त किया गया जिसमें ग्यारह सौ रुपये की नकद राशि, सम्मान पत्र, शॉल व श्रीफल भेंट किया गया।

कार्यक्रम की शुरुआत में बसारी स्कूल की छात्राओं ने स्वागत गीत प्रस्तुत किया, दर्शकों के मनोरंजन का ख्याल रखते हुए जयचन्द्र परिहार ओरछा, सपना थियेटर, बसारी, शंकर बाल मण्डल बसारी की ढिमरयाई की आकर्षक प्रस्तुति से पर्यटक ग्राम बसारी के भव्य स्टेडियम में मौजूद हजारों दर्शकों का मन मोह लिया। दादरे गायन में हरिओम कला मण्डल, बौधराई दमोह, वन्दना लोक कला मण्डल कनेरादेव सागर, छत्रसाल चौराहा बजरंग मण्डल बसारी, शंकर बाल मण्डल बसारी, एनआरजी ग्रुप पन्ना तथा सुखलाल आदिवासी व साथियों की प्रस्तुति अद्‌भुत रही और दर्शकों ने लुफ्त उठाया। कार्तिक गीत गायन में द्रोपदी सोनी व कलाकार, टौरिया, रमा देवी महिला मण्डल, सागर, माँ हरसिद्धी कला मण्डल सागर, रामकिशन अहिरवार गढ़ौलीकला ललितपुर तथा रामवती भागवती अहिरवार की प्रस्तुतियों ने दर्शकों के बीच खूब समा बांधा। इसी तरह गोट गायन में मूलचन्द्र पाल नये घरन झांसी उ.प्र., सुन्दर पाल तथा किशनपाल टौरिया तथा हरवंश भगत रानीपुरा हरपालपुर ने अपने निराले अंदाज में प्रस्तुतियां दी। इस तरह बिलवारी गायन में मिजाजी पटेल रमपुरा, सुशील अवस्थी सागर, रम्मू अहिरवार सागर तथा शंकर बाल मण्डल बसारी ने अपनी मनमोहक प्रस्तुति देकर सबका मन जीत लिया। इसके अतिरिक्त राछरौ गायन की विशेष प्रस्तुति ग्राम बसारी की रामरती अहिरवार ने दी।

तेरहवें बुन्देली उत्सव का समापन समारोह पूर्व विधायक जीतेन्द्र सिंह बुन्देला, छतरपुर विधायक श्रीमती ललिता यादव, पूर्व विधायक विजय बहादुर सिंह बुन्देला, जिला पंचायत अध्यक्ष वीर सिंह राजपूत, अजीत पाल सिंह प्रबंधक, पर्यटन कार्यालय, भारत सरकार, खजुराहो, मंडी अध्यक्ष डीलमणि सिंह बब्बूराजा के आतिथ्य में सम्पन्न हुआ।

बुन्देली समीक्षा के लिये बुन्देली विकास संस्थान की ओर से दिया जाने वाला राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान २००६ महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र में पदस्थ डॉ. संतोष भदौरिया को प्रदत्त किया गया। सम्मान पत्र का वाचन डॉ. अवध किशोर जड़िया ने किया। सम्मान में ग्यारह सौ रुपये की नकद राशि, सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल, व प्रतीक चिन्ह डॉ. संतोष भदौरिया को अतिथियों द्वारा प्रदत्त किए गए। इस अवसर पर सम्मानित डॉ. संतोष भदौरिया ने कहा कि साहित्य, इतिहास, कला और संस्कृति की इस पवित्र भूमि में यह सम्मान पाकर मैं कृतज्ञ हूँ। मैं देश के अनेक भागों में घूमा हूँ लेकिन ऐसा आयोजन कहीं नहीं देखा है, जिसमें अपनी संस्कृति को पुनर्जीवित करने का कार्य किया जा रहा हो। शंकर दयाल खरे की पुस्तक 'रस बरसे राम' बुन्देली में का विमोचन संस्थान के संरक्षक शंकर प्रताप सिंह मुन्नाराजा द्वारा किया गया।

बुन्देली उत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाली पत्रिका बुन्देली बसन्त का विमोचन किया गया। कार्यक्रम की शुरुआत में राई व बधाई नृत्य का प्रदर्शन हुआ जिसके आनंद से दर्शक झूम उठे। इसी मंच पर राई नृत्य बाल कलाकार बारेलाल व साथी, बसारी, राई पार्टी टौरिया, राई पार्टी खजवा, राई पार्टी पारवा, आदिवासी राई पार्टी बसारी, कनक झनक राई पार्टी पिपौरा तथा राई पार्टी बछरौनिया आदि कलाकारों ने राई नृत्य की अद्‌भुत प्रस्तुति देकर दर्शकों को झूमने को मजबूर कर दिया। इसी तरह बधाई नृत्य में सपना थियेटर, बसारी ने भी अपनी प्रस्तुति से दर्शकों का मन मोहा। फाग गायन में रसिया पार्टी बसाटा तथा हजारी लाल पटेल लखेरी ने अपनी अनोखी प्रस्तुति दी। इसी तरह सोहरे गायन में बजरंग मण्डल, बसारी तथा मत्थीबाई व सखियों ने सोहर गायन की प्रस्तुति दी।

कार्यक्रम का संचालन आनन्द शर्मा, डॉ. अवध किशोर जड़िया, डॉ. बहादुर सिंह परमार ने किया। आज के समापन कार्यक्रम के अवसर पर लगभग २५ से ३० हजार दर्शकों का जनसमूह व विदेशी पर्यटक मौजूद थे। रात भर आसमान में रंग बिरंगी आदिशबाजी चलती रही , जिसका उपस्थिति जनसमुदाय ने खूब लुफ्त उठाया। इस तरह छह दिवस तक चला कला और संस्कृति का महापर्व तेरहवें बुन्देली उत्सव २००६ का भव्य समापन समारोह सम्पन्न हुआ।

- सचिव, बुन्देली विकास संस्थान, छतरपुर

बुन्देली उत्सव २०१० हेतु समितियाँ

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति

१. श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला
२. श्री भारत कृष्ण देव सिंह बुन्देला
३. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला
४. श्री पर्वत सिंह बुन्देला

स्वागत व्यवस्था समिति

१. श्री संतोष अग्रवाल
२. श्री केदारनाथ अग्रवाल
३. श्री राकेश अग्रवाल
४. श्री वृन्दावन रैकवार
५. श्री सिब्बा रैकवार
६. श्री जगदीश रैकवार
७. श्री रामस्वरूप रैकवार (दसुवा)
८. श्री सोनू रैकवार
९. श्री लखन रैकवार (रामाधीन)

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वित० समिति

१. श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पंगू) प्रभारी
२. श्री अखिलेश्वर चौबे
३. श्री धर्मेन्द्र खरे

मंच सज्जा समिति

१. श्री शोभालाल गुप्ता
२. श्री अच्छेलाल यादव
३. श्री बारे लाल पाल
४. श्री मुल्ली यादव
५. श्री लली पाल
६. श्री हीरा पाल
७. श्री मन्नू पाल
८. श्री पंचम लाल विश्वकर्मा
९. श्री सुनील वर्मा

चाय नाश्ता समिति एवं जल व्यवस्था

१. श्री सुरेश अग्रवाल 'पप्पू', प्रभारी
२. श्री सुधीर अग्रवाल
३. श्री मिलन रैकवार (खिलइयां)
४. श्री मइयादीन रैकवार (हरि)
५. श्री झल्लन रैकवार
६. श्री रमेश रैकवार
७. श्री कल्लू रैकवार (खिलैयां)

स्टेडियम कार्यालय प्रभारी

१. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला, प्रभारी
२. श्री नवल किशोर अग्रवाल, प्रभारी
३. श्री जगदीश यादव, सहायक
४. श्री प्रभु यादव, सहायक

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति

१. श्री पर्वत सिंह बुन्देला
२. श्री संजय सिंह
३. श्री मन्नू यादव
४. श्री भज्जू पाल
५. श्री मुकेश साहू
६. श्री खुमान रजक

अखाड़ा व्यवस्था समिति

१. श्री मातादीन पहलवान
२. श्री रामस्वरूप पटेल
३. श्री सिराज खान
४. श्री अजय बाल्मीक
५. श्री फुली कौंदर
६. श्री महादेव कोंदर
७. श्री हरी कौंदर (छतारे)

स्टेडियम सुरक्षा व्यवस्था समिति

१. श्री हीरालाल पाल
२. श्री रामू अहिरवार 'चौकीदार'
३. श्री मातादीन अहिरवार
४. श्री द्वारका अहिरवार
५. श्री टुड़ी कोंदर
६. श्री अमरा अहिरवार

मेला व्यवस्था एवं प्रदर्शनी समिति

१. श्री बाबूलाल खरे, प्रभारी
२. श्री सरजू यादव
३. श्री अनारी राजपूत
४. श्री पुन्ना अहिरवार
५. श्री छोटा अहिरवार
६. श्री रमेश अहिरवार (हरजुआ)

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के चार कमरों में)

१. श्री लखन यादव, प्रभारी
२. श्री वृन्द्रावन राजपूत
३. श्री राजू रैकवार
४. श्री राजेश रैकवार
५. श्री मन्टू अहिरवार
६. श्री रतन साहू

आवास व्यवस्था समिति

१. श्री राममिलन श्रीवास, प्रभारी
२. श्री कलन रैकवार
३. श्री कल्लू यादव (किशन यादव)
४. श्री जगदीश/पंचू रैकवार
५. श्री राकेश बाल्मीक
६. श्री कैलाश पटेल (रामस्वरूप)

आवास व्यवस्था समिति
(नया कार्यालय भवन गेट–२ के सामने)

१. श्री राजू कुशवाहा, प्रभारी
२. श्री राजू पटेल
३. श्री विजय रैकवार
४. श्री भगवानदास अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(आर.आई. क्वार्टर में)

१. श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी
२. श्री कल्ला रैकवार
३. श्री रमेश अहिरवार हरजुआ

पंजीयन समिति

१. श्री राममूर्ति नामदेव, प्रभारी
२. श्री कृपाराम पटेल, प्रभारी
३. श्री महेन्द्र शुक्ला
४. श्री बीरेन्द्र खरे

गेट व्यवस्था एवं झंडा बैनर समिति

१. श्री महादेव यादव, प्रभारी
२. श्री रामस्वरूप रावत
३. श्री मुल्ली अहिरवार
४. श्री शिवदीना अहिरवार
५. श्री आशाराम अहिरवार
६. श्री पप्पू अहिरवार
७. श्री रघ्घू पाल
८. श्री सरमन राजपूत
९. श्री देशराज अहिरवार
१०. श्री दीपेन्द्र अहिवार
११. श्री राजू काछी

विद्युत व्यवस्था समिति

१. श्री रामचरण रैकवार
२. श्री लक्ष्मी रैकवार
३. श्री अजय रजक,
४. श्री जयसिंह यादव
५. श्री नन्दू जोशी 'पहरा'
६. श्री परमलाल कौंदर
७. श्री सुशील सोनी
८. श्री बराती रजक

चित्रकार एवं लेखन कार्य समिति

१. श्री प्रेमकिशोर खरे
२. श्री धीरज सिंह परमार
३. श्री रमेश अहिरवार
४. श्री गज्जू अहिरवार
५. श्री सुनील बाल्मीक
६. श्री अनिल बाल्मीक

खेलकूंद व्यवस्था समिति (बालीबॉल)

१. श्री पर्वत सिंह बुंदेला, प्रभारी
२. श्री संजय सिंह,
३. श्री शिवराम कुशवाहा
४. श्री हेमंत यादव
५. श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
६. श्री भागवत पटेल, कर्री
७. श्री दुर्गा अहिरवार
८. श्री अशोक यादव
९. श्री दिनेश रैकवार, कुटू
१०.श्री फूलचन्द्र यादव
११.श्री बबलू रैकवार (तुलसी)
१२.दिलदार खां
१३.देवेन्द्र राठौर
१४.संजय यादव
१५.रमेश पाल

खेलकूंद व्यवस्था समिति (कंबड्डी)

१. श्री पुष्पेन्द्र सिंह बघेल, प्रभारी
२. श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
३. श्री बबलू यादव
४. श्री धर्मेन्द्र राजपूत
५. श्री कल्लू यादव (बाबूलाल)
६. श्री कमलेश यादव (परमानन्द)
७. श्री मुकेश रैकवार (सर्रा)
८. श्री रामकिशोर रैकवार (रामदास)
९. श्री पिक्का रैकवार (हरदास)

बैठक व्यवस्था

१. श्री परशुराम अवस्थी (प्रभारी)
२. श्री जब्बार खाँ (प्रभारी)
३. श्री मथुरा यादव
४. श्री भागीरथ यादव
५. श्री रतन यादव
६. श्री छुट्टन अहिरवार
७. श्री श्यामलिया कोरी
८. श्री हरिश्चन्द्र कोरी
९. श्री प्रभू अहिरवार (हरिया)
१०.श्री छन्नू हरिजन
११.श्री प्यारेलाल अहिरवार (गोला)
१२.श्री मन्नू यादव
१३.श्री बन्दू यादव (गुटियां)
१४.श्री परमानन्द यादव

मोटरसाइकिल/साइकिल स्टैण्ड व्यवस्था समिति

१. श्री रामकृपाल यादव, प्रभारी
२. श्री हेमंत राठौर
३. श्री बबलू यादव
४. श्री रतन साहू

卐

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
INCOME & EXPENDITURE FOR THE YEAR 2008-2009

EXPENDITURE	Rs.	Rs. (R)	INCOME	Rs. (R)
Bundeli Utsav Expenses		826150.00	From Jan Sahyog	10,64,879.00
Medical Camp. Exp.	5,200.00			
Hasya Kabi Sameelan	24,000.00		**Membership Fees**	4,680.00
Plantation Expenses	11.450.00			
Agriculture Training & Seed Di	9,254.00	49,904.00	**Smarika Advertisement**	1,25,000.00
Other Expenses			**Interest From Bank**	251.00
Salary	108,000.00			
Honorarium	72,000.00		**Add Excess of Exp Over Income**	23,659.00
Audit Fees & Income Tax	3,500.00			
Misc Exp.	11,156.00			
Stationary & Printing	14,100.00			
Teaching learning Exp.	23,254.00			
Ismarika Printing Exp.	90,150.00			
Postage	1,155.00			
Sangosthi (Meeting)	19,100.00	3,42,415.00		
TOTAL Rs. :		**12,18,469.00**	**TOTAL Rs.**	**12,18,469.00**

BUNDELI VIKAS SANSTHAN BASARI, CHHATARPUR (M.P.)
RECEIPTS & PAYMENTS A/C FOR THE YEAR 2008-2009

RECEIPTS	Rs.	Rs. (R)	PAYMENTS	Rs.	Rs. (R)
OPENING BALANCE			**BUNDELI UTSAV EXPENSES**		**8,26,150.00**
Cooperative Bank (46)	20,994.00		Medical Camp. Exp.	5,200.00	
Canara Bank (S/A) 1608	30,539.00		Hasya Kabi Sameelan	24,000.00	
F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00		Plantation Expenses	11,450.00	
		8,51,533.00	Agriculture Training & Seed Dis.	9,254.00	**49,904.00**
From Jan Sahyog		10,64,879.00	**OTHER EXPENSES**		
			Salary	108,000.00	
Membership Fee		4,680.00	Honararium	72,000.00	
			Audit Fees & Income Tax	3,500.00	
Smarika Advertisement		1,25,000.00	Misc Exp.	11,156.00	
			Stationary & Printing	14,100.00	
Interest From Bank		251.00	Teaching learnng Exp.	23,254.00	
			Ismarika Printing Exp.	90,150.00	
			Postage	1,155.00	
			Sangosthi (Meeting)	19,100.00	**3,42,415.00**
			CLOSING BALANCES		
			Co-operative Bank (46)	17,994.00	
			Canara Bank (S/A) 1608	9,880.00	
			F.D.R. Canara Bank	800,000.00	**8,27,874.00**
TOTAL Rs.		**20,46,343.00**	**TOTAL Rs.**		**2,046,343.00**

BALANCE SHEET AS AT 31-3-2009

FUNDS	Rs.	Rs. (R)	ASSETS	Rs.	Rs. (R)
Society Fund			**Fixed Assets**		
As per L.BS	1,241,826.00		Land (As per last B.S.)		3,08,646.00
Less The year	(23,659.00)	1,218,167.00			
			Building Construction		6,95,600.00
Loans & Deposit					
Nehru Yuva Club Basari		132,216.00	Furniture (As per last B.S.)		9,597.00
Loans Swami Pravanand Homeo College		5,00,000.00	**Dead Stock (W.D.V)**		8,666.00
			CLOSING BALANCES		
			Cooperative Bank (46)	17,994.00	
			Canara Bank (S/A) 1608	9,880.00	
			F.D.R. Canara Bank	8,00,000.00	8,27,874.00
TOTAL Rs.		**1,850,383.00**	**TOTAL Rs.**		**1,850,383.00**

We certify that receipts & Utilization of funds & Closing Balance (as above) are correct.

AUDIT REPORT

We have checked (enclosed) receipts and utilization a/c and Balance Sheet as on 31-3-2009 if any we certify them as correct.

SAGAR, 21-08-2009

R.V. Agrawal
Chartered Accountants

शोभालाल गुप्ता
अध्यक्ष

जीतेन्द्र सिंह
सचिव

चौदहवें "बुन्देली उत्सव-2010"

में पर्यटक ग्राम बसारी (बुंदेलखंड) में पधारे अतिथियों एवं कलाकारों का हम हार्दिक अभिनंदन करते हैं

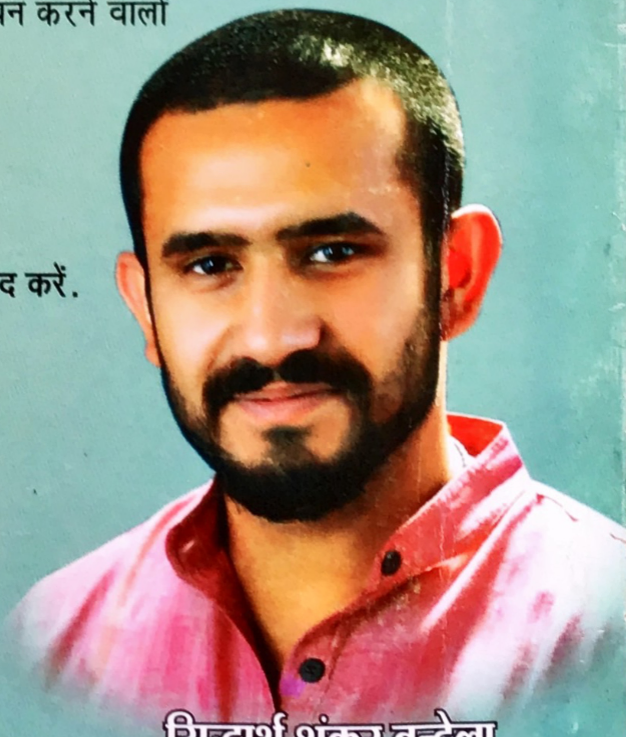
योजनाएं :

1. पात्र हितग्राहियों को वृद्धावस्था पेंशन का लाभ दिलाना।
2. रोजगार गारंटी योजना के तहत हर हाथ को 100 दिन के काम की गारंटी।
3. समग्र स्वच्छता अभियान के तहत शौचालयों का निर्माण करवाना ।
4. भू-जल संवर्धन के लिए वृक्षारोपण करवाना।
5. कपिल धारा योजना के तहत कूपों का निर्माण करवाना।
6. शासन की मंशानुरूप गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों को योजनाओं का लाभ दिलाना।

अपील -

1. जन्म-मृत्यु का पंजीयन अवश्य कराएं।
2. नगर को साफ स्वच्छ और हरा भरा बनाएं रखने में मदद करें.
3. पानी अमूल्य है कृपया इसे बर्वाद न करें।
4. बच्चों को नियमित स्कूल भेजें ।





ओमशरण पटेल (हल्के भैया)
उपाध्यक्ष

बी.के. सिंह
सीईओ

सिद्धार्थ शंकर बुन्देला
अध्यक्ष

सौजन्य से -

जनपद पंचायत राजनगर

जिला - छतरपुर (म.प्र.)